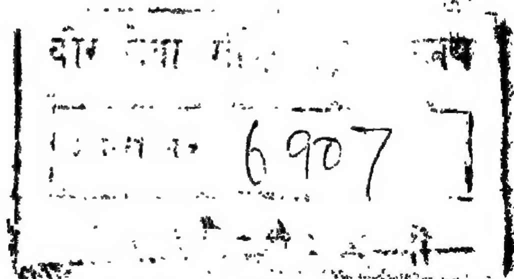
॥ आचार्य श्री शान्तिसागराय नमः ॥

परमपूज्य आचार्य श्री कुन्थुसागरजी विरचित

भावत्रयफलप्रदर्शी

हिन्दी अनुवादक

पण्डित लालाराम शास्त्री



प्रकाशक :

आचार्य कल्प १०८ श्री श्रुतसागर ग्रन्थ माला

श्री शांतिवीर नगर, श्री महावीरजी (राज.)

आशीर्वाद : आचार्यश्री वर्धमानसागर जी महाराज

ग्रन्थ : भावत्रयफलप्रदर्शी

प्रणेता : परमपूज्य आचार्य श्री कुंथुसागर जी महाराज (ऐनापुर वाले)
चारित्र चक्रवर्ति आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज के शिष्य

हिन्दी अनुवादक : पण्डित लालाराम शास्त्री

प्रथम संस्करण

प्रकाशन तिथि : मकर सक्रान्ति १४-१-२०००
वीर निर्वाण सम्वत् २५२६
विक्रम सम्वत् २०५६

प्रति : १०००

मूल्य : २०.०० रुपये मात्र

पुस्तक प्राप्ति स्थान : आचार्य कल्प १०८ श्री श्रुतसागर ग्रन्थमाला
श्री शांतिवीर नगर श्री महावीरजी (राज.)

मुद्रक : श्री प्रिण्टर्स प्रा. लि.
जी-१३९, मालवीय औ. क्षेत्र, जयपुर-१७

समर्पण

बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ति

श्री शान्तिसागरजी महाराज के

परम्परागत पट्ट शिष्य

आचार्य श्री वर्धमान सागर जी महाराज

के पावन कर-कमलों में

ग्रन्थराज

सादर-समर्पित

श्री शान्तिवीर नगर दिगम्बर जैन संस्थान

श्री शान्तिवीर नगर (श्री महावीरजी)

ट्रस्ट कमेटी

जैनाचार्योंका अनुग्रह

संसारमे श्रुताराधना भवबंधनसे मुक्त होनेके लिए अत्यंत उपयुक्त साधन है। जैनागम भगवान् सर्वज्ञके द्वारा प्रतिपादित हुआ। पुन: गणधरादिकके द्वारा उसकी परम्परा श्रौत और स्मार्तके रूपसे बराबर चली आती रही। प्रत्येक आचार्य अपने गुरुसे जो भी तत्त्वको श्रुतिपथमें ग्रहण कर लेते थे उसे स्मृतिमे रखकर अपने शिष्योंको श्रवण कराते थे वे पुन: अपने शिष्योंको सुनाते थे। वे निर्मलज्ञानधारी तपोनिधि मुनिपुंगव अत्यंत विशिष्ट कर्मक्षयोपशमके प्रभावसे एकपाठी द्विपाठी आदि होते थे। अतएव गुरुसे जिस प्रकार सुनते थे उसी प्रकार स्मरणमें रखकर उसे अपने शिष्योंको उपदेश देते थे।

प्राचीन इतिहासको देखनेपर मालूम होता है कि श्रुतज्ञानकी परम्परा प्रात:स्मरणीय महर्षियोंके अनुग्रहसे अविच्छिन्न रूपसे चली आती रही।

भगवान् महावीरका यह तीर्थ है, वीर-प्रभुके मोक्ष सिधारने के बाद तीन अनुबद्ध केवली हुए। भगवान् जिस समय मोक्ष पधारे उसी समय गौतम गणधरको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। केवलज्ञानकी अवस्थामे उन्होंने १२ वर्षतक विहार कर धर्मोपदेश दिया। भगवान् गौतमस्वामी जिस समय मुक्त हुए उस समय लोहार्यको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। लोहार्यका ही अपरनाम सुधर्मस्वामी था। सुधर्मस्वामीने भी बारह वर्षतक विहार कर धर्मवर्षा की। भगवान् सुधर्मस्वामीने जब मोक्ष प्राप्त किया उसी समय जंबूस्वामीको केवलज्ञान हुआ। जंबूस्वामीने ३८वर्षपर्यंत केवलज्ञान अवस्थामें विहार किया। व धर्मोपदेश देकर प्राणियोंका उद्धार किया। जंबूस्वामी अंतिमकेवली कहलाते हैं। जंबूस्वामीके बाद केवली कोई नहीं हुए हों यह बात नहीं है, उनके बाद

भी अन्य केवली हुए हैं। परंतु अनुबद्ध केवलियोंमें जंबूस्वामी ही अंतिम हैं। जंबूस्वामी तक ही अनुबद्ध केवलियोंकी परंपरा रही। इसी प्रकार भगवान् महावीरके निर्वाणके बाद १२ वर्ष गौतम स्वामीका, १२ वर्ष सुधर्मस्वामीका और ३८ वर्ष जंबूस्वामीका विहारकाल रहा। अर्थात् ६२ वर्ष तक अनुबद्ध केवलियोंने अपनी दिव्यवाणीसे संसारका उपकार किया। तदनंतर १०० वर्षोंमें पाँच श्रुतकेवली हुए। जंबूस्वामीके मुक्ति गमनके बाद १४ वर्षतक श्रुतकेवली विष्णु स्वामीका समय रहा। तदनंतर १६ वर्षतक नंदिमित्र स्वामीने श्रुतकेवली होकर श्रुतज्ञानको प्रकाशित किया, बाद २२ वर्षतक अपराजित मुनिने श्रुतज्ञानसे विश्वका उपकार किया। तदनंतर १९ वर्षतक भगवान् गोवर्धन स्वामीने श्रुतज्ञानका उद्योत किया एवं अंतमें २९ वर्षतक भगवान् भद्रबाहुने श्रुतज्ञान प्रकाशसे भव्योंका उपकार किया। इस प्रकार पाँच श्रुतकेवलियोंका समय १०० वर्षका होता है। यहाँतक भगवान् महावीरके निर्वाण होकर १६२ वर्ष व्यतीत होते हैं।

तदनंतर दशपूर्वधारी ग्यारह आचार्य हुए। उनका क्रमशः विहारकाल इसप्रकार है। मुनिराज विशाखाचार्यने १० वर्ष, प्रोष्ठिलस्वामीने १९ वर्ष, क्षत्रियगुरुने १७वर्ष, जयसेन स्वामीने २१वर्ष, नागसेन स्वामीने १८वर्ष, सिद्धार्थयतिने १७ वर्ष, धृतिषेणने १८ वर्ष, विजयगुरुने १३ वर्ष, बुद्धिल्लने २० वर्ष, गंगदेव स्वामीने १४ वर्ष और धर्मसेनने १४ वर्ष (१६ वर्ष किसी किसीके मतसे) तक पुण्य विहारकर श्रुतज्ञानका उद्योत किया। इनका कुल समय १८१ या १८३ वर्ष रहा। अर्थात् महावीर निर्वृत्तिके ३४३ (३४५) वर्ष तक दशपूर्वधारियोंका अस्तित्व रहा। इसके बाद २२० वर्षतक ग्यारह अंगरूप श्रुतज्ञानके धारी कृत्स्न व एकदेशके रूपमें थे। ग्यारह अंगके धारी नक्षत्राचार्य (१८) जयपाल (२०) पांडव (३९) ध्रुवसेन, (१४) और कंसाचार्य, (३२) इस प्रकार पांच

आचार्य १२३ वर्षोंमे हुए। इन पॉचोंके बाद इस भरतमे ग्यारह अंगके धारी नही हुए। तदनंतर ९७ वर्षोमे दस, नव, आठ अंगके धारी सुभद्र (६) यशोभद्र, (१८) भद्रबाहु, (२३) और लोहाचार्य, (५०) इस प्रकार पॉच आचार्योंने जिनशासनका उद्योत किया। यहाँ तक वीर निर्वाण काल ५६५ वर्ष होता है। तदनंतर ११८ वर्षोंमे एक अंगके धारी अर्हद्वलि (२८) माघनंदि, (२१) धरसेनाचार्य, (१९) पुष्पदंत, (३०) भूतबलि, (२०) इस प्रकार पॉच आचार्य हुए। यहाँतक वीर निर्वाणकाल ६८३ वर्ष होते है।

इस प्रकार भगवान् महावीरके निर्वाणके अनंतर ६८३ वर्ष तक श्रुतज्ञान सूर्य चमककर अस्त हो गया। पॉच केवली, पॉच श्रुतकेवली, ग्यारह दश पूर्वी, पॉच एकादशांगधारी और दशनवांगधारियोका जो वर्णन किया है वह सब अनुबद्धोकी अपेक्षासे है। यह वर्णन अनुबद्ध परंपराका है, इसके अलावा आचार्योंकी अनेक परंपराये थी। उनमे भी अनेक उद्भट विद्वान् आचार्य हुए है, उन्होंने जिनशासनका विशेष उद्योत किया। आचारांग धारियोके अनंतर कितने ही एकदेशांगधारी विद्वान् आरातीय आचार्य हुए है। उन्होंने उस एकदेशांग ज्ञानबलसे श्रुतका उपदेश इस भरतमे दिया। एक पट्टावलीमे अर्हद्बलि आदि पॉच आचार्योंको एकांगधारी बतलाया गया है, दूसरी जगह उनको एकदेशांगधारी होनेका उल्लेख मिलता है। सुभद्र यशोभद्र, भद्रबाहु, लोहाचार्य को एकांगधारी बतलाया गया है। इस तरह महावीर प्रभुके निर्वाणके बाद अनेक प्रकांड विद्वान् श्रुतपारगामी महर्षियोंने जिनशासनकी प्रभावना की।

आगमोंके विभागके अनुसार एक २ पूर्वमें अनेक वस्तुएँ और एक-एक वस्तुमें कई प्राभृत होते हैं। आरातीय आचार्योंमे कितने ही आचार्य कितनी ही वस्तुओंके और कितने ही केवल कितने ही प्राभृतोके ज्ञाता रहे थे। महर्षि धरषेनाचार्यको दूसरे आग्रायणी पूर्वकी

पांचवीं वस्तुके चौथे महाकर्म प्राभृतका पूर्ण ज्ञान था। और गुणधर आचार्य पांचवे ज्ञानप्रवाद पूर्वकी दशमी वस्तुके तीसरे प्रेयोदोष प्राभृतके पूर्णज्ञाता थे। धरषेनाचार्यने भूतबलि और पुष्पदंताचार्य को महाकर्म प्रकृति-प्राभृतको पढ़ाया और गुणधर स्वामीने सोलह हजार ग्रंथप्रमाण प्रेयोदोष प्राभृतको संक्षिप्त कर एकसौ अस्सी सूत्रगाथाओंमें और करीब पांचसौ भाष्यगाथाओंमें कषाय प्राभृत नामक ग्रंथ रचा। यहां तक प्राभृतोंका ज्ञान रहा बाद में वह भी नष्ट हो गया एवं उनका अंशरूप ज्ञान रहा।

भगवान पुष्पदंतने 'जीवट्ठाण' का पहिले सत्प्ररूपण अधिकार के एकसौ बीस सूत्र रचकर अपने भानजे जिनपालितको पढ़ाये और उनको भगवान् भूतबलि के पास भेजा, जिनपालितने भूतबलीको सत्प्ररूपणाको सुनाया, भूतबलीने पुष्पदंतस्वामीके अभिप्रायको समझकर महाकर्म प्रकृति प्राभृतको संक्षिप्त कर उसे छह खंडोंमें विभक्त किया उन्होंने पुष्पदंत आचार्यके सूत्रोंसहित पाँच खंडोके छह हजार सूत्र और छट्ठे महाबंधके तीस हजार सूत्र लिखे एवं ज्येष्ठ शुक्ल पंचमीके रोज चतु:संघके सामने उस षट्खंडागमकी पूजा की। तभीसे वह पंचमी श्रुतपंचमीके नामसे प्रसिद्ध हुई।

इससे पहिले लेखन पद्धति ही नहीं थी यह बात नहीं है, परंतु अंग और पूर्व शास्त्रोंको पत्रोंपर लिखनेकी परिपाटी नहीं थी। उनका पठन-पाठन मौखिक ही गुरु परंपरामें होता था।

उस समय अंग और पूर्वशास्त्रोंके अलावा श्रावकोंको स्वाध्याय करने योग्य साररूप अनेक रचनायें थी, परंतु उन सबका व्यवहार मौखिक ही होता था। जब आचार्योंने देखा कि मनुष्योंकी आयु और बुद्धि उत्तरोत्तर अल्प होने लगी है, ऐसी अवस्थामें आगे चलकर श्रुतका विच्छेद होगा। श्रुतका विच्छेद होनेसे जीवोंका अकल्याण

होगा, इस भयसे भव्योंके भावी हितको दृष्टिकोणमें रखकर ग्रंथोंको लिपिबद्ध किया। ताड़पत्रोंपर उस श्रुतदेवीकी स्थापना की।

तदनंतर गुरुपरंपरासे आगमोंकी रचना होने लगी। प्रातः स्मरणीय ऋषियोंने अपने ध्यानाध्ययनसे बचे हुए समयको ग्रंथरचनाके कार्यमें उपयोग किया। क्योंकि चित्तकी चंचलताको दूर करनेके लिए ग्रंथस्वाध्याय या रचनाके सिवाय दूसरा मार्ग ही नहीं है। ध्यानकी अवस्थामें अधिक समयका रहना कठिन है, अतएव उस चंचल चित्तको यदि ग्रंथ रचनाके कार्यमें उपयोग किया तो उससे स्वतःके आत्मपरिणाममें विशुद्धिके साथ दूसरे अनंत भव्योंका कल्याण होता है। अतएव यह एक विशिष्ट धर्म्यध्यान है, अतएव महर्षियोंने इस मार्गका अवलंबन किया। आज यदि पूर्वाचार्योंने ग्रंथ रचना नहीं की होती तो हम लोग बिलकुल अंधेरेमें रहते। हम कौन हैं यह भी समझनेके लिए हमारे पास कोई मार्ग नहीं था। अतएव उन महर्षियोंका हम पर अनंत अनुग्रह है।

बादके कालमें अनेक उद्भट आचार्योंने आध्यात्मिक, सैद्धांतिक, ज्योतिष्य, वैद्यक आदि विषयोंमें उत्तमोत्तम रचनाओंको रचकर श्रुतदेवीके कंठहार बनाये। महर्षि कुंदकुंद स्वामीके प्राभृतशास्त्र, आध्यात्मिक शास्त्र, भगवदुमास्वामीका तत्त्वार्थ ग्रंथ समंतभद्र स्वामीका आचारशास्त्र, वैद्यकशास्त्र एवं न्यायशास्त्र, पूज्यपाद स्वामीकी सर्वार्थसिद्धि, समाधिशतक, संहिताशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, भट्टाकलंकदेवका राजवार्तिक, न्यायशास्त्र, भगवान् वीरसेन व जिनसेन स्वामीकी धवला टीका एवं आर्ष महापुराण, नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तिके गोम्मटसार, क्षपणासारके, विद्यानंदिके श्लोकवार्तिक आदि रचनायें आज इस बातके लिए पर्याप्त साक्षी हैं कि उन महर्षियोंके हृदयमें श्रुतोद्धारकी कितनी उत्कट चिंता थी एवं भव्योंके उद्धारकी कितनी विशुद्ध भावना थी, परंतु खेद है कि उनकी कितनी ही बहुमूल्य रचनायें

आज उपलब्ध होनेपर भी कितने ही लिपिबद्ध श्रुतभी आज उपलब्ध नहीं हैं। उच्चारणाचार्यके १२ हजार उच्चारणासूत्र, कुंदकुंद स्वामीके बारह हजार परिकर्म सूत्र, शामकुंडाचार्यके १२ हजार प्रमाणपद्धति, तुंबुलूराचार्यके ८४००० श्लोक प्रमाण चूडामणि, समंतभद्रकी प्रथम सिद्धांतकी ४८००० श्लोक प्रमाण टीका व गंध हस्तिमहाभाष्य, कहाँ गये? इसी प्रकार विद्यानंदि स्वामीके विद्यानंद महोदय, पूज्यपाद का सारसंग्रह आदि ग्रंथ भी अदृश्य हैं। यह सब हमारे प्रमादका फल है। परंतु इतना निर्विवाद कहना पड़ता है उन वंदनीय विभूतियोंने श्रुतसंरक्षणमें कोई कमी नहीं की। इसीलिए उनकी धवलकीर्ति आज आचंद्रार्क स्थायी हो गई है। अर्वाचीन आचार्योंमें सैकड़ों ऋषियोंने ग्रंथ निर्माण कर विश्वको उपकृत किया। महर्षि प्रभाचंद्राचार्य, इंद्रनंदि वीरनंदि, अभयचंद्र, कुमुदचंद्र, कनकनंदि, कनकसेन, कुमारसेन, गुणनंदी, गुणभद्र, चामुंडराय आदि सैकड़ों आचार्योंने सैकड़ों ग्रंथोंकी रचना कर जैन साहित्यिक क्षेत्रमें अमूल्य रत्नोंको उपस्थित किया है। उन आचार्योंके उपकार से हम कभी उऋण नहीं हो सकते।

इस प्रकार अनेक उद्भट आचार्योंने जैनतत्त्वज्ञान, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रवाद आदिके अनेक ग्रंथोंकी रचना कर हमलोगोंको अनंत उपकार किये हैं। कुंदकुंद स्वामीसे लेकर वर्तमानके महान् आचार्य शांतिसागर महाराज पर्यंत ऐसे हजारों साधु हो गये हैं, जिन्होंने अपने पुण्यविहारसे, भव्योंका कल्याण किया है। उन्हीं चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री के अनेक विद्वान् तपस्वी साधुओं में आचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज बहुश्रुत विद्वान् हुए। जिन्होंने २०वीं शती में संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध करते हुए अनेक धर्मग्रंथ बड़ी सरल और सुबोध शैली में लिखे हैं। उन्हीं ग्रंथोंकी श्रृंखला में प्रस्तुत "भावत्रयफलप्रदर्शी" ग्रंथ हमारे अशुभ शुभ और शुद्ध भावों का फल बतानेवाला पठनीय ग्रंथ है।

आचार्य चरणसेवक
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

॥ श्री शान्तिनाथाय नमः ॥

श्री शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान, श्री महावीरजी

संक्षिप्त परिचय

राजस्थान की राजधानी जयपुर से करीब १४० कि.मी. दूर जिला करौली में श्री महावीरजी की पुण्यधरा पर गम्भीरी नदी के पूर्वी तट पर "श्री शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान स्थित है। इस संस्थान का नामकरण परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर जी महाराज (दक्षिण) तथा आपके पट्टाधीश एवं प्रथम शिष्य परमपूज्य आचार्य १०८ श्री वीरसागर जी महाराज के नाम पर "शान्तिवीर" दिगम्बर जैन संस्थान रखा गया है। इस संस्थान के प्रधान संस्थापक परम विद्वान् सप्तम प्रतिमाधारी ब्र. प. श्री लालजी थे। प्रारम्भ में इस संस्थान का कार्य ब्र. कृष्णाबाई जी के आश्रम से प्रारम्भ हुआ एवं सन् १९६१ में एक प्रेस को कलकत्ता से श्री महावीर जी लाकर इस आश्रम से ही कई जैन शास्त्रों एवं पुराणों का प्रकाशन हुआ। तद्नंतर ब्र. श्री लालजी ने गम्भीर नदी के पूर्वी तट पर दातारों से दान के रूप में आर्थिक सहायता प्राप्त करके इस संस्थान के लिए जमीन खरीदी एवं धीरे-धीरे भवन तथा कमरों का निर्माण करवाया। इसी भवन में प्रेस लगाई जिससे कुछ समय तक "श्रेयोमार्ग" नामक पत्र भी प्रकाशित हुआ। जिसके प्रधान सम्पादक मूर्धन्य विद्वान् ब्र. पं. खूबचन्द जी शास्त्री इन्दौर एवं स्व. ब्र. पं. श्री लालजी शास्त्री, ब्र. पं. श्री सूरजमलजी बाबाजी भी रहे थे। श्रेयोमार्ग पत्र की करीब ५,००० प्रतियां छपकर पूरे देश में जाती थी एवं अहिंसा धर्म का प्रचार-प्रसार करती थी।

श्रेष्ठी एवं श्रावकों के सहयोग एवं आचार्यों व मुनिराजों के आशीर्वाद से यह संस्थान निरन्तर प्रगति करता रहा एवं आर्थिक सहयोग भी प्रचुर मात्रा में मिलता रहा। जिसके परिणाम स्वरूप संस्थान नये-नये कार्यों को आगे बढ़ाता रहा। इसी क्रम में अनेकों सुन्दरतम् प्रतिमाओं का निर्माण भी होता रहा और सन् १९६५ में आचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज के ससंघ पावन सान्निध्य में पंचकल्याण प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन हुआ जिसमें आचार्य कल्प श्रेयांस सागर जी महाराज सहित एवं अनेक मुनि दीक्षा एवं २० आर्यिका माताओं को दीक्षा भी प्रदान की गई।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के सानन्द सम्पन्न होने के कुछ समय बाद प्रथम संस्थापक ब्र. लालजी का समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् इस संस्थान का कार्य ब्र. लाडमल जी एवं ब्र. सूरजमलजी बाबाजी ने संभाला एवं समय के साथ-साथ संस्थान का कार्य भी आगे बढ़ता गया। दानी दाताओं के प्रदत्त सहयोग से २६ फुट उन्नत विशालकाय १००८ श्री शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा तथा शांतिनाथ भगवान के दोनों तरफ तलघर में १००८ श्री महावीर स्वामी की ५ फुट उन्नत प्रतिमा, सहस्रकूट चेत्यालय जिसमें १००८ प्रतिमाएं उकैरी गई एवं तीन-तीन फुट ऊंची चौबीसी का निर्माण हुआ जिसको दर्शनीय स्वरूप प्रदान किया। वि.सं. २०२२ में यात्रा से आकर संघ ने यहां वर्षायोग धारण किया एवं उन्हीं के पावन सान्निध्य में दूसरे पंचकल्याण की योजना प्ररम्भ हुई। किन्तु दुर्भाग्यवश प्रतिष्ठा के १० दिन पूर्व फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को आचार्य श्री दिवगंत हो गये। प्रतिष्ठा पूर्ववत् विशाल रूप से ही सम्पन्न हुई।

इसी शुभावसर पर परमपूज्य मुनि १०८ श्री धर्मसागर जी महाराज को तपकल्याण के दिन आचार्य श्री के पट्ट पर आसीन किया गया एवं वर्तमान

में आचार्य वर्धमान सागर जी महाराज सहित मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक आदि की ग्यारह दीक्षाएं सम्पन्न हुई। कुछ समय पश्चात् सुजानगढ़ निवासी रायसहाब चांदमलजी पांडया द्वारा प्रदत्त दान से ६१ फुट उन्नत संगमरमर का विशाल मानस्तम्भ जिसमें ४ प्रतिमाएं नीचे एवं ४ प्रतिमाएं ऊपर ऐसी कुल ८ प्रतिमाएं १००८ चन्द्रप्रभु भगवान की विराजमान है जिसके चारों और जैन धर्म से सम्बन्धित कई प्रसंगों को उकेरा गया है। उक्त मानस्तम्भ एवं प्रतिमाओं की बाद में सानन्दपूर्वक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई गई।

संस्थान ने जहां नवनिर्मित प्रतिमाओं एवं यात्रियों की सुविधा के लिए आवास योजनाओं को मूर्तरूप दिया, उसी क्रम में उनहोंने एक गुरुकुल की स्थापना एवं योजना को भी साकार रूप प्रदान किया जिसका दिगम्बर जैन समाज भरपूर लाभ प्राप्त कर रहा है। गुरुकुल में छात्र निःशुल्क धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा प्राप्त करते हैं जो दानदातारों से प्राप्त सहयोग से ही संभव हो पाता है।

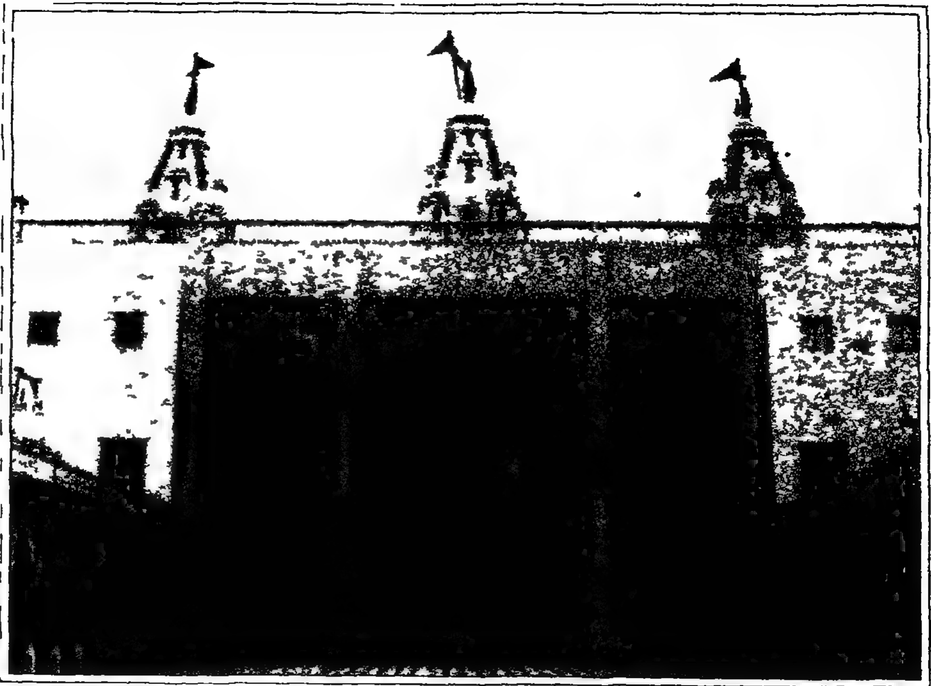
सन् १९९१ में शांतिवीर दिगम्बर जैन संस्थान में पं. छोटेलाल जी बरैया द्वारा प्रदत्त तीन अष्ट धातु से निर्मित खड्गासन प्रतिमाओं का पंचकलयाण प्रतिष्ठा महोत्सव आचार्य सुबाहु सागर जी महाराज के पावन सान्निध्य में सम्पन्न हुआ।

इतिहास समय समय पर करवटे बदलता रहा है और उसी क्रम में एक हादसा १९९५ अक्टूबर माह को ऐसा हुआ जिसने सभी को चकित कर दिया। संस्थान में स्थित जिन मंदिर में हो रहे जीर्णोद्धार के समय भरी दोपहर में यकायक मन्दिर जी धराशाही हो गया। सुखद बात यह रही की इस भीषण

हादसे के पश्चात् भी जिन मूर्तियों एवं दर्शनार्थियों को किसी भी तरह की क्षति नहीं पहुंची। केवल क्षेत्रपाल बाबा की मूर्ति को ही क्षति पहुंची जिससे ऐसा आभास हुआ कि जैसे क्षेत्रपाल बाबा ने ही सारा उपसर्ग अपने ऊपर ले लिया हो। इस घटना के पश्चात् संस्थान की ट्रस्ट कमेटी ने विस्तृत विचार विमर्श के पश्चात् ब्र. सूरजमल जी बाबाजी के सुझाव एवं भावनानुसार उसी संस्थान पर नवीन जिन मन्दिर बनाने का निश्चय किया गया एवं संस्थान के युवा ट्रस्टी श्री राजकुमार जी कोठ्यारी को यह जिम्मेदारी सोंपी गई। जिसको उन्होंने तुरन्त ही दानदाताओं के सहयोग से निर्माण कार्य को योजनानुसार प्रारम्भ कर अल्प समय में ही अपनी अथक मेहनत एवं वास्तुविद्ों की सहायता से जिन मन्दिर को भव्य एवं नवीन रूप प्रदान किया। जिस नवीन जिन मन्दिर की नींव जो कि ब्र. सूरजमलजी बाबाजी द्वारा लगाई गई थी वे भी हमें बीच समय में ही परलोक सिधार गये। उनकी इस अकल्पनीय मेहनत को हम कभी भी नहीं भुला सकेंगे।

जनवरी १९९९ में वह घड़ी भी आई जब परमपूज्य १०८ आचार्य श्री वर्धमान सागर जी महाराज ससंघ एवं गणिनी आर्यिका १०५ सुपार्श्वमति माताजी ससंघ के पावन सान्निध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का कार्यक्रम विधि-विधानानुसार सोल्लास सानन्द सम्पन्न हुआ। पंचकल्याणक के सभी कार्यक्रम ऐतिहासिक रहे।

-ट्रस्ट कमेटी



विशालकाय 31 फुट उन्नत प्रतिमाश्री शान्तिनाथ भगवान एवं चौबीसी



नवनिर्मित जिनालय स्थित मूल वेदी

श्री शान्तिनाथ भगवान



चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी

जन्म : सन् 1872 **क्षुल्लक दीक्षा** : सन् 1915

मुनि दीक्षा : सन् 1920 **आचार्य पद** : सन् 1924

समाधि : 18 सितम्बर, 1955, कुन्थलगिरि



आचार्य श्री वीरसागर जी

जन्म : आषाढ शुक्ल पूर्णिमा विक्रम संवत् 1933
ई.स. 1876 विरग्राम, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
स्वर्गवास : अश्विन कृष्णा अमावस्या विक्रम संवत् 2014
ई.स 1957 खानिया, जयपुर (राजस्थान)



आचार्य श्री शिवसागर जी

जन्म विक्रम सवत् 1958 ई स 1901 आडगॉव, औरगाबाद (महाराष्ट्र)

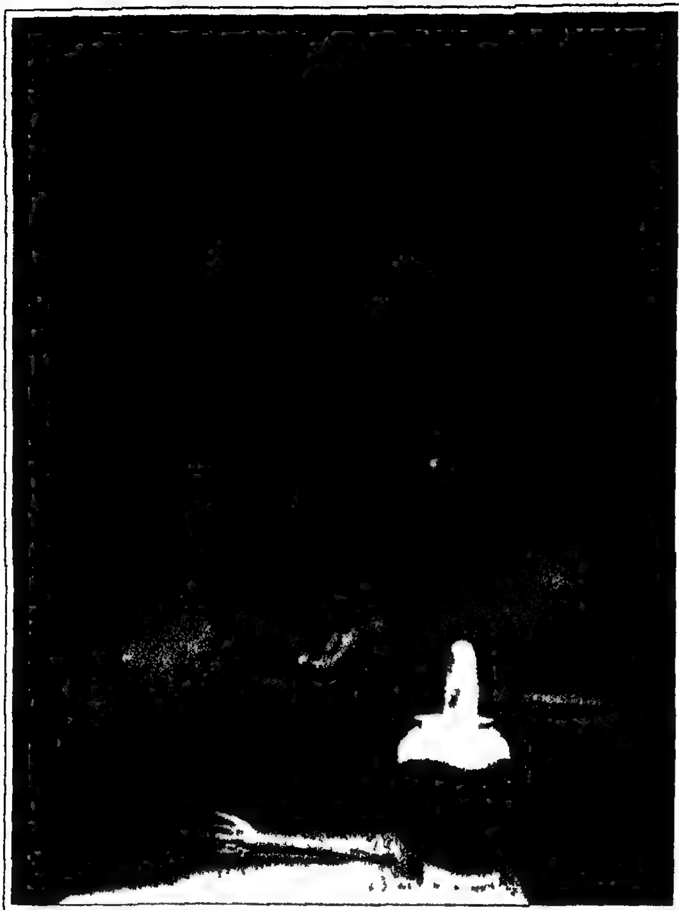
स्वर्गवास फाल्गुन कृष्णा अमावस्या

विक्रम सवत् 2025, दिनाक - 16 फरवरी, 1969 श्रीमहावीरजी (राजस्थान)



आचार्य श्री धर्मसागर जी

जन्म . पौष शुक्ला पूर्णिमा विक्रम सवत् 1970
गम्भीरा, बूदी (राजस्थान)
स्वर्गवास : दिनाक 24 अप्रेल, 1987 सीकर (राजस्थान)



आचार्य श्री अजितसागर जी

जन्म · विक्रम सवत् 1982 भौरा, भोपाल (मध्य प्रदेश)
स्वर्गवास वैशाख शुक्ला पूर्णिमा, विक्रम सवत् 2047
दिनाक : 9 मई, 1990 सावला (राजस्थान)



आचार्य श्री वर्धमानसागर जी

जन्म 18 सितम्बर 1950 सनावद (मध्य प्रदेश)

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

विषय	पृष्ठ संख्या

विषय	पृष्ठ संख्या
बकरा होनेका कारण	९१
कौवा होनेका कारण	९२
दुष्ट होनेका कारण	९३
व्यभिचारी होनेका कारण	९४
पागल होने का कारण	९५
बंदीगृहमे पड़नेका कारण	९६
उत्पन्न होते ही मर जानेका कारण	९७
निंदनीय होने का कारण	९८
अपमृत्यु होनेका कारण	९९
धन-घर आदिके जल जानेका कारण	१००
स्त्री पुत्रादिकके वियोग का कारण	१०१
धन नाश होने का कारण	१०२
कंठमाला होनेका कारण	१०३
ऊँटकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण	१०४
हाथी की पर्याय प्राप्त होनेका कारण	१०५
जोककी पर्याय प्राप्त होनेका कारण	१०५
उल्लू पक्षी की पर्याय प्राप्त होनेका कारण	१०६
डांस, मच्छरकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण	१०७
सर्पकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण	१०८
बिच्छूकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण	१०९

विषय	पृष्ठ संख्या
चिड़िया की पर्याय प्राप्त होनेका कारण	११०
तोते की पर्याय प्राप्त होनेका कारण	१११
वृक्ष की पर्याय होनेका कारण	११२
मयूर की पर्याय प्राप्त होनेका कारण	११३
गृद्ध की पर्याय प्राप्त होनेका कारण	११४
बंदर की पर्याय प्राप्त होनेका कारण	११५
साधर्मियोंके साथ विवाद करनेका कारण	११६
राजा को रंक होनेका कारण	११७
कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्रकी प्रशंसा करनेका कारण	११८
घर गृहस्थीसे रहित होनेका कारण	११९
कीड़े-मकोड़ेकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण	१२०
शक्तिहीन होनेका कारण	१२१
श्रेष्ठकार्य करनेपर भी निंदा होनेका कारण	१२२
सत्कार्य करनेपर भी धनादिककी हानि होनेका कारण	१२३
वर्षा न होनेका कारण	१२४
पुण्यकार्य करनेवालोंके विरोध करनेका कारण	१२५
विपरीतबुद्धि होनेका कारण	१२६
इस अध्यायके पठन-पाठनका अभिप्राय	१२७
इस अध्यायका सारांश	१२८
भावोंकी दुष्टता और चित्तके विकारोंका कारण	१२९

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय





आचार्य श्री कुन्थुसागर जी

जन्म वीर निर्वाण संवत् २४२०

बेलगाव (कर्नाटक)

श्री आचार्य कुन्थुसागर जी महाराज का

* संक्षिप्त परिचय *

आपने अपने शुभजन्म से कर्नाटक प्रान्त के बेलगाँव जिले के ऐनापुर नगर को पुनीत किया था। आपके पिताजी का नाम सातप्पा और मातेश्वरी का नाम सरस्वती था। आपका शुभ जन्म वीर नि० सं० २४२० में हुआ था। आपका जन्मकालिक नाम "रामचन्द्र" था। आपकी जाति 'चतुर्थ' थी।

ये श्री १०८ पूज्य आचार्य कुन्थुसागर जी महाराज, परम-पूज्य गुरु श्री १०८ श्री आचार्य शान्तिसागर जी महाराजके प्रमुख गण्य शिष्य थे। आप अपने गुरुदेवके अनुरूप शान्त-स्वभावी, भद्र एवं सौम्यमुख थे।

मुनि अवस्थामें ही आपने मुनिराज श्री सुधर्मसागरजी से संस्कृत भाषा का अभ्यास किया था और फिर संस्कृत भाषामें ग्रन्थ-रचना प्ररम्भ की थी। उन्हीं रचनाओं में से एक रचना प्रस्तुत ग्रन्थ है जो हमारे अशुभ, शुभ और शुद्ध भावों का फल बतलाने वाला पठनीय ग्रन्थ है। ग्रन्थकी भाषा सरल तथा वाक्यविन्यास सुन्दर है।

स्व. पूज्य कुन्थुसागर जी महाराज के उपदेशसे गुजरात, काठियावाड़, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के अनेक नृपति बहुत प्रभावित हुए थे और वे महाराज के अच्छे भक्त बन गये थे।

पूज्य कुन्थुसागर जी की मुनिचर्या निर्दोष एवं आदर्श थी। वे कषायविजयी, परिषहजयी तथा विद्वान् थे। अतः वे सदा प्रातः स्मरणीय हैं।

मुनि श्री १०८ चारित्र सागर
आचार्य श्री १०८ वर्धमान सागर जी महाराज संघस्थ

भावत्रयफलप्रदर्शी

आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरविरचित

भावत्रयफलप्रदर्शी

मंगलाचरण

ज्ञानादित्यं जिनं नत्वा श्रीदं सर्वप्रकाशकम् ।
भक्त्या शान्तिसुधर्मौ च ज्ञानवैराग्यवर्द्धकौ ।। १ ।।

भावत्रयाणां हि फलप्रदर्शी, ग्रन्थो मयायं सकलात्मशुद्ध्यै ।
विरच्यते स्वत्मरतेन शुद्ध्या, श्रीकुंथुनाम्ना वरसूरिणेति ।।२ ।।

महावीर जिनराजके चरण नमूँ चित लाय ।
भावत्रयफलदर्शकी टीका लिखूँ बनाय ।।

अर्थ—जो जिनेन्द्रदेव आत्मज्ञानको प्रकाशित करनेके लिये सूर्यके समान है, अंतरंग बहिरंग लक्ष्मीको देनेवाले हैं और जो समस्त तत्त्वोंको प्रकाशित करनेवाले हैं ऐसे भगवान् जिनेन्द्रदेवको मैं सबसे पहले नमस्कार करता हूँ। तदनंतर मैं वैराग्यको बढ़ानेवाले और जैनेश्वरी दीक्षा देनेवाले आचार्यवर्य दीक्षागुरु श्री शांतिसागर आचार्यको नमस्कार करता हूँ और अंतमें ज्ञानकी वृद्धि करनेवाले विद्यागुरु आचार्य सुधर्मसागरको नमस्कार करता हूँ। इन सबको भक्तिपूर्वक नमस्कार करनेके अनंतर अपने आत्मामें लीन रहनेवाला और श्रेष्ठ आचार्य ऐसा मैं श्रीकुंथुसागर स्वामी अपने मन, वचन, कायकी शुद्धतापूर्वक समस्त भव्य-जीवोंकी आत्माओं को शुद्ध करनेके लिये तीनों भावोंके फलको दिखलानेवाले इस ग्रंथका निरूपण करता हूँ।

भावार्थ–जिस प्रकार इस संसारमें समस्त पदार्थोंको प्रकाशित

करनेवाला सूर्य है उसी प्रकार शुद्ध आत्माके स्वरूपको वा शुद्ध आत्माके शुद्ध बोधको प्रकाशित करनेवाले भगवान् जिनेन्द्रदेव ही हैं। इसका भी कारण यह है कि भगवान् जिनेन्द्रदेव अपने अगाध तपश्चरणके द्वारा उसी आत्मज्ञानको प्राप्त होकर सर्वदर्शी सर्वज्ञ बन गये हैं साथ ही वे निरुपम परमवीतराग भी हैं। यही कारण है कि वे भगवान् जिनेन्द्रदेव आत्मज्ञानके स्वरूपका पूर्ण उपदेश देते हैं तथा वीतराग होनेके कारण यथार्थ स्वरूपका उपदेश देते हैं। इसलिए वे भगवान् ज्ञानभानु कहलाते हैं। इसके सिवाय वे भगवान् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्यरूप अनंतचतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मीको स्वयं धारण करते हैं और उनकी सेवा करनेवाले भव्यजीवोंको प्रदान करते हैं। यहाँपर प्रदान करनेका अर्थ देना नहीं है, किन्तु जो भव्य जीव भगवान् जिनेन्द्रदेवकी सेवा भक्ति करते हैं, उनके गुणोंको स्मरण कर उनका ध्यान करते हैं वे भव्यजीव अपने कर्मोंको नष्टकर स्वयं जिनेन्द्र बन जाते हैं। यदि वे भव्यजीव भगवान् जिनेन्द्रदेवके गुणोंका ध्यान नहीं करते तो उनके कर्मोंका नाश कभी नहीं होता। तथा बिना कर्मोंको नाश किये वे कभी जिनेन्द्रपदको प्राप्त नहीं हो सकते। इस प्रकार वे भव्य जीव जो जिनेन्द्रपदको प्राप्त हुए हैं उसमें भगवान् जिनेन्द्रदेवके गुणोंका ध्यान करना ही कारण पड़ता है और इसीलिए उस अनंतचतुष्टयरूप लक्ष्मीको वा जिनेन्द्रपदको देनेवाले भगवान् जिनेन्द्रदेव हैं ऐसा कहा जाता है। भगवान् जिनेन्द्रदेवके जिस प्रकार अंतरंग लक्ष्मीको देनेवाले हैं उसी प्रकार समवसरण आदि बाह्य लक्ष्मीको देनेवाले हैं। तथा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होनेके कारण जीव, अजीव, रूपी, अरूपी आदि समस्त तत्त्वोंको प्रकाशित करनेवाले हैं। ऐसे भगवान् जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ। तदनंतर मैं दीक्षागुरु और विद्यागुरु दोनों आचार्योंको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार विघ्नशांतिके लिए देव और गुरुको नमस्कार कर मैं इस ग्रथंका निर्माण करता हूँ।

इस संसार में जितने संसारी जीव हैं उन सबके परिणाम तीन प्रकार के होते हैं। कितने ही जीवोंके परिणाम अशुभ हाते हैं, कितने ही जीवोंके परिणाम शुभ होते हैं और कितने ही योगी व महायोगियोंके परिणाम शुद्ध होते हैं। मुक्तजीवोंके परिणाम सदा शुद्ध ही होते हैं। इस ग्रंथमें तीनों प्रकारके परिणामोंका फल दिखलाया है और इसीलिए इस ग्रंथका नाम '**भावत्रयफलप्रदर्शी**' रक्खा है। इन तीनों प्रकारके परिणामोंके फलको जानकर भव्यजीव अशुभ परिणामोंका त्याग कर दें, शुभ परिणामोंको धारण करें और फिर शुद्ध परिणामोंका अभ्यास करते हुए शुभपरिणामोंका भी त्याग कर शुद्धपरिणामोंको धारण करें यही इस ग्रंथकी रचनाका प्रयोजन है। यहाँपर इतना समझ लेना चाहिये कि अशुभपरिणामेंसे पापकर्मोंका आस्रव होता है शुभपरिणामोंसे पुण्यकर्मोंका आस्रव होता है। पापकर्मोंसे नरकादिक की प्राप्ति होती है और पुण्यकर्मसे स्वर्गादिककी प्राप्ति होती है, परंतु स्वर्ग व नरक दोनोंमें परिभ्रमण करना संसार है, इस संसारका त्याग शुद्ध परिणामोंसे होता है। इसीलिए शुभपरिणामोंका भी त्याग कर शुद्धपरिणाम धारण करने का उपदेश दिया जाता है मोक्षकी प्राप्ति शुद्ध परिणामोंसे ही होती है इसलिए शुद्ध परिणाम ही आत्मका वास्तविक हित करनेवाले परिणाम हैं। उन शुद्ध परिणामोंको धारण कर भव्यजीव अपने आत्माका कल्याण करें व अपनी आत्माको शुद्ध करें यही इस ग्रंथके पठन-पाठन करनेका फल है।

इस पहले अध्यायमें अशुभोपयोगका फल दिखलाते हैं, और वह भी प्रश्नोत्तररूपसे दिखलाते हैं —

सबसे पहले शोक का कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात् ।
प्राप्नोति शोकं सततं व्यथादम् ।।

अर्थ—हे देव ! अब कृपाकर मुझे यह बतलाइये कि यह संसारी जीव किस पापकर्मके उदयसे सदाकाल दुःख देनेवाले शोकको प्राप्त होता रहता है ?

उत्तर— **शोकेन दग्धान् मनुजान् विलोक्य ,**
वा द्वेषबुद्ध्या परिपीडयित्वा ।
उत्पाद्य वैरं हृदि यश्च तुष्येत् ,
प्राप्नोति शोकं मनुजः स पश्चात् ।। ३ ।।

अर्थ—जो मनुष्य शोकसे दग्ध हुए मनुष्योंको देखकर संतुष्ट होता है, अथवा जो मनुष्य किसी द्वेषबुद्धिसे अन्य जीवोंको दुःख देता है, अथवा जो मनुष्य अपने हृदयमें किसीके साथ वैर विरोध कर संतुष्ट होता है वह मनुष्य इन कार्योंके करनेके अनंतर अथवा मरनेके अनंतर शोकको प्राप्त होता है ।

भावार्थ—मनुष्योंको जो शोक वा संताप होता है वह असाता वेदनीयकर्मके उदयसे होता है । तथा असाता वेदनीयकर्मका आस्रव स्वयं शोक संताप करने से होता है अथवा दूसरोंको शोक संताप उत्पन्न करनेसे होता है अथवा स्वयं शोक संताप करने और दूसरोंको भी शोक संताप उत्पन्न करनेसे होता है । जब यह जीव किसी जीवको शोकसे व अन्य किसी प्रकारके दुःखसे अत्यंत दुःखी देखकर प्रसन्न होता है व स्वयं किसीको दुःख देकर व मारकर अथवा अन्य जीवोंकी किसी भी प्रकारकी हानि करके प्रसन्न होता है अथवा किसीके साथ वैर-विरोध करके प्रसन्न होता है तब उस जीवके असाता वेदनीयकर्मका आस्रव होता है । उस आस्रवके अनंतर समयमें उन आए हुए असाता वेदनीय कर्मोंका बंध हो जाता है और वह बंधको प्राप्त हुआ कर्म जब उदयमें आता है तब उस कर्मके उदयसे उस जीवको अत्यंत शोक और संताप उत्पन्न होता है । यही समझकर प्रत्येक जीवको किसी जीवको सताना नहीं चाहिये, किसी जीवको किसी प्रकारका दुःख नहीं देना चाहिए

और किसीके साथ किसी भी प्रकारका वैर विरोध नहीं करना चाहिए। आत्माके सुखका यही सर्वोत्तम उपाय है।

निर्धनता का कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयाद्देव धनेन हीनः।
कस्मात्प्रभोऽयं भवतीह जीवः।।

अर्थ—हे देव! हे प्रभो! यह संसारी जीव किस कर्मके उदयसे व कैसे काम करनेसे धनहीन होता है?

उत्तर— व्ययं सुपात्रे न धनस्य कृत्वा,
हठाद्धनं यश्च परस्य हृत्वा।
तुष्येत्परं वा कृपणं च दृष्ट्वा,
हीनो धनैश्चान्यभवे भवेत्सः।।४।।

अर्थ—जो पुरुष सुपात्रोंके लिए अपना धन खर्च नहीं करते, अथवा जो पुरुष बलपूर्वक दूसरोंके धनको हरण कर लेते हैं, अथवा जो पुरुष अन्य कृपणोंको देखकर संतुष्ट होते हैं, ऐसे पुरुष दूसरे भवमें जाकर धनहीन होते हैं।

भावार्थ—धनकी प्राप्ति दानसे होती है। जो पुरुष पात्रदान किया करते हैं उनको भोगभूमिकी प्राप्ति होती है। भोग-भूमिमें धनकी चिन्ता ही नहीं करनी पड़ती। वहाँपर कल्पवृक्षोंसे इच्छानुसार पदार्थोंकी प्राप्ति होती रहती है। अथवा पात्रदान देनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। स्वर्गमें भी धनकी चिंता नहीं करनी पड़ती, वहाँपर भी कल्पवृक्ष हैं अनेक प्रकारकी विभूतियाँ हैं और मानसिक आहार है। देवोंको जब भूख लगती है तभी उनके कंठसे अमृत झर पड़ता है। इस प्रकार वे देव भी सर्वथा निश्चित रहते हैं। मनुष्योंमें जो धनी देखे जाते हैं उनको भी धनकी प्राप्ति पूर्वजन्ममें दिये हुए दानके फलसे ही होती है। अतएव यदि पुरुषोंको आगेके जन्ममें भी धन प्राप्त करना हो तो उनको

भी सदाकाल पात्रदानमें ही अपना धनखर्च करना चाहिये। दान देनेमें भी पात्र-अपात्र व कुपात्रका विचार अवश्य करना चाहिये। कुपात्र व अपात्रोंको दिया हुआ धन श्रेष्ठ दान नहीं कहलाता, उस दानका फल दु:खरूप ही होता है। इसलिए पात्रोंको दिया हुआ दान ही श्रेष्ठ दान कहलाता है। जो पुरुष रत्नत्रयसे पवित्र हैं उनको पात्र कहते हैं। उनमें रत्नत्रयसे सुशोभित मुनि उत्तमपात्र कहलाते हैं, व्रती श्रावक मध्यमपात्र कहलाते हैं और सम्यग्दृष्टि अव्रती श्रावक जघन्यपात्र कहलाते हैं। ये सब पात्र धर्मपात्र कहलाते हैं। इनको आवश्यकतानुसार दान देना चाहिये। मुनियोंको आहारदान, शास्त्रदान, पिछी, कमंडलु, औषध आदि देना चाहिए। ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी आदिको आवश्यकतानुसार आहारदिक व वस्त्रादिक देना चाहिये। श्रावकोंको आहारदान आदि समानदान देना चाहिए अथवा उनकी आवश्यकताको समझकर देना चाहिए। किसी किसी श्रावकको धर्मकी दृढताके लिए, धन, वर्तन, वस्त्र आदि भी दिए जाते हैं। इस प्रकार धर्मपर श्रद्धा रखकर दान देनेसे धनकी प्राप्ति होती है। जो पुरुष धन पाकर भी पात्रदान नहीं करते उनका धन व्यर्थ ही समझना चाहिये। ऐसा धन जले हुए बीजके समान है। जैसे जले हुए बीजसे दूसरा अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना पात्रदान दिए दूसरे जन्ममें धनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। तथा बिना धनके वह फिर पात्रदान आदि पुण्यकार्य नहीं कर सकता। इस प्रकार वह पुरुष जन्म-जन्मांतर तक निर्धन बना रहता है।

इसी प्रकार जो पुरुष बलपूर्वक दूसरोंका धन छीन लेता है। वह भी अगले जन्ममें निर्धन ही होता है। क्योंकि धन छीनने वाला तो पात्रदानादिक कर ही नहीं सकता तथा धन छीन लेने के साथ-साथ उस धनीके पात्रदान आदि पुण्यकार्योंको भी छीन लेता है। क्योंकि धन छिन जानेके कारण वह धनी भी पात्रदानादिक नहीं कर सकता। इस

प्रकार धन छीननेवाला पुरुष अपने पुण्यकर्मको भी रोकता है। और दूसरोंके पुण्य कर्मको भी रोकता है। फिर भला ऐसा पुरुष निर्धनी क्यों नहीं हो सकता ? अवश्य होता है। इसी प्रकार जो पुरुष कृपणको देखकर संतुष्ट होता है। वह भी निर्धनी ही होता है क्योंकि दानधर्ममें खर्च न करनेवाला मनुष्य ही कृपण कहलाता है। ऐसे कृपण मनुष्यको देखकर दानी पुरुष तो कभी प्रसन्न नहीं हो सकता उसको देखकर तो दान धर्ममें खर्च न करनेवाला कृपण मनुष्य ही प्रसन्न हो सकता है और इसीलिए ऐसा मनुष्य परलोकमें अवश्य निर्धनी होता है।

यहाँपर इतना और समझ लेना चाहिये कि धनकी गति ही तीन होती हैं। पहली गति दान, दूसरी गति भोग और तीसरी गति नाश। इनमेंसे दान देना सर्वोत्तम गति है। धनको भोगोपभोगमें खर्च करना मध्यम गति है। तथा जो पुरुष न दान देते हैं और भोगोपभोगमें खर्च करते हैं उनके धनकी तीसरी नाशरूप गति होती है, अर्थात् उनका धन अवश्य नष्ट होता है। अतएव धनको पाकर दान अवश्य देना चाहिये जिससे कि निर्धनताकी प्राप्ति कभी न हो।

अनादरका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— **पापोदयान्मे वद देव! कस्मा—**
दनादरः कौ भवतीह जन्तोः ।।

अर्थ — हे देव! अब यह बतलाइये कि पाप कर्मके उदयसे इस जीवका इस पृथ्वीपर अनादर होता है?

उत्तर— **पुरा भवे देव गुरुस्मृतीनां,**
कृत्वाऽपमानं हृदि यो ह्यतुष्यत् ।
तस्यापमानोऽपि पदे पदे स्या—
न्निंदा सदा चान्यभवेऽपकीर्तिः ।।५।।

अर्थ—जो पुरुष पहले भवमें देव, गुरु और शास्त्रोंका अपमान

कर अपने हृदयमें संतुष्ट होता है वह पुरुष स्थान-स्थानपर अपमानित होता है, सदाकाल उसकी निंदा होती रहती है और अगले जन्ममें उसकी अपकीर्ति होती है।

भावार्थ—अनंतचतुष्टय और समवसरण आदि विभूतिके साथ विराजमान भगवान् तीर्थंकरपरमदेवको देव कहते हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु गुरु कहलाते हैं तथा वीतराग सर्वज्ञ परम अरहंतदेवकी वाणीको तथा तदनुसार गुरुओंकी वाणीको शास्त्र कहते हैं। ये तीनों ही मोक्षके करण हैं। इसीलिए इनकी निंदा करना मोक्षकी निंदा करना है। यही कारण है कि इनकी निंदा करनेसे स्थान-स्थान पर इस जीवकी निंदा होती है तथा परलोकमें नरकादिककी दुर्गति प्राप्त होती है।

"भगवान् अरहंत देव समवसरणमें भी आहार लेते हैं व मल, मूत्र करते हैं, उनके परीषह भी होती है" आदि कहना अरहंतदेवकी निंदा करना है। वीतराग परमगुरु समस्त परिग्रहोंके त्यागी होते हैं। इसलिए वे सदा दिगंबर अवस्था धारण करते हैं। "उन परम दिगंबरमुनियोंको नग्न कहकर उनकी हँसी करना, उनमें अरुचि करना, उनके दर्शन नहीं करना, उनसे द्वेष करना, उनके लिए बुरे शब्द कहना, उनके लिए वैयावृत्त्य करनेका निषेध करना, उनकी चर्या व विहार आदिकी निंदा करना" गुरुओंकी निंदा कहलाती है। "शास्त्रोंमें जो कुछ लिखा है वह सब ठीक नहीं है, उसमें अध्यात्मवाद वा तत्त्ववाद भले ही ठीक हो परंतु क्रियाकांड व व्यवहारचारित्रका निरूपण व त्याग मर्यादाका कथन अथवा दान पूजनका प्रकरण सब ज्योंका त्यों ठीक नहीं है। पूजनमें पंचामृताभिषेक किसीका मिलाया हुआ है, यज्ञोपवीत विधि मिलाई हुई है, पुष्प फलोंसे पूजा करना इस कालमे ठीक नहीं है" इत्यादि वचनोंका कहना शास्त्रोंकी निंदा करना है। अथवा "विजातीयविवाह शास्त्रसम्मत है, इस कालमें

विधवाविवाह कर लेना शास्त्रसम्मत है, दस्साओंको शुद्ध मान लेना और उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार करना शास्त्रसम्मत है, अछूतोंको मंदिरमें जाने देना व उनके साथ खानेपीनेका व्यवहार रखना शास्त्र-सम्मत है" इत्यादि वचन कहना शास्त्रोंकी निंदा व अपमान है। शास्त्रोंके विरुद्ध वचन कहना भी शास्त्रोंका अपमान है। इस प्रकार देव-शास्त्र-गुरुका अपमान करनेसे इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें इस जीवका अपमान होता है तथा नरकादिक दुर्गति प्राप्त होती है। इसलिए ऐसे पापोंसे बचनेके लिए देव-शास्त्र-गुरुओंका अपमान कभी नहीं करना चाहिए।

दुष्ट स्त्री प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
नरः कुभार्यां लभतेऽन्यलोके।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस कर्मके उदयसे इस जीव को परभवमें दुष्ट स्त्री प्राप्त होती है? है।

उत्तर— पत्न्या समं यः कलहं च कृत्वा,
निंदां सुनार्याश्च विधाय रोषात्।
दृष्ट्वा ह्यतुष्यत्कलिकारिणीं स्त्रीं,
स दुष्टभार्यां लभतेऽन्यलोके।।६।।

अर्थ—जो मनुष्य अपनी स्त्रीके साथ रात-दिन लड़ता रहता है, अथवा किसी द्वेषके कारण सदाचारिणी स्त्रियोंकी निंदा करता रहता है, अथवा कलह करनेवाली स्त्रियोंको देखकर अत्यंत संतुष्ट होता है, ऐसा मनुष्य परलोकमें जाकर अत्यंत दुष्ट स्त्रीको पाता है।

भावार्थ—धर्मपत्नी धर्मकार्योंमें सहायता देनेवाली होती है। बिना धर्मपत्नीके पात्रदानकी उत्तम व्यवस्था नहीं हो सकती, न प्रति

दिन हो सकती है, तथा जिनपूजनमें भी बिना धर्मपत्नीके नैवेद्य आदिकी व्यवस्था नहीं हो सकती। धर्मपत्नीके साथ कलह करनेसे दान पूजन दोनोंकी ही व्यवस्था नष्ट होती है। इसलिए धर्मपत्नीके साथ कभी भी कलह नहीं करना चाहिये। इसी कारण सदाचारिणी स्त्रियोंकी निन्दा करना व उनमें किसी प्रकारका कलंक लगाना महापापका कारण है। जो पुरुष सदाचारिणी स्त्रीमें कलंक लगाता है उसको उसके फलसे कलंकित स्त्री मिलनी ही चाहिये। अथवा जो पुरुष कलह करनेवाली स्त्रीको देखकर संतुष्ट होता है अथवा जिसकी भावना सदाकाल कलह करनेवाली स्त्रियोंसे ही प्रसन्न रहती है ऐसे पुरुषोंको उस भावनाके फलसे परलोकमें कलह करनेवाली स्त्री ही प्राप्त होती है। कलह करना व किसी प्रकारकी कलहसे प्रसन्न होना अशुभपरिणामोंका कारण है और ऐसे अशुभ परिणामेंके फलसे ऐसे ही स्त्री, पुत्र आदि प्राप्त होते हैं जो सदाकाल कलह करते रहते हैं और इस प्रकार परंपरा तक पापकर्मोंके कारण होते हैं। यही समझकर न तो स्वयं कभी कलह करना चाहिये और न कभी कलहके समीप ठहरना चाहिये। यह आत्माके हितका एक साधन है।

दुष्ट पति प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
दुष्टं पतिं स्त्री लभतेऽन्यलोके।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर मुझे यह बतलाइये कि किस पाप-कर्मके उदयसे इस स्त्रीको परलोक में दुष्ट पति प्राप्त होता है?

उत्तर— पत्या समं या कलहं च कृत्वाऽ—
तुष्यत्कुशीलं पुरुषं हि दृष्ट्वा।
द्वेष्टि प्रियं सच्चरितं विनीतं,
दुष्टं पतिं सा लभतेऽन्यलोके।।७।।

अर्थ—जो स्त्री अपने पतिके साथ कलह करती हुई प्रसन्न होती है अथवा असदाचारी मनुष्योंको देखकर प्रसन्न होती है अथवा सदाचारी और विनय करनेवाले पतिसे द्वेष करती है ऐसी स्त्रीको परभवमें दुष्ट पति ही प्राप्त होता है।

भावार्थ—स्त्रियोंके लिए पति पूज्य माना जाता है। सब प्रकारसे पतिकी सेवा करना स्त्रियोंका धर्म माना जाता है। सब प्रकारसे पतिकी सेवा भक्ति करनेवाली स्त्रियाँ ही पतिव्रता कहलाती हैं। ऐसी पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पतिके साथ कभी कलह नहीं करती हैं। जो स्त्रियाँ अपने पतिके साथ कलह करती हैं वे पतिव्रता कभी नहीं कहला सकतीं, और इसीलिए ऐसी स्त्रियोंको परभवमें कलह करनेवाला ही दुष्टपति प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो स्त्री कुशील पुरुषको देखकर प्रसन्न होती है वह भी पतिव्रता कभी नहीं हो सकती। कुशील पुरुषोंको देखकर कुशील स्त्रियाँ ही प्रसन्न होती हैं। पतिव्रता स्त्री कभी प्रसन्न नहीं हो सकती। इसलिए कुशील पुरुषको देखकर प्रसन्न होना अपने शीलमें दोष लगाना है। तथा ऐसी सदोष स्त्रियोंको परभवमें दुष्टपति ही प्राप्त होता है।

इसी प्रकार अपने सदाचारी और विनय करनेवाले पति से द्वेष करना भी पतिव्रता स्त्रियोंका काम नहीं है। अपने पतिसे तो कभी द्वेष करना ही नहीं चाहिए। जो स्त्रियाँ अपने पतिसे द्वेष करती हैं वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ नहीं कहलातीं, और इसीलिए प्ररभवमें भी ऐसी स्त्रियोंको दुष्टपति ही प्राप्त होता है। इसलिए पतिकी सेवा-भक्ति करना ही स्त्रियोंका धर्म है, पतिकी सेवा-भक्ति करनेसे पतिके द्वारा होनेवाले धर्मकार्य उन स्त्रियोंकी सहायतासे सरल रीतिसे संपन्न हो जाते हैं और फिर उन धर्मकार्योंका फल उन स्त्रियोंको भी अवश्य प्राप्त होता है।

मल, मूत्रादिकमें कैसे जीवोंका जन्म होता है यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— कस्माच्च कार्याद् वद देव ! निन्द्ये ।
मले जनानां भवतीह जन्म ।।

अर्थ—हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किन-किन कार्योंके करनेसे इन जीवोंका मल, मूत्रादिक निंद्य पदार्थोंमें जन्म होता है ?

उत्तर— दुर्गन्धयुक्तं मलिनान्नपानं,
मांसादिकं भक्षितमेव येन ।
पीतं तथा मद्यरसं नितान्तं,
स्यात्तस्य जन्मापि मले पशूनाम् ।।८।।

अर्थ—जो पशुरूप मनुष्य दुर्गंध और अत्यंत मलिन ऐसे अन्न पानको भक्षण करते रहते हैं, अथवा मलिन दुर्गंधरूप मांसादिकका भक्षण करते रहते हैं अथवा सदाकाल मद्यपान करते रहते हैं ऐसे पुरुष मरकर पशुओंके मलमूत्रमें कीड़े होते हैं ॥

भावार्थ—मद्य, मांस वा दुर्गंधमय अन्न-पान आदि समस्त पदार्थ अत्यंत घृणित और अनंत जीवमय हैं। इन पदार्थोंका स्पर्श करनेमात्रसे अनंत जीवोंका घात होता है। फिर भला खाने-पीनेकी तो बात ही क्या है ? जो पुरुष मद्य, मांसका सेवन करते हैं वे अनंतानंत जीवोंका घात करनेके कारण नरकादिक दुर्गतियोंके दुःख भोगते हैं, फिर वहाँसे निकलकर मलमूत्रके कीड़े होते हैं। और फिर नरकादिकके दुःख भोगते हैं। इस प्रकार उनके दुःखोंकी परंपरा सदाकाल चलती रहती है। इससे यह सिद्ध होता है कि मद्य-मांसादिके सेवन करनेमें महापाप होता है। शहद भी मद्य-मांसके समान है इसलिये इसका सेवन कभी नहीं करना चाहिये।

यह जीव घर कुटुंबका त्याग क्यों नहीं करता यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
त्यक्तुं न शक्नोति नरो गृहादिम्।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस कर्मके उदयसे यह जीव घर कुटुंबका त्याग नहीं कर सकता?

उत्तर— पुरा भवे यो विषये निमग्नो,
बभूव भक्त्या हि कुलिंगिभक्तः।
पूर्वोक्तसंस्कारवशान्न शक्तो,
भवेत्स मोक्तुं गृहबन्धुभार्याम्।।१।।

अर्थ—जो पुरुष पहले अनेक भवोंमें इंद्रियोंके विषयोंमें निमग्न हो रहा था, अथवा भक्तिपूर्वक जो कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओंका भक्त बन रहा था वह पुरुष अपने पहले भवोंके संस्कारके निमित्तसे अपने घर, भाई, बंधु, मित्र, स्त्री आदिका त्याग कभी नहीं कर सकता।

भावार्थ—यह मोह इस संसारी जीवके साथ अनादिकालसे लग रहा है। मोहके ही कारण यह जीव परपदार्थोंको अपना मान लेता है। देखो संतानरहित कोई धनी पुरुष किसी अन्य किसी निर्धन पुरुषके पुत्रको गोद लेकर अपना पुत्र बना लेता है। गोद लेनेके पहले उस पुत्रके साथ उस धनीका कोई किसी प्रकारका मोह नहीं था। उसके दुःख सुखमें उसकी सहानुभूति नहीं थी। परंतु जिस दिनसे वह धनी उस पुत्रको अपना मान लेता है उसी दिनसे वह उस पुत्रके लिए अपना सब कुछ समर्पण कर देता है। उसी दिनसे सेठ-सेठानी दोनों ही उसकी सेवा करते हैं, उसके थोड़ेसे दुःखमें अत्यंतदुःखी होते हैं और

उसके थोड़ेसे रोगमें हजारों रुपये खर्चकर देते हैं। यह सब उस अन्यके पुत्रको अपना मान लेनेका व उसके साथ मोह करनेका फल है। इस मोहके कारण यह जीव अनेक प्रकारके पाप करता है परंतु उसके त्याग करनेका साहस नहीं करता। किसी धनी पुरुषने जिस पुत्रको गोद लिया है यदि वही पुत्र वर्ष दो वर्ष रहकर वापिस जाना चाहता है तो केवल वर्ष दो वर्षके मोहसे ही उसको वापिस जाने नहीं देता। तथा उसके जानेपर रोता है दु:खी होता है। जब वर्ष दो वर्ष के मोहसे इस जीवकी यह अवस्था होती है तो फिर अनादिकालसे लगे हुए इन इन्द्रियोंके विषयोंके मोहकी तो बात ही क्या है उनको तो वह कभी छोड़ ही नहीं सकता। इसी प्रकार इस मोहके ही कारण यह जीव कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुका भक्त बन जाता है। और इस प्रकार मिथ्यात्वको वृद्धिकर अपने आत्मा का स्वरूप भूल जाता है। जब यह जीव काललब्धि और अपने शुभ परिणामोंके द्वारा उस मिथ्यात्वकीका उपशम कर सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तब यह जीव उस सम्यग्दर्शनरूपी प्रकाश के द्वारा अपने आत्माके स्वरूपको पहचानने लगता है तथा जब यह जीव अपने आत्माके स्वरूपको पहचानने लगता है तब उस अपने आत्माके स्वरूपको ग्रहण करने योग्य अपना समझने लगता है और पुत्र, पौत्र, मित्र, स्त्री आदि सबको पर और हेय समझने लगता है। इस प्रकार अपने आत्माके स्वरूपको पहचान लेने पर यह जीव मोहका त्याग कर घर कुटुंबादिकका त्याग कर देता है और फिर अपने आत्मकल्याणमें लग जाता है। इसलिये भव्य जीवोंको सबसे पहले मोहका त्याग कर देना चाहिये। आत्माके कल्याणका सर्वोत्तम उपाय यही है।

अंधे होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयात्म्वे वद देव! कस्मात् ?
जीवः किलान्धो भवतीह विश्वे।

अर्थ—हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव इस संसारमें किस कर्मके उदयसे व कौनसे कार्य करनेसे अंधा होता है ?

उत्तर— बलात्परेषां नयनानि छित्वा ,

यः सुन्दराङ्गीं हृतवान् धनादिम् ।

अन्धापमानं कृतवान् कुगर्वाद् ,

मृत्वा स चान्धो हि भवेदमुत्रे ।।१०।।

अर्थ—जो पुरुष बलपूर्वक दूसरेके नेत्रोंको फोड़ देता है अथवा जो दूसरेकी सुंदर स्त्रियोंका हरण कर लेता है व धनादिकका हरण कर लेता है अथवा जो अपने मिथ्या-अभिमानसे अंधोंका अपमान करता है वह पुरुष मरकर परलोकमें अंधा होता है।

भावार्थ—इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है कि यह जीव पापकर्मके उदय से ही अंधा होता है तथा वह पाप कर्म किसी दूसरेके नेत्र फोड़ देनेसे भी होता है, सुंदर स्त्रियोंको हरण करनेसे भी होता है, धनका हरण कर लेनेसे भी होता है और अंधोंका अपमान करनेसे भी होता है। इस शरीरमें मुख व मस्तक उत्तम अंग कहलाता है, उस मुखमें भी दोनों नेत्र ही सर्वोत्तम कहलाते हैं। बिना नेत्रोंके न तो यह जीव मुनिव्रत धारण कर सकता है न श्रावक व्रतको अच्छी तरह पालन कर सकता है, न जीवोंकी रक्षा कर सकता है न भगवान् जिनेन्द्रदेवके दर्शन कर सकता है न गुरुके दर्शन कर सकता है और न शास्त्र, स्वाध्याय, अभिषेक, पूजन आदि उत्तम कार्योंको कर सकता है ऐसे उत्तम कार्योंका करनेवाले इन नेत्रोंको फोड़ देना महापाप है। ऐसे ही पाप कार्यके उदयसे यह जीव अंधा होता है। इसी प्रकार किसीकी सुंदर स्त्रीको हरण कर लेना, किसीके धनको हरण कर लेना व दुःखी अंधोंका अपमान करना भी महापाप है, और इन्हीं पापकर्मोंके उदयसे यह जीव अंधा होता है। इसलिए ऐसे पापकर्म इस जीवको कभी नहीं करने चाहिए।

लूले, लंगड़े व अपंग होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मा-
न्नाश्छिन्नदेही भवतीह लोके ।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्मके उदयसे यह जीव लोकमें लूला, लंगड़ा, अपंग होता है?

उत्तर— हस्तौ परेषां चरणौ च छित्त्वाऽ–
तुष्यन्नृणां स्वार्थवशात्पशूनाम् ।
दृष्ट्वा ह्यनन्दत्खलु छिन्नदेहं,
स स्यादमुत्रेऽखिलछिन्नदेही ।।११।।

अर्थ—जो पुरुष अपने किसी स्वार्थसे मनुष्य व पशुओंके हाथ पैरोंको काट डालता है, अथवा लूले, लंगड़े, अपंग जीवोंको देखकर प्रसन्न होता है वह जीव मरकर परलोकमें छिन्न-भिन्न शरीरको धारण करने वाला व लूला, लंगड़ा, अपंग होता है।

भावार्थ—लूला, लंगड़ा होना व अपंग होना व शरीरका छिन्न भिन्न होना महापापकर्मके उदयसे होता है। तथा वह पापकर्म जीवोंको अत्यंत दुःख देनेसे बंधको प्राप्त होता है। तीर्थयात्रा, जिनपूजन, अभिषेक, स्वाध्याय, पात्रदान, तपश्चरण आदि जितने आत्मकल्याणके कार्य हैं वे सब कार्य शरीरके हाथ, पैर आदि शरीरके अंग-उपांगोंसे ही होते हैं। इसलिए अंग-उपांगोंका काट डालना उन आत्मकल्याण करनेवाले तपश्चरण आदि कार्योंमें घोर विघ्न डालना है। अथवा जिस जीवके अंग-उपांग काटे जाते हैं उसको महादुःख होता है। तथा वह दुःख महापाप कर्मोंका कारण बन जाता है। और उन पापकर्मोंके उदयसे ही वह जीव लूला, लंगड़ा व अपंग उत्पन्न होता है। इसके सिवाय अपंग जीवोंको देख देखकर प्रसन्न होना भी पापका कारण है।

उनको देखकर तो करुणा उत्पन्न होनी चाहिये, परंतु जिन जीवोंको करुणाके स्थानमें हर्ष होता है उनको महापाप लगना ही चाहिये और उन पाप-कर्मोंके उदयसे उनके अंग-उपांग-छिन्न-भिन्न होने ही चाहिए तथा होते ही हैं। इसलिए आत्मकल्याण चाहनेवाले जीवोंको कभी भी अन्य जीवोंके अंग-उपांग छिन्न-भिन्न नहीं करने चाहिए। सब जीवोंको अपने आत्माके समान समझकर सब को सुख पहुँचानेका प्रयत्न करना चाहिए। आत्मकल्याणका यह सबसे सरलमार्ग है।

पशुहिंसक व्याध होनेके कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
व्याधो भवेत्को खलु मन्दभागी।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव पशुओंको मारनेवाला व्याध किस पापकर्मके उदयसे होता है।

उत्तर— मांसादिभक्षी ह्यसुहिंसको यो,
धर्मस्य द्वेषी कलहप्रियश्च।
व्याधश्च पापान्मनुजः स मृत्वा,
भवत्यवश्यं हतधर्मकर्मा।।१२।।

अर्थ—जो मनुष्य मांस भक्षण करता है, मद्यपान करता है अनेक जीवोंके प्राणोंका घात करता है, धर्मसे द्वेष करता है और सर्वत्र लड़ाई झगड़ा व कलह करता रहता है, ऐसा मनुष्य उस पाप कर्मके निमित्तसे मरकर अवश्य ही धर्मकर्मसे सर्वथा रहित व्याध होता है।

भावार्थ—व्याधके शरीरमें जन्म लेना महापापका कारण है। अनेक जीवोंको मारना, अनेक पक्षियोंको मारना व जीवित पकड़कर उनको अनेक प्रकारके दुःख देना व्याध लोगोंका प्रतिदिनका काम है। इन महापापरूप कामोंको करनेसे ही व्याध लोग प्रायः मरकर नरक ही

जाते हैं। इसीलिए व्याध लोग महापापी गिने जाते हैं। इस महापापके कारण ही कोई भी सज्जाति वाला मनुष्य उनका स्पर्श नहीं करता है। इस श्रेष्ठ मनुष्यजन्म को पाकर भी जो लोग मांस भक्षण करते हैं, मद्यपान करते हैं, कंदमूल, बड़, पीपर, ऊमर, कठूमर, पाकर आदि अनेक जीवोंसे भरे हुए फलोंको खाते हैं, आचार, द्विदल आदि अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करते हैं, आसव, अरिष्ट, सिरका व मद्य, मांसादिकसे बनी हुई औषधियोंका सेवन करते हैं अथवा थोड़ेसे जिह्वाके स्वादके लिए जो अनेक जीवोंको मारते हैं, अपने विनोदके लिए अनेक जीवोंको मारते हैं, व बिना कारण ही साँप, बिच्छू आदि जीवोंको मार देते हैं। जो लोग धर्मसे द्वेष रखते हैं, धार्मिक कार्योंको न तो स्वयं करते हैं और न किसी दूसरोंको करने देते हैं, जो धर्मकार्योंमें सदा विघ्न करते हैं, अथवा जो मनुष्य कलह करानेमें चतुर होते हैं व कलहको देखकर प्रसन्न होते हैं, जो लोग पशुओंको व मनुष्योंको परस्पर लड़ाया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर अवश्य ही व्याध होते हैं। उस व्याधयोनिमें आकर वे किसी प्रकारका धर्मकर्म नहीं कर सकते, तथा निरंतर हिंसाके ही कार्य करते हैं। जिनके कारण वे मरकर नरक ही जाते हैं। इसलिए मनुष्यजन्म पाकरके कभी भी पापकार्य नहीं करना चाहिए। आत्माको सुख पहुँचाने का यह सबसे सुगममार्ग हैं।

कुपुत्री प्राप्त करनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
पिता कुपुत्रीं लभतेऽन्यलोके।।

अर्थ—हे भगवान्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस कर्मके उदयसे परलोकमें जाकर पिताको कुपुत्री प्राप्त होती है?

उत्तर— कस्यापि बन्धोरपमानहेतोः,
प्रदर्श्य चान्यां खलु तत्कुपुत्रीम्।

योऽप्रीणयन्निन्द्यसुतामभागी,
सचान्य लोके लभते कुपुत्रीम् ।।१३।।

अर्थ—जो मनुष्य अपने किसी भाईका अपमान करनेके लिए किसी अन्य सुंदर कन्याको दिखाकर उसके साथ अपनी निंदनीय कुपुत्रीका पाणिग्रहण कर देता है उस अभागे पुरुषको परलोकमें जाकर कुपुत्री प्राप्त होती है ।

भावार्थ—यहाँपर निंद्य कुपुत्री अर्थरूप रहित व अंग, उपांग रहित लूली, लंगडी, अंधी, बहिरी व अन्य अनेक दोषोंसे दूषित कन्या है । यदि कोई पुरुष ऐसी रूपरहित व अंधी, लूली, लंगड़ी कन्याके साथ अपनी प्रसन्नता पूर्वक विवाह करता है उसकी तो कोई बात ही नहीं है, परंतु जो पुरुष ऐसी कन्याके साथ विवाह नहीं करना चाहता और ऐसी कन्याका पिता उसी पुरुषको किसी अन्य दूसरेकी पुत्री को दिखाकर उसे विवाहके लिए प्रसन्न कर लेता है, और विवाह करते समय अपनी सदोष वा लूली, लंगडी वा अंधी बहिरी कन्याके साथ उसका विवाह कर देता है, पुरुष भी महापापी गिना जाता है । इसका कारण यह है कि वह ऐसी कन्याका पिता प्रथम तो उसको ठगता है तथा ऐसी कन्याके साथ विवाह करनेसे उसका अपमान होता है । इस प्रकार मायाचारी करके अपनी कुरूप व सदोष कन्याको देकर उस कन्याका पिता उस जामाताको ठगने वाला और अपमान करनेवाला कहलाता है । तथा इसी पापके कारण परलोकमें फिर भी उसके ऐसी ही कुरूपाएँ व सदोष कन्याएँ उत्पन्न होती हैं । इसलिए सद्गृहस्थोंको ऐसी मायाचारी कभी नहीं करनी चाहिए ।

ठग उत्पन्न होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— **पापोदयान्मे वद देव ! कस्मा-**
न्मृत्वा मनुष्यः खलु वञ्चकः स्यात् ।।

अर्थ—हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मरकर किस पापकर्मके उदयसे ठग होता है ?

उत्तर— चित्तेऽन्यचिन्ता वचनेऽन्यवार्ता,
कायेऽन्यकृत्यं भवदं च यस्य ।
स एव मृत्वा भुवि वञ्चकः स्यात्,
पूर्वोक्तसंस्कारवशादभागी ॥१४॥

अर्थ—जो पुरुष अपने मनमें कुछ और ही चिंतवन करता है, वचनसे कुछ और ही बात कहता है और शरीरसे कुछ और ही काम करता है इस प्रकार जन्ममरणरूप संसारको बढ़ानेवाली ठगाई करता रहता है वह पुरुष मरकर अपने पहले संस्कारोंके निमित्तसे भाग्यहीन ठग होता है ।

भावार्थ—दूसरोंको ठगना भी महापाप है तथा इस महापापको प्रत्येक मनुष्य नहीं कर सकता । अनेक मनुष्य सरल स्वभावके होते हैं, उनसे विश्वासघात व ठगई का काम नहीं हो सकता । जो जीव जन्मजन्मातरसे मन, वचन व कायमें कुटिलता रखते चले आते हैं सोचते कुछ हैं, कहते और कुछ हैं और करते और कुछ हैं तथा जिन्हें ऐसा करनेका अभ्यास अनेक जन्मोंसे होता चला आरहा है ऐसे नीच ही मरकर भाग्यहीन ठग होते हैं । यहाँपर इतना और समझ लेना चाहिये कि मनुष्य पर्यायमें तो ऐसे ठग होते ही हैं, परंतु पशुओंमें भी कौआ, बिल्ली, शृगाल इत्यादि कितने ही पशु ऐसे मायाचारी होते हैं । इसलिए आत्म कल्याण करनेवाले पुरुषोंको ऐसी मायाचारी कभी नहीं करनी चाहिये ।

बहिरा होने का कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।
भवत्यवश्यं बधिरो हि जीवः ॥

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे व किस पापसे अवश्य ही बहिरा होता है?

उत्तर– **आकर्ण्य नृणां कुकथां पुरा योऽ-**
तुष्यद्धि कृत्वा बधिरापमानम्।
श्रुत्वापि वाचोऽश्रुत एव तिष्ठेद्,
मृत्वा स मूढो बधिरो भवेत्कौ।।१५।।

अर्थ—जो मनुष्य पहले जन्ममें मनुष्यों की कुकथाएँ सुनकर प्रसन्न होता है अथवा बहरे लोगोंका अपमान कर प्रसन्न होता है अथवा वचनोंको सुनकर भी न सुननेके समान बैठा रहता है वह मूर्ख मनुष्य मरकर इस पृथ्वीपर बहरा ही होता है।

भावार्थ—कर्णेन्द्रिय प्राप्त करनेका फल धर्मकथाओंका सुनना है। धर्मकथाओंके सुननेसे व आत्मा आदि तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपको सुननेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है तथा यही मनुष्य जन्म प्राप्त करनेका फल है। विकथाओंके सुननेसे पाप कर्मोंका बंध होता है, क्योंकि भोजनकी कथा कहना, चोरोंकी कथा कहना, किसी राष्ट्र व युद्धकी कथा कहना आदि सब विकथाएँ या कुकथाएँ कहलाती हैं। इनके सुननेसे पापरूप परिणाम होते हैं और उन परिणामोंसे पापकर्मोंका बंध होता है उनके उदय होनेपर यह जीव प्रायः बहिरा हो जाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य अपने पाप कर्मोंके उदयसे बहिरा हुआ है उसका अपमान करना भी पाप है उस पापके उदयसे भी यह जीव बहिरा होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य धार्मिक कथाओंको सुनकर भी बिना सुने हुएके समान आचरण करता है, धर्मशास्त्रों को सुनकर भी उनकी आज्ञानुसार आचारण नहीं करता वह मनुष्य भी मरकर बहिरा होता है। इसलिए धर्मात्मा पुरुषोंको कुकथाओंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये, किसीका अपमान नहीं करना चाहिये और धर्मशास्त्रोंको सुनकर उनकी आज्ञानुसार आचरण करते रहना चाहिये। यही आत्मकल्याणका सरल मार्ग है।

गूँगा होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव ! कस्मात् ।
जीवोऽन्यलोके भवतीह मूकः ।।

अर्थ—हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्मके उदयसे यह जीव मरकर परलोकमें गूँगा होता है ?

उत्तर— वस्तु ह्यभक्ष्यं रसनाप्रलोभा-
द्योऽभक्षयन्मांसकलेवरादिम् ।
निर्ग्रन्थसाधोरकरोत्प्रणिन्दां,
मृत्वा स मूको भवति ह्यमुत्र ।।१६।।

अर्थ—जो मनुष्य अपनी जिह्वाकी लोलुपताके कारण जीवोंके मांस व कलेवर आदि अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करता है अथवा जो मनुष्य निर्ग्रंथ मुनियोंकी निंदा करता है वह मनुष्य मरकर परलोकमें अवश्य गूँगा होता है ।

भावार्थ—बोलना, बातचीत करना, स्वाध्याय करना, धर्मोपदेश देना, पढना-पढाना आदि सब जिह्वा इन्द्रियका काम है । यद्यपि भोजनका स्वाद भी जिह्वा इन्द्रियसे लिया जाता है, परंतु स्वाद लेना मोक्षमार्गमें सहायक न होनेसे वह जिह्वा इन्द्रियका फल नहीं समझा जाता । इसलिये जो लोग जिह्वा इन्द्रियकी लोलुपताके कारण मांसादिक अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करते हैं उन्हें जिह्वा इन्द्रियका फल कभी नहीं मिल सकता तथा गूँगा होनेसे ही उस जिह्वा इन्द्रियके फलका अभाव हो सकता है । इसलिए ऐसे मनुष्य परलोकमें गूँगे ही होते हैं । इसी प्रकार साधुओंकी स्तुति करना, उनकी पूजा बोलना आदि जिह्वा इन्द्रियका फल है, परंतु जो मनुष्य निर्ग्रंथ मुनियोंकी निंदा करते हैं उनको उस जिह्वा इन्द्रियका फल कभी नहीं मिल सकता । इसलिए मुनियोंकी निंदा करनेवाले मनुष्य मरकर गूँगे ही होते हैं ।

अतएव धर्मात्मा श्रावकोंको मुनियोंकी निंदा कभी नहीं करनी चाहिए और न कभी अभक्ष्य पदार्थोका भक्षण करना चाहिए।

धूर्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मा-
न्मृत्वा स जीवो भवतीह धूर्तः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्मके उदयसे यह जीव मरकर धूर्त होता है?

उत्तर– मिथ्याप्रलोभी व्यसने निमग्नो,
नास्तिक्यवादी परलोकलोपी।
इत्यादि पापस्य वशात्प्रमूढो,
मृत्वा स जीवो भवतीह धूर्तः ।।१७।।

अर्थ—जो पुरुष, मिथ्यालोभ करता है, व्यसनोंमे सदा लीन रहता है, नास्तिकवादको मानता है और परलोकको मानता नहीं ऐसा मूर्ख मनुष्य ऊपर लिखे पाप कार्योंके वश होकर इस संसारमें अत्यंत धूर्त होता है।

भावार्थ—मायाचार करनेवाले या ठगई करनेवाले को धूर्त कहते हैं। धूर्त होना एक महापापका फल है, क्योंकि धूर्त मनुष्य दूसरोंको ठग-ठगकर महापाप उत्पन्न किया करता है।

जो लोग झूठा लोभ किया करते हैं अर्थात् जहाँ लोभ नहीं करना चाहिये वहाँ लोभ करते हैं और जहाँ लोभ करना चाहिये, वहाँ नहीं करते। धनी मनुष्योंको धर्मकार्योंमें ही अपना रुपया लगाना चाहिये, व्यसनोंमें व चरित्रको नष्ट करनेवाले सिनेमा, थिएटर आदि पापकार्योंमें अपना रुपया कभी खर्च नहीं करना चाहिये, परंतु जो लोग धर्मकार्योंमें तो खर्च करते नहीं और व्यसनोंमें व खेल-तमाशोंमें हजारों रुपये खर्च कर देते हैं ऐसे लोग धर्मकार्योंमें लोभ करनेके कारण मिथ्यालोभी

कहलाते हैं। ऐसे मिथ्यालोभी मरकर धूर्त ही होते हैं। इसी प्रकार जो लोग जुआ खेलना, चोरी करना, शिकार खेलना, परस्त्रीहरण करना, वेश्यासेवन करना, मद्य-मांसका सेवन करना आदि व्यसनोंमें लगे रहते हैं वे भी मरकर धूर्त ही होते हैं। इसीप्रकार जो लोग नास्तिकवादी हैं वा परलोकको नहीं मानते हैं वे भी अपने आत्माको ठगते हैं, क्योंकि नास्तिकवादी होनसे व परलोक न माननेसे पुण्य-पाप भी नहीं माना जा सकता, तथा जो लोग पुण्य-पाप नहीं मानते हैं वे पापकार्योंमें ही अपनी निरर्गल प्रवृत्ति करते हैं। इसलिये ऐसे पापी लोग मरकर धूर्त ही होते हैं।

रोगी होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मा-
ज्जीवः स रोगी भवतीह मृत्वा ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे मरकर रोगी होता है?

उत्तर— दत्तं न दानं भुवि चौषधस्य,
कृतापि सेवा न च रोगिणोऽस्य।
कृता च गर्वात्खलु रोगिनिन्दा,
मृत्वा स रोगी भवति ह्यभाग्यः ।।१८।।

अर्थ—जो पुरुष न तो कभी किसी रोगीको औषधिका दान देता है, न कभी किसी रोगी की सेवा करता है तथा जो अपने अभिमानसे रोगीकी निंदा करता है ऐसा अभागा पुरुष मरकर रोगी ही होता है।

भावार्थ—इस शरीरमें अनेक रोग भरे हुए हैं और वे सब पापकर्मके उदयसे प्रगट होते हैं। दान देना पुण्य कार्य है तथा जो पुरुष समर्थ होकर भी दान नहीं देता वह भी पाप ही करता है। जिसप्रकार भोजनदान देनेसे यह मनुष्य सुखी होता है उसी प्रकार औषधदान देनेसे

भी जीव सदाकाल नीरोग रहता है और रोगी पुरुषकी सेवा करना भी नीरोगताका कारण है, क्योंकि जो पुरुष रोगी होता है वह बहुत ही दुःखी होता है उस दुःखी पुरुषके दुःखको दूर करना व उस दुःखको दूर करनेके लिए औषधि देना व उसको सुखी करनेके लिए उसकी सेवा करना नीरोगताका कारण है। जो पुरुष समर्थ होकर भी इन दोनों कार्योंको नहीं करता, वह कभी नीरोग नहीं रह सकता। परलोकमें जाकर तो वह रोगी होता ही है। इसीप्रकार जो पुरुष किस रोगीकी निंदा करता है वह भी पाप ही करता है, इसलिए वह भी परलोकमें रोगी ही होता है। अतएव समर्थ धनिकोंको और समर्थ वैद्योंको रोगी पुरुषोंके लिये औषधियोंका दान अवश्य करते रहना चाहिये, तथा अपनेसे जितना बन सके उतनी सेवा उन रोगियोंकी करनी चाहिये और रोगी पुरुषोंको सदाकाल आश्वासन देते रहना चाहिये। रोगियोंकी निंदा कभी नहीं करनी चाहिये।

किन-किन कारणोंसे दुःख देनेवाला कुटुंब प्राप्त होता है यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात्।
दुःखप्रदं वा लभते कुटुम्बम्॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्मके उदयसे इस जीवको दुःख देनेवाला कुटुंब प्राप्त होता है।

उत्तर— कस्यापि जन्तो कलहं मिथो यः,
उत्पाद्य कृत्वेति ततः कुवार्ताम्।
कृत्वापवादं विषमं ह्यतुष्यत्,
स च व्यथादं लभते कुटुम्बम्॥१९॥

अर्थ—जो मनुष्य किसी भी मनुष्यके साथ परस्पर कलह कराकर प्रसन्न होता है अथवा न कहने योग्य दुष्ट वचनोंको कहकर

प्रसन्न होता है व किसीको भारी कलंक लगाकर प्रसन्न होता है ऐसे पुरुषको परलोकमें जाकर दुःख देनेवाला कुटुंब प्राप्त होता है।

भावार्थ—कुटुंबके लोग सुख देनेके लिये होते हैं। माता-पिता सुख देते ही हैं, भाई सुख देते ही हैं तथा स्त्री-पुत्र भी सुख पहुँचाते ही है, परंतु जो कुटुंबी लोग प्रत्येक समयमें दुःख देते रहें, बुरे शब्द कहते रहें ऐसे कुटुंबी लोग पाप कर्मके उदय से ही प्राप्त होते हैं। ऐसे कुटुंबियोंको एक प्रकारसे शत्रु ही समझना चाहिये। जो पुरुष अनेक मनुष्योंसे परस्पर कलह कराते रहते हैं, एक दूसरेको लड़ाते रहते हैं व एकके द्वारा दूसरेको दुःख पहुँचाते रहते हैं, सदाकाल अशिष्ट वचन कहते रहते हैं व दूसरोंसे कहलवाते रहते हैं अथवा जो दूसरोंकी झूठी निंदा करते रहते है व कराते रहते हैं, जो दूसरोंको मिथ्या कलंक लगाते रहते हैं व अन्य ऐसे ही ऐसे काम करते रहते हैं ऐसे मनुष्य मरकर दुःख देनेवाले कुटुंबियोंमें जाकर उत्पन्न होते हैं तथा वहाँपर अपने उस पापकर्मके उदयसे उन कुटुंबियोंके द्वारा दिये हुए महादुःख भोगते रहते हैं। यही समझकर कभी किसीकी निंदा नहीं करनी चाहिए, कभी किसीके लिए अशिष्ट वचन नहीं कहने चाहिए और कभी किसीको कलंक नहीं लगाना चाहिए।

दुष्ट स्वभाव होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
दुष्टस्वभावो भवतीह जीवः ।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे दुष्ट स्वभाववाला होता है?

उत्तर— यश्चागतः श्वभ्रगतेः कुबुद्धि—
र्बध्वा नरायुः प्रथमं हि पश्चात्।

भवेत्कुमार्गी खलसङ्गकारी,
मृत्वा स जीवः खलु दुष्टभावः ।।२०।।

अर्थ—जो पुरुष नरकगतिसे आया हो, व कुबुद्धिको धारण करनेवाला हो, अथवा जिसने पहले मनुष्य आयुका बंध कर लिया हो और फिर वह कुमार्गगामी होगया हो अथवा जो पुरुष दुष्टोंकी संगतिमें रहता हो ऐसा पुरुष मरकर दुष्ट स्वभावको धारण करनेवाला होता होता है।

भावार्थ—जो जीव अत्यंत पाप करता है वह नरकमें जाता है तथा उन पापोंके फलकी परंपरा नरकमें ही समाप्त नहीं होती, किंतु नरकसे निकलकर प्राप्त होनेवाली पर्यायमें भी आती ही है। यही कारण है कि जो जीव अत्यंत घोरपापोंके कारण सातवें नरकमें जाता है वह जीव सातवें नरकसे निकलकर सिंह, सर्प आदि घातक योनिमें ही उत्पन्न होता है और वहाँ पर भी अनेक महापाप उत्पन्न कर फिर नरक ही जाता है। इसी प्रकार जो जीव नरकसे आता है। उसके परिणाम दुष्ट ही होते हैं। यहाँपर इतना और विशेष समझ लेना चाहिए कि जो जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं वे ही जीव नरकसे निकलकर दुष्ट स्वभाववाले होते हैं, क्योंकि ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंके परिणाम नरकमें भी दुष्ट ही रहते हैं। परंतु जिन्हें नरकमें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है अथवा जिन्होंने नरक जानेसे पहले भवमें नरकायुका बंध कर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, ऐसे सम्यग्दृष्टियोंके परिणाम नरकमें भी दुष्ट नहीं होते, फिर भला वहाँसे निकले तो वे दुष्ट परिणामी कैसे हो सकते हैं ? अर्थात् कभी नहीं हो सकते। इसलिए जो मिथ्यादृष्टि जीव नरकसे निकलकर उत्पन्न होते हैं वे दुष्ट स्वभाववाले ही होते हैं। अथवा पुण्यकर्मके क्षय होनेसे जिनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तथा बुद्धिभ्रष्ट होनेसे जो धर्मकार्योंको लोपकर पापरूप कार्य करने लग जाते हैं ऐसे लोग भी मरकर परलोकमें दुष्ट स्वभाववाले ही होते हैं। अथवा

जिन जीवोंने पहले तो मनुष्य आयुका बंध कर लिया है और उसके अनंतर कुमार्गमें व अनेक प्रकारके पाप करनेमें प्रवृत्त हो गये हैं ऐसे जीव भी मरकर दुष्ट स्वभाववाले मनुष्य ही होते हैं। इसका भी कारण यह है कि आयुबंध कभी छूटता नहीं है। यदि मनुष्य-आयुका बंध हो जाता है फिर वह छूटता नहीं तो वह मरकर मनुष्य ही होता है। परंतु मनुष्य-आयुका बंध कर लेनेके अनंतर जो कुमार्गगामी हो जाता है वह मनुष्य तो होता है किंतु दुष्ट-स्वभाववाला ही होता है तथा उस दुष्ट-स्वभावके कारण अनेक प्रकारके पाप किया करता है। इसी प्रकार जो पुरुष दुष्ट पुरुषोंकी संगतिमें रहता है वह भी इन दुष्टोंकी संगतिसे अनेक प्रकारके पाप किया करता है। और मरकर दुष्ट स्वभाववाला होता है। यही समझकर श्रावकोंको कुमार्गसे, दुष्टोंकी संगतिसे और सब प्रकारके पापोंसे सदाकाल बचते रहना चाहिए।

भयभीत होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मा-
ज्जीवो भवेत्को भयवान् सदा हि ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे भयभीत होता है?

उत्तर— राज्ञस्तथा भूतपिशाचकानां,
हृत्वा धनादिं च भयं प्रदर्श्य।
निष्कास्य गेहान्मनुजं च हत्वा,
मृत्वा स जीवो हि भयान्वितः स्यात् ।।२१।।

अर्थ—जो मनुष्य किसी भी प्रकारका भय दिखलाकर किसी राजा व भूत पिशाचोंका धन हरण कर लेता है वा किसी मनुष्यको घरसे निकाल देता है अथवा घरसे निकालकर मार देता है ऐसा जीव मरकर सदाकाल भयभीत रहता है!

भावार्थ—जो पुरुष किसी प्रकारका भी पाप करता है वह पुरुष सदाकाल उस पापके भयसे भयभीत होता रहता है। फिर भला जो राजाको भी भय दिखलाकर उसका धन हरण कर लेता है उसे तो सदाकाल भयभीत बना रहना ही चाहिये। इसी प्रकार भूत पिशाचोंका धन हरण कर लेना भी भयका ही कारण है। यद्यपि भूत पिशाचोंका निजका कोई धन नहीं होता है न उन्हें कभी भी धनकी आवश्यकता पड़ती है वे तो व्यंतरदेव हैं, जो भूखकी इच्छा होने पर अपने ही कंठ से झरे अमृतको पीकर तृप्त हो जाते हैं। परन्तु जो कोई कृपण मनुष्य अपने धनको धर्मकार्योंमें व खाने पीनेमें खर्च नहीं करता है वह मनुष्य किसी भी पुण्यकार्यके निमित्तसे व पुण्यकर्मके निमित्तसे व्यंतरदेव होता है। तथा वह देव अपने पूर्वभवमें संचित किये गये धनकी रक्षा करता रहता है। वह धन उस व्यंतरदेवका कहलाता है। जो कोई मनुष्य उस धनको भी हरण कर लेता है वह मनुष्य भी इस लोकमें सदाकाल भयभीत रहता है और मरकर परलोकमें भयभीत ही बना रहता है। इसी प्रकार जो मनुष्य किसी भी अन्य मनुष्यको घरसे निकालकर मार देता है वह भी मरकर सदाकाल भयभीत ही रहता है। इस संसारमें अनेक ऐसे पक्षी हैं वा अनेक ऐसे पशु हैं जो सदाकाल भयभीत ही बने रहते हैं। हिरण, कबूतर आदि पशु पक्षी सदाकाल भयभीत ही बने रहते हैं। यही समझकर किसीको भय नहीं दिखलाना चाहिये व किसीका धनादिक हरण नहीं करना चाहिये।

अशक्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मा-
ज्जीवो भवेद्बाल्यभवे ह्यशक्तः॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे बालकपनसे ही अशक्त होता है?

उत्तर– निर्दोषजन्तोर्वसनान्नपानं, ,
रुंध्वा तथा हिंसनमेव कृत्वा।
बध्वा ह्यतुष्यद् भुवि हीनजन्तून्,
मृत्वा स दुष्टश्च भवेदशक्तः ।।२२।।

अर्थ—जो पुरुष निर्दोष जीवोंके वस्त्रोंको व उनके अन्न-पानको हरण कर लेता है, अथवा जो निर्दोष जीवोंको मारकर संतुष्ट होता है अथवा जो छोटे-छोटे जीवोंको बाँधकर, पकड़कर व मारकर संतुष्ट होता है वह जीव मरकर परलोकमें भी दुष्ट और अशक्त होता है।

भावार्थ—अशक्त और निर्दोष जीवोंका अन्नपान रोक देना महापाप है। यद्यपि असमर्थ जीव कुछ कर नहीं सकते तथापि वे असमर्थ होनेके कारण नितान्त दुःखी होते हैं। इसलिये असमर्थ जीवोंको सताना या दुःख देना महापाप कहलाता है। इसी प्रकार ऐसे असमर्थ जीवोंको मारना वा पकड़कर पिंजरोंमें रख लेना व रस्सी सांकलसे बांधकर रखना भी महापाप है। स्वतंत्र उड़नेवाले जीवोंको जो बाहर आनंद आता है वह आनंद पिंजरोंमें बंद होकर आरामसे रहनेपर भी कभी नहीं आ सकता। सोनेके पिंजरेमें बंद हुए पक्षी कारागारमें पड़े हुए मनुष्यके समान महादुखी होते हैं। इसीलिये असमर्थ जीवोंको पकड़ना, बांधना व मारना महापाप कहलाता है। तथा उस पापकर्मके उदयसे ऐसे जीव मरकर असमर्थ ही होते हैं। तथा पहले भवमें जिन जीवोंको पकड़ा था जिनको बाँधा था व जिनको मारा था वे ही जीव उस असमर्थ जीवको पकड़ते हैं, बाँधते हैं व मारते हैं। यही समझकर कभी भी असमर्थ जीवको नहीं सताना चाहिये और न रस्सीसे ही बाँधना चाहिये और न उन्हें पिंजड़े में बन्द करना चाहिये।

कृपण होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– पापोदयान्मे वद देव! कस्मा–
न्मृत्वेति जीवः कृपणो भवेत्को ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्मके उदय से यह जीव मरकर कृपण होता है?

उत्तर– विघ्नानि दाने करणान्निरोधाद्,
धर्मे धनादिव्ययकर्तुरेव ।
धनार्जने ह्येव विशेषलोभा–
न्मृत्वा स मर्त्यः कृपणो भवेत्कौ ।।२३।।

अर्थ—जो कोई पुरुष दान देनेमें अनेक विघ्न करता है, व धर्ममें धन खर्च करनेवालेको रोकता है, अथवा धनके उपार्जन करनेमें विशेष लोभ करता है वह मनुष्य मरकर इस पृथ्वीपर कृपण ही होता है।

भावार्थ—अपने आत्माका उपकार वा कल्याण करनेके लिये तथा अन्य तपस्वी आदिका कल्याण करनेके लिये जो दान दिया जाता है उसको दान कहते हैं। ऐसा दान पात्रदान ही होता है। निर्ग्रंथगुरु उत्तमपात्र कहलाते हैं। उनको आहारादिकका दान देना उत्तमदान कहलाता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक मध्यमपात्र कहलाते हैं तथा अविरत-सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र कहलाते हैं इनको दान देना भी मध्यम दान है। इसके सिवाय दु:खी जीवोंको भोजनादिकका देना करुणा दान है श्रावक लोग जो परस्पर लेते देते हैं। उसको समान दान कहते हैं। ये सब दान श्रेष्ठदान कहलाते हैं इनके सिवाय जिनालय, जिनप्रतिमा, तीर्थक्षेत्र, धार्मिक शिक्षा आदिके लिए देना भी श्रेष्ठदान है। जिन कार्योंसे सम्यग्दर्शनका घात होता हो ऐसे हाई स्कूल, कॉलेज आदिमें देना कुदान कहलाता है। इसका भी कारण यह है कि वर्तमानमें इन कॉलेज व हाईस्कूलोंमें जो शिक्षा दी जाती है वह शिक्षा धार्मिक श्रद्धाका नाश करती है, धार्मिक संस्कारोंको नष्ट करती है और भारतवर्षकी सभ्यताका नाश करती है। अतएव ऐसा दान देना श्रेष्ठदान नहीं कहला सकता। जो पुरुष श्रेष्ठादानमें व पात्रदान में विघ्न

करता है वह भी मरकर परलोकमें कृपण होता है अथवा जो कोई धनी पुरुष जिनालय वा जिनप्रतिमा बनवानेके लिए धन खर्च करना चाहता हो और उसको जो कोई पुरुष रोक देता है वह भी मरकर कृपण ही होता है अथवा जो पुरुष धन उपार्जन करनेमें अत्यंत लोभ करता है वह भी मरकर कृपण ही होता है। यही समझकर श्रेष्ठदानमें कभी विघ्न नहीं करना चाहिए, धर्मकार्य को कभी रोकना नहीं चाहिए और मात्रासे अधिक लोभ कभी नहीं करना चाहिए। इसके सिवाय सदा श्रेष्ठदान देते रहना चाहिए, धर्मकार्योंको करते-कराते रहना चाहिए और अहिंसाके साधनोंसे धनका उपार्जन करना चाहिए।

मूर्ख होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
जीवोन्यलोके भवतीह मूर्खः।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे परलोकमें जाकर मूर्ख होता है।

उत्तर— शास्त्रस्य निंदा विदुषां कृता वा,
चित्तं सुविद्यापठने न दत्तम्।
येनापमानः सुगुरोः कृतः कौ,
मृत्वा स मूर्खो भवति ह्यभाग्यः।।२४।।

अर्थ—जो पुरुष भगवान् जिनेन्द्रदेवके कहे हुए शास्त्रोंकी निंदा करता रहता है अथवा जैनशास्त्रोंके जानकार विद्वानोंकी निंदा किया करता है अथवा जो पुरुष जैनशास्त्रोंके पठन-पाठनमें अपना चित्त नहीं लगाता अथवा जो मूर्ख श्रेष्ठ निर्ग्रंथ गुरुओंका अपमान करता रहता है वह पुरुष मरकर भाग्यहीन मूर्ख होता है।

भावार्थ—इस संसारमें मोक्षकी प्राप्ति आत्मज्ञानसे होती है तथा आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान भगवान् जिनेन्द्रदेवके कहे हुए शास्त्रोंसे

होता है। अथवा उन शास्त्रोंके अनुसार आत्माके यथार्थ स्वरूपको बतलानेवाले विद्वानोंके धर्मोपदेशसे भी आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान होता है। अथवा चित्त लगाकर अध्यात्म शास्त्रोंके पठन-पाठन करनेसे भी आत्माके स्वरूपका ज्ञान होता है। अथवा वीतराग निर्ग्रंथगुरु अपनी शांतमुद्रासे ही मोक्षमार्गका यथार्थस्वरूप बतलाते रहते हैं। इसप्रकार ऊपर लिखे अनुसार जिनशास्त्र, विद्वान्, अध्यात्मशास्त्रोंका पठन-पाठन और वीतराग निर्ग्रंथगुरु ये सब मोक्षके कारण हैं। जो पुरुष इनकी निंदा करता है व इनका अपमान करता है अथवा शास्त्रोंके पठन-पाठनमें आलस्य करता है अथवा इनकी विनय नहीं करता वह पुरुष मरकर अवश्य ही भाग्यहीन मूर्ख होता है। यही समझकर शास्त्रोंकी निंदा, विद्वानोंकी निंदा और गुरुओंकी निंदा कभी भी नहीं करनी चाहिये।

पराधीन होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— **कस्मिन् कुकार्ये च कृते सदायं।**
जीवो भवेदेव पराश्रयः को।।

अर्थ—हे भगवन् अब कृपाकर यह बतलाइये कौन-कौनसे कुकर्म करनेसे जीव सदाकाल पराधीन रहता है।

उत्तर— **धृत्वातिदीनानपराधमुक्तान्,**
स्वस्थान बलाद्बन्दिगृहे निपात्य।
रुध्वान्नपानं च ततो ह्यतुष्यत्,
पराश्रयः स्यान्मनुजः स मृत्वा।।२५।।

अर्थ—जो मनुष्य स्वस्थ होकर भी अत्यंत दीन हैं और अपराध रहित हैं ऐसे लोगोंको बलपूर्वक पकड़कर जो बंदीगृहमें डाल देते हैं और फिर उन बंदीगृहमें डाले हुये मनुष्योंको अन्न बंद कर संतुष्ट होते हैं ऐसे मनुष्य मरकर परलोकमें पराधीन होते हैं।

भावार्थ—निरपराध जीवोंको पकड़कर बंदीगृहमें डालना उनकी स्वतंत्रताका हरण कर महादुख देना है। बहुतसे लोग अच्छे-अच्छे पक्षियोंको पकड़कर पिंजड़ोंमें बंद कर देते हैं। अनेक पशुओंको पकड़कर बड़े-बड़े जालियोंके बने हुये पिंजड़ोंमें बंद कर देते हैं। अपने आमोद-प्रमोदके लिये अनेक पशुपक्षियोंको पकड़कर बंदीगृहमें डाल देते हैं तथा कभी-कभी समयपर उनका अन्न-पान भी रुक जाता है, अथवा बहुत कम मिलता है जिससे वे पशु पक्षी बहुत दुखी होते हैं। इसी प्रकार कभी-कभी राज कर्मचारी निरपराध मनुष्योंको बंदीगृहमें डाल देते हैं तथा उनको नियमानुसार भोजन भी नहीं देते। अथवा उस भोजनमें निकृष्ट पदार्थ मिलाकर उसको अखाद्य और अरुचिकर बना देते हैं। और वह भोजन उन बंदियोंको देते हैं। इस प्रकार वे लोग थोड़ीसी सत्ता मिल जानेपर महापाप उत्पन्न करते हैं और उस पापके फलसे परलोकमें जाकर सदाकाल पराधीन रहते हैं। और जिस प्रकार उन्होंने सबको दुखी किया था उसी प्रकार महादुख पाते हैं।

भोगोपभोगकी सामग्री प्राप्त होनेपर भी भोगोपभोग क्यों नहीं कर सकते यही बतलाते हैं—

प्रश्न— लब्धे सुयोग्ये सकले पदार्थे।
न भुज्यते किं वद मे कृपाब्धे।।

अर्थ—हे भगवन्! कृपानिधान! अब कृपाकर यह बतलाइये कि समस्त सुयोग्य पदार्थोंके प्राप्त होने पर भी यह जीव उसका भोगोपभोग क्यों नहीं कर सकता?

उत्तर— कृतः कुविघ्नः शयनासनादौ,
यैर्द्वेषबुद्ध्या वरभोजनादौ।
क्षुधातुराणां हि कृतोऽपमानो,
लब्धे पदार्थेऽपि न भुज्यते तैः।।२६।।

अर्थ—जो पुरुष अपनी द्वेषबुद्धिसे किसीके शयन, आसन, आदि उपभोगोंके पदार्थोंमें विघ्न करते हैं अथवा किसीके भोजन आदि भोगोंके पदार्थोंमें विघ्न करते हैं अथवा जो पुरुष अत्यंत भूखे मनुष्योंको देखकर उनका अपमान करते हैं वे मनुष्य भोगोपभोगकी सामग्री प्राप्त होनेपर भी उसका उपभोग नहीं कर सकते।

भावार्थ—किसीके भोगोपभोगोंमें विघ्न करनेसे अंतराय कर्मका आस्रव होता हैं तथा वह अंतरायकर्म उदयमें आता है तब वह कर्मका उदय उसके भोगोपभोगमें विघ्न कर देता है। इसी प्रकार भूखे, प्यासे, वस्त्रहीन, नंगे आदि निर्धनोंका व दुःखी जीवोंका अपमान करनेसे भी निर्धन वा दुःखी होना पड़ता है। ऐसे जीव मरकर धनियोंके कुलमें तो उत्पन्न होते हैं तथा उनके हाथी, घोड़े, रथ, पियादे, उत्तम-उत्तम भोजन, पान, शयन, आसन आदिकी समस्त सामग्रियाँ भी विद्यमान रहती हैं, सुंदर स्त्रियाँ भी रहती हैं, परंतु वे लोग अपने कर्मके उदयसे उन पदार्थोंमेंसे किसी भी पदार्थका उपभोग नहीं कर सकते। वे या तो सदाकाल रोगी रहते हैं अथवा उनके लिए कोई ऐसा बलवान् प्रतिबंधक मिल जाता है जिससे वे किसीका भोग व उपभोग नहीं कर सकते। यही समझ कर किसीके किसी भी काममें कभी विघ्न नहीं करना चाहिये। हाँ! यदि कोई किसी जीवकी हिंसा करता हो व अन्य कोई चोरी, व्यभिचार आदि पापकार्य करता हो तो उसमें विघ्न करना व उसको रोक देना अंतरायका कारण नहीं हो सकता, क्योंकि पाप कार्योंमें विघ्न करनेमें मलिन परिणाम व अशुभ परिणाम नहीं होते। शुभ परिणामोंसे तो पापकार्योंकी रुकावट होती है।

कुरूप होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्माद्।
मृत्वा कुरूपो भवतीह जीवः॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे कुरूप होता है?

उत्तर— **कुरूपजीवस्य कृतापमाना—**
दारोपणाद् दिव्यतनौ मलादेः ।
तद्रूपहान्यै च कृतप्रयासात् ,
मृत्वा कुरूपः स भवेदभाग्यः ।।२७।।

अर्थ—जो पुरुष किसी कुरूपी जीवका अपमान करता है अथवा किसीके सुंदर शरीरमें किसी पदार्थ को लगाकर उसे बिगाड़ना चाहता है अथवा किसीके सुंदर शरीरकी सुंदरता बिगाड़नेके लिए किसी भी प्रकारका कुत्सित प्रयत्न करता है, वह पुरुष मरकर भाग्यहीन कुरूपी होता है।

भावार्थ—इस संसारमें ऐसे भी जीव हैं जो दूसरोंकी सुंदरताको नष्ट करनेके लिए भारी प्रयत्न करते हैं। यदि किसी सुंदर पुरुषका अंग व उपांग बिगड़ जाता है तो बड़े प्रसन्न होते हैं और वह जब कुरूप हो जाता है तब उसका अपमान करते हैं। किसी दूसरेके सुंदर पुत्रके शरीरमें कालोंछ लगाकर व विढंगे वस्त्र पहनाकर उसका रूप ढकना चाहते हैं व बिगाड़ना चाहते हैं अथवा अपनी हानि उठाकर भी दूसरेके सुंदर शरीरके अंग व उपांग बिगाड़ कर उसे कुरूप बनाना चाहते हैं, ऐसे लोग मरकर अपने दुष्ट स्वभावके कारण कुबड़े, काने, लूले, लंगड़े, कंजे, काले व कुरूपी ही होते हैं। अतएव श्रावकोंको अपने लंगड़े, कंजे, काले व कुरूपी ही होते हैं। अतएव श्रावकोंको ऐसे रखने चाहिये।

जो पुरुष श्रेष्ठ पदार्थोंके होते हुए भी उनका उपभोग नहीं कर सकता उसका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— **सद्वस्तुभार्यादिकविद्यमाने ।**
किं भुज्यते नैव गुरो! वदाद्य ।।

अर्थ—हे गुरो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि सुंदर भार्या

आदि श्रेष्ठपदार्थोंके विद्यमान होते हुए भी यह जीव उनका उपभोग क्यों नहीं कर सकता?

उत्तर— दृष्ट्वा परेषां प्रियवस्तु भार्यां,
चित्तेऽपि तोषो हृदि यस्य नास्ति।
तत्सेवनेच्छा खलु वेति तेन,
न भुज्यते सत्यपि सत्पदार्थे।।२८।।

अर्थ—जो पुरुष दूसरोंकी सुंदर स्त्रियोंको देखकर अथवा किसीके श्रेष्ठ पदार्थ देखकर अपने हृदयमें संतोष धारण नहीं करते अथवा उनके सेवन करनेकी इच्छा करते हैं वे पुरुष परलोकमें जाकर अपने घर उत्तमसे उत्तम पदार्थ रहनेपर भी अथवा सुंदरसे सुंदर स्त्री रहनेपर भी किसीका उपभोग नहीं कर सकते।

भावार्थ—संसारमें जो-जो पदार्थ प्राप्त होते हैं वे सब अपने अपने कर्मके उदयसे प्राप्त होते हैं। पुण्यकर्मके उदयसे श्रेष्ठ पदार्थ प्राप्त होते हैं और पापकर्मके उदयसे अनिष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। ऐसी अवस्थामें किसीके श्रेष्ठ पदार्थोंको देखकर संतुष्ट न होना व असंतोष धारण करना हृदयकी अज्ञानता है। इसी अज्ञानतासे महापाप उत्पन्न होते हैं तथा इसी अज्ञानताके कारण कितने ही लोग दूसरेके श्रेष्ठ पदार्थोंको व दूसरोंकी सुंदर स्त्रियोंको सेवन करनेकी इच्छा करते हैं अतः अपने पापकर्मके उदयसे वे ऐसे पदार्थोंका उपभोग तो क्या कर सकते हैं, किन्तु उन पापकर्म से ये ऐसे पापकर्मोंका इसी कारणसे वे न तो अपनी ही सुंदर स्त्रियोंका उपभोग कर सकते और न अपने घरमें रहनेवाले अन्य पदार्थोंका ही उपभोग कर सकते हैं। अतएव दूसरेके पदार्थोंको देखकर कभी असंतोष धारण नहीं करना चाहिये।

क्रोधी होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्यो वद देव! कस्मा—
दत्यन्तक्रोधी भवतीह जीवः।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे अत्यंत क्रोधी होता है?

उत्तर— क्रोधी स्वयं कुप्यति वा प्रतुष्यत्—
क्रुद्ध्यन्मेवापि मिथो विलोक्य।
पूर्वोक्तसंस्कारवशात् स कोपि,
भवत्यवश्यं भवदुःखभोगी॥२१॥

अर्थ—जो पुरुष अत्यंत क्रोधी होते हैं। अथवा जो दो-चार मनुष्योंको परस्पर क्रोध करते हुये देखकर व लड़ते हुये देखकर संतुष्ट होते हैं ऐसे पुरुष अपने पहलेके संस्कारके निमित्तसे अत्यंत क्रोधी होते हैं और फिर संस्कारके वश महादुःख भोगा करते हैं।

भावार्थ—क्रोधका होना समस्त पापोंका कारण है। क्रोधी मनुष्य अन्य अनेक जीवोंकी हिंसा करता है, यहाँतक कि कभी-कभी वह क्रोधके आवेशमें आकर अपनी आत्म हत्या भी कर लेता है। इस संसारमें आत्महत्या महापाप मानी जाती है और इसीलिये यह नरकका कारण कही जाती है। इससे सिद्ध होता है कि क्रोध करना महापाप का कारण है। जो लोग पहले भवमें अत्यंत क्रोध करते हैं व दूसरोंको लड़ते-झगड़ते देखकर और दूसरोंको क्रोध करते देखकर प्रसन्न होते हैं अथवा जो तीतर बटेरोंको व अन्य पशुओंको लड़ाकर प्रसन्न होते हैं ऐसे मनुष्य उस पापके कारण अत्यंत क्रोधी मनुष्य होते हैं। अतएव भव्य जीवोंको क्रोध कभी नहीं करना चाहिए, क्रोधसे सदा बचते रहना चाहिये।

निंदनीय होनेकार कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– पापोदयान्मे वद देव ! कस्मात्।
निन्द्यो भवेच्चान्यभवे हि जीवः।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव परलोकमें जाकर किस पापकर्मके उदयसे अत्यंत निंदनीय होता है?

उत्तर– तपःप्रदोषं च हठात्प्रसार्य,
यः कीर्तये वापि धनं ससर्ज।
पाषण्डिसाधोरकरोत्प्रशंसां,
निंद्यो भवेच्चान्यभवे स मृत्वा।।३०।।

अर्थ—जो पुरुष हठपूर्वक तपश्चरणमें दोष लगाता है व केवल अपनी कीर्तिके लिए अपना धन खर्च करता है। अथवा जो पाखंडी साधुओं की प्रशंसा करता है वह पुरुष मरकर अन्य भवमें जाकर अत्यंत निंदनीय होता है।

भावार्थ—यह नियम है कि जो पुरुष दूसरोंको झूठी निंदा करता है वह स्वयं निंदनीय होता है फिर भला जो पुरुष मोक्षके साक्षात् कारण ऐसे यथार्थ तपश्चरणमें दोष लगाता है व उस तपश्चरणको धारण करनेवाले तपस्वियोंमें दोष लगाता है वह अवश्य ही अत्यंत निंदनीय होता है। श्रेष्ठ तपश्चरण व श्रेष्ठ तपस्वियोंमें दोष लगाना मोक्षसे घृणा करना है। इसलिए ये दोनों ही कार्य अत्यंत तीव्र-मिथ्यात्वकर्मके उदयसे ही होते हैं तथा इनसे भी फिर और अधिक तीव्र मिथ्यात्वकर्मका बंध होता है। उस तीव्र मिथ्यात्वकर्मके उदयसे वह जीव मरकर अत्यंत निंदनीय योनिमें उत्पन्न होता है अथवा स्वयं अत्यंत निंदनीय होता है। अथवा जो पुरुष अपने धनको धर्मकार्योंमें खर्च न कर केवल अपनी कीर्तिके लिए खर्च करता है, अथवा मिथ्यातपश्चरण करनेवाले पांखडी साधुओंकी जो प्रशंसा करता है वह

भी मरकर निंदनीय होता है। इसका भी कारण यह है कि धनकी प्राप्ति धर्मसे होती है। धर्ममें प्राप्त हुए धनको धर्ममें ही खर्च करना चाहिए। जो पुरुष अपने धनको धर्ममें खर्च करते हैं उनको विशेष पुण्यकर्मकी प्राप्ति भी होती है और कीर्ति भी होती है। परंतु जो पुरुष केवल कीर्तिके लिए अपना धन खर्च करते हैं उस धनको धर्मकार्यमें नहीं लगाते ऐसे पुरुषोंका धन भी नष्ट हो जाता है, कीर्तिके बदले उनकी अपकीर्ति होती है और मरकर अत्यंत निंदनीय होते हैं। इसी प्रकार पाखंडी साधु मिथ्यादृष्टि होते हैं, मिथ्यात्वके उदयसे ही वे मोक्षमार्गके विपरीत तपश्चरण करते हैं। उन मिथ्यादृष्टि तपस्वियोंकी प्रशंसा मिथ्यादृष्टि ही करते हैं और उसी मिथ्यात्वके कारण वे निंदनीय होते हैं। यही समझकर श्रेष्ठ तपश्चरणमें कभी दोष नहीं लगाना चाहिए, मिथ्यादृष्टि तपस्वियोंकी प्रशंसा कभी नहीं करनी चाहिए। और अपना धन केवल धर्मकार्योंमें ही लगाना चाहिये।

आदर सत्कार प्राप्त न होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— सुयाचमाने लभते न मानं।
किं कारणं तत्र वद प्रभो! मे॥

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि बहुतसे लोग अपने आदर सत्कार की याचना भी करते रहते हैं तथापि उनको आदर सत्कार प्राप्त नहीं होता इसका क्या कारण है?

उत्तर— विद्याभिमानान्न नुतिः स्तुतिर्यैः,
कृता न साधोर्विनयोपचारः।
धर्माद्विरुद्धापि कृता प्रवृत्तिः,
सुयाचमाने लभते न मानम्॥३१॥

अर्थ—जो पुरुष अपनी विद्याके अभिमानसे न निर्ग्रंथ वीतराग साधुओंको नमस्कार करते हैं, न उनकी स्तुति करते हैं, न उनका

विनय करते हैं और न उनकी सेवा करते हैं, तथा जो पुरुष सदाकाल धर्मके विरुद्ध प्रवृत्ति करते रहते हैं ऐसे पुरुष याचना करनेपर भी आदर सत्कारको प्राप्त नहीं होते।

भावार्थ—मोक्षमार्गमें विद्याका कुछ मूल्य नहीं है। मोक्ष मार्गमें तो सम्यक्चारित्रका मूल्य है। पहले स्वर्गका इन्द्र अंग पूर्वका पाठी होता है तथापि वह हालके दीक्षित हुये मुनिको नमस्कार करता है। इससे सिद्ध होता है इस संसारमें सम्यक्चारित्र ही पूज्य है। ऐसे सम्यक्चारित्रको धारण करनेवाले साधुओंको जो पुरुष अपनी विद्याके अभिमानसे व धनादिकके अभिमानसे नमस्कार नहीं करता है व उनकी स्तुति नहीं करता है अथवा उनका विनय नहीं करता है व उनकी सेवा नहीं करता ऐसा पुरुष मरकर दूसरे जन्ममें जाकर इतना निम्न श्रेणी का होता है कि आदर सत्कारकी अत्यंत लालसा होनेसे व आदर सत्कारकी याचना करनेपर भी कोई उसका आदर सत्कार नहीं करता। इसीप्रकार जो पुरुष धर्मके विरुद्ध प्रवृत्ति करता है, देव-शास्त्र-गुरुका विनय नही करता व व्यर्थका अभिमान करता रहता है वह पुरुष भी मरकर नीच मनुष्य होता है, और फिर कोई भी जीव उसका आदर सत्कार नहीं करता। इसलिये भव्यपुरुषोंको कभी अभिमान नहीं करना चाहिये तथा देव, शास्त्र, गुरुकी कभी अविनय नहीं करना चाहिये।

शस्त्रादिकसे मरनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
शस्त्रास्त्रयोगाद् म्रियते हि जीवः॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्मके उदयसे यह जीव शस्त्र-अस्त्रसे मारा जाता है?

उत्तर— वधस्य शंसाप्यनुमोदनादिः,
कृतोपदिष्टश्च वधाद्युपायः।

दुष्टं चरित्रं चरितं च येन,
स चान्यशस्त्रैर्म्रियते मनुष्यः ।।३२।।

अर्थ— जो मनुष्य जीव हिंसाकी प्रशंसा करते हैं, उसकी अनुमोदना करते हैं, अथवा जो हिंसाके अनेक उपाय बतलाते हैं, व अनेक प्रकारके दुष्ट चरित्र करते रहते हैं ऐसे जीव प्रायः दूसरोंके अस्त्र शस्त्रों से मारे जाते हैं।

भावार्थ—जीवोंकी हिंसा करना महापाप है और साक्षात् नरकका कारण है। जिसप्रकार जीवोंकी हिंसा करना महापाप है उसी प्रकार जीवोंकी हिंसाकी प्रशंसा करना व हिंसाकी अनुमोदना करना अथवा उस हिंसाके उपाय बतलाना आदि सब महापाप माने जाते हैं। जो पुरुष इन महापापोंको करता है वह अवश्य ही अस्त्र शस्त्रों से मारा जाता है इसका भी कारण यह है कि अस्त्र शस्त्रसे मारा जाना भी महापापकर्मके उदयसे होता है और उस महापापका बंध हिंसा करनेसे ही होता है। अथवा ऐसा महापाप दुष्टचारित्रको धारण करनेसे भी होता है। सातों व्यसनोंका सेवन करना दुष्टचारित्र हैं, देव-शास्त्र-गुरुमें मिथ्यादोष लगाना, व उनकी आज्ञाके विपरीत चलना महापाप है। शास्त्रोंके विपरीत अर्थ लगाकर विषयोंको पुष्ट करना भी महापाप है। इन सब पापोंके उदयसे यह जीव अस्त्र शस्त्रोंसे मारा जाता है। यही समझकर भव्यजीवोंको हिंसादिक दुष्कर्म कभी नहीं करने चाहिए।

चोर होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मा-
ज्जीवः परत्रापि भवेद्धि चौरः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्मके उदयसे यह जीव परलोकमें भी जाकर चोर होता है?

उत्तर— चौरस्य शंसाप्यनुमोदनादिः,
चौरप्रयोगोऽपि कृतश्च येन।
इच्छा परेषां बहुरत्नराज्ये,
मृत्वा स चौरो भवति ह्यभाग्यः ।।३३।।

अर्थ—जो पुरुष चोरोंकी प्रशंसा करता है व उनकी और उनके द्वारा की हुई चोरीकी अनुमोदना करता है अथवा चोरीका प्रयोग बतलाता है व दूसरोंके अनेक रत्नोंकी या किसी राज्य की इच्छा करता है वह मनुष्य मरकर अवश्य ही भाग्यहीन चोर होता है।

भावार्थ—जो पुरुष अधिक लोभी होता है, सदाकाल दूसरेके धन, धान्य, रत्न, राज्य आदि को हड़पनेकी इच्छा करता रहता है, अथवा उनको चुराकर अपना करना चाहता है, अथवा उनको चुराकर लानेका उपाय बतलाता है व प्रसिद्ध चोरोंकी प्रशंसा करता है, व उनकी अनुमोदना करता है अथवा चोरीके पदार्थोंको अपने घरमें रखता है अथवा और भी चोरीसे प्रेम रखनेवाले कार्योंको करता है। वह मनुष्य मरकर अगले भवमें भी चोर ही होता है। यहाँपर इतना और समझ लेना चाहिये कि चोरी जैसे कार्य अभ्याससाध्य होते हैं। इन कामोंमें पूर्व जन्मका संस्कार भी काम देता है। अभ्यास साध्य जितने कार्य हैं उनमें पूर्व संस्कार अवश्य काम देता है, ऐसे कार्य पूर्वसंस्कारसे बहुत शीघ्र आ जाते हैं। इसलिये भव्य जीवोंको बुरे कामोंका अभ्यास कभी नहीं करना चाहिये और न उसकी कभी अनुमोदना करनी चाहिये।

क्रियाहीन होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
क्रियाविहीनो हि भवेन्मनुष्यः ।।

अर्थ—हे भगवान्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्मके उदयसे यह मनुष्य क्रियाहीन होता है?

उत्तर— **येन क्रियाहीननरप्रशंसा,**
कृता कृताक्रियायुक्तनरप्रणिन्दा।
विचारशून्या विषमा प्रवृत्तिः,
क्रियाविहीनः स भवेदधर्मी।।३४।।

अर्थ—जो मनुष्य इस जन्म में क्रियाहीन मनुष्योंकी प्रशंसा करता रहता है, क्रियाओंको पालन करनेवाले मनुष्योंकी निंदा किया करता है और जो स्वयं विचारहित शास्त्र प्रतिकूल प्रवृत्ति करता रहता है वह अधर्मी मनुष्य परलोकमें जाकर अवश्य ही क्रियाहीन होता है।

भावार्थ—यहाँपर क्रिया शब्दका अर्थ क्रियाकांड है। भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजन करना, साधुओंकी सेवा सुश्रूषा करना, सामायिक, प्रतिक्रमण व स्वाध्याय करना, यथासाध्य व्रत उपवास करना, दोनों समय भगवान् जिनेद्रदेवके दर्शन करना, सूतक, पातक मानना, यज्ञोपवीत धारण करना, तिलक लगाना, तथा अन्य समस्त शास्त्रोक्त क्रियाओंका करना क्रियाकांड कहलाता है। इन क्रियाओंके करनेसे धर्मकी वृद्धि होती है, आत्माकी पवित्रता होती है और सम्यग्दर्शनकी स्थिरता होती है। जो पुरुष इन क्रियाओंको नहीं मानता उसे तीव्र मिथ्यादृष्टि समझना चाहिये। ऐसा मिथ्यादृष्टि पुरुष अपने तीव्र मिथ्यात्वके उदयसे इन क्रियाओंकी निंदा करते हैं, इनको ढोंग बतलाते हैं और इन क्रियाओंके पालन करनेवालोंकी निंदा करते हैं। इसी प्रकार जो पुरुष उनके ही समान नास्तिकवादी मिथ्यादृष्टि हैं जो क्रियाकांडको सर्वथा नहीं मानते उनकी प्रशंसा करते हैं। ऐसे ही मिथ्यादृष्टि पुरुष विधवाविवाह, विजातीयविवाह, स्पृश्यास्पृश्य लोप आदि शास्त्र विरुद्ध क्रियाएँ करते रहते हैं। अथवा दान, पूजन आदि धार्मिक क्रियाओंका निषेध करते रहते हैं। ऐसे पुरुष मरकर अवश्य महा अधर्मी और

क्रियासंस्कारोंसे रहित म्लेच्छ होते हैं। अथवा नरक व तिर्यंच योनि में उत्पन्न होते हैं जहाँ किसी प्रकार के क्रिया संस्कार नहीं करने पड़ते। यही समझकर भव्य जीवोंको इन क्रियाकांडोंका पालन अवश्य करते रहना चाहिये।

पुत्रके वियोगका दुःख किस कारणसे होता है यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— कस्मिन् कुकृत्ये च कृते भवेत्कौ।
मातुः पितुः पुत्रवियोगदुःखम्॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि ऐसे कौनसे कुकर्म हैं जिनके करनेसे माता-पिताको पुत्रके वियोग होनेका दुःख प्राप्त होता है?

उत्तर— मातुः पितुः स्नेहकरीं प्रवृत्ति,
द्रष्ट्वेत्यकुप्यद्धि सधर्मिणां वा।
द्रोहं व्यथादं प्रविलोक्य तुष्ये-
दित्यादि पापाद्धिषमो वियोगः॥३५॥

अर्थ—जो पुरुष माता-पिता की स्नेह करनेवाली प्रवृत्ति को देखकर क्रोधित होता है अथवा धर्मात्मा भाइयोंके परस्पर अनुरागको देखकर क्रोधित होता है और जो अत्यंत दुःख देनेवाले परस्पर के ईर्ष्या-द्वेष को देखकर संतुष्ट होता है ऐसा पुरुष ऊपर लिखे पापों के फलसे पुत्र पौत्रादिके वियोग के दुःखको प्राप्त होता है।

भावार्थ—जीवों को मोहकर्म अनादिकाल से लगा हुआ है। इसी मोहके कारण माता, पिता, भाई, बंधु, पुत्र, पौत्र आदि कुटुंबी लोगों में परस्पर प्रेम हुआ करता है। उस प्रेमके कारण ही किसी का भी वियोग होनेपर यह जीव दुःखी होता है। इन सबमें भी पुत्रका वियोग विशेष रीतिसे दुःख देने वाला होता है। परंतु धर्मात्मा पुरुषों में

जो परस्पर प्रेम होता है वह मोहसे नहीं होता है, धर्मके अनुरागसे होता है। ऐसे धर्मानुराग को देखकर क्रोध करना व उनमें द्वेष फैलानेका प्रयत्न करना महापापका कारण है। ऐसे पापोंसे ही पुत्र पौत्रों का वियोग देखना पडता है। इसी प्रकार जो पुरुष महादुःख देने वाले परस्परके विरोधको देखकर संतुष्ट होता है वह भी परलोक में जाकर ऐसे ही विषम वियोगोंका सहन करता रहता है। अतएव माता-पिताके प्रेममें वा धर्मात्माओंके अनुरागमें कभी विघ्न नहीं डालना चाहिए।

भाई-भाईमें विरोधका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— नान्यत्प्रियं बंधुसमं हि वस्तु।
कथं पुनश्चास्ति मिथो विरोधः।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि इस संसारमें भाईके समान अन्य कोई प्रिय पदार्थ नहीं है, ऐसा होने पर भी फिर भाई-भाइयोंमें परस्पर विरोध क्यों होता है?

उत्तर— मिथः स्वबन्धोः पशुपक्षिकाणां,
यः कारयित्वा कलहं विषादम्।
कृत्वेत्यतुष्यत् स्वजनापमानं,
तस्यान्यजीवस्य भवेद्विरोधः।।३६।।

अर्थ—जो पुरुष भाई-भाइयोंमें व पशु-पक्षियोंमें परस्पर कलह व विषाद उत्पन्न कर प्रसन्न होता है अथवा जो अपने भाई बंधुओंका अपमान करते हैं वे जीव परलोकमें भी जाकर अपने भाई बंधुओंसे विरोध करते रहते हैं।

भावार्थ—वैर विरोधका संस्कार जन्म-जन्मांतर तक जाता है। इसका भी कारण यह है कि क्रोध करनेसे व परस्पर वैर विरोध रखनेसे चारित्रमोहनीयकर्मका बंध होता है तथा चारित्रमोहनीय कर्मकी

उत्कृष्टस्थिति चालीस कोड़ा-कोड़ी सागर है। अर्थात् आबाधाकालको छोड़कर इतने दिन तक वह कर्म अपना फल देता रहता है। इतने दिन तक यह जीव जितने जन्म धारण करता है उन समस्त जन्मोंसे उस एकबार बंध किये कर्मका फल इस जीवको प्राप्त होता रहता है। देखो, कमठने अपने भाईसे विरोध किया था वह विरोध कमठके जीवकी ओरसे ही कितने ही भव तक चलता रहा। तथा अंतमें भगवान पार्श्वनाथके मोक्ष होनेपर छूटा। यही समझकर भव्यजीवोंको परस्पर कभी वैर विरोध नहीं करना चाहिये।

माता और पुत्रका विरोध क्यों होता है सो दिखलाते हैं–

प्रश्न– कर्मोदयात्स्याद् वद देव! कस्मात्,
मातुः सुपुत्रस्य मिथो विरोधः ।।

अर्थ—हे भगवन! अब कृपाकर यह बतलाइये कि श्रेष्ठ पुत्र और माताका परस्पर विरोध क्यों होता है?

उत्तर– मातुः सुपुत्रस्य मिथो विरोधं,
यः कारयित्वा विषमापमानात्।
मातुश्च तुष्येद् विदुषोऽपि सूनो,
र्मात्रा समं तस्य मिथो विरोधः ।।३७।।

अर्थ—जो पुरुष माता और सुपुत्रका विरोध करा देता है, अथवा जो माताके घोर अपमानसे संतुष्ट होता है अथवा विद्वान् पुत्रके घोर अपमानसे संतुष्ट होता है ऐसा पुरुष परलोकमें जाकर माताके साथ विरोध करता रहता है।

भावार्थ—जो पुरुष जैसा कार्य करता है उसको वैसा ही फल मिला करता है। इस संसारमें माता-पिता दोनों ही पूज्य माने जाते हैं। दोनों ही गुरु हैं। पुत्रको सदाकाल उनका आदर सत्कार करते रहना चाहिये, उनकी सेवा सुश्रूषा करनी चाहिये। परंतु जो पुरुष अपने

माता-पितासे लंड़ते झगड़ते रहते हैं, उनको दुःख देते हैं, उनके अपमानसे व उनके दुःखसे प्रसन्न होते हैं अथवा जो अपने विद्वान पुत्रपर भी प्रेम नहीं करते उसके साथ भी वैर विरोध करते हैं ऐसे जीव परलोक में भी जाकर लड़ने झगड़ने वाले होते हैं तथा उनके साथ सब कोई वैर विरोध व लड़ाई झगड़ा करता रहता है। यहाँ तक कि यदि ऐसा जीव मरकर किसी की माता होती है तो वह अपने श्रेष्ठ सुपुत्रसे भी लड़ती रहती है। यही समझकर किसी के साथ वैर विरोध नहीं करना चाहिये।

यदि किसी स्त्रीके गर्भमें भाग्यहीन पुत्र आता है तो वह कैसे जाना जा सकता है यही बतलाते हैं—

प्रश्न— सुभाग्यहीनो ह्युदरेऽसि पुत्रः,
कथं प्रभो! ज्ञायत एव नार्या।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यदि किसी स्त्रीके गर्भमें कोई भाग्यहीन पुत्र आया हो तो वह कैसे मालूम होता सकता है?

उत्तर— मातुश्च यस्या गमनात्सुगर्भे,
ह्यापन्निचः स्यात्कुमतिःपितुश्च।
अभक्ष्य भक्षे च भवेद्धिभावो,
हीत्यादि चिह्नैस्तनयो ह्यभाग्यः।।३८।।

अर्थ—जब कोई पुत्र किसी माताके गर्भमें आवे और उसके आते ही मातापर अनेक आपत्तियाँ आ जाँय अथवा पिताकी बुद्धि विपरीत हो जाय व माता-पिता दोनोंकी बुद्धि अभक्ष्य भक्षणमें लग जाय अथवा उन दोनोंकी बुद्धि ऐसे ही निकृष्ट कार्योंमें लग जाय तो इन चिह्नो से समझ लेना चाहिए कि इसके गर्भमें भाग्यहीन पुत्र है।

भावार्थ—गर्भमें जैसा पुत्र आता है माता-पिताके भाव भी वैसे

ही हो जाते हैं। तथा विशेषकर माताके भाव तो वैसे ही हो जाते हैं। यदि गर्भमें धर्मात्मा पुत्र होता है तो तीर्थयात्रा, जिनपूजन, मुनिदर्शन, पात्रदान आदिके भाव होते हैं। यदि गर्भमें वीरपुत्र हो जाता है तो शत्रुओंको विजय करनेके भाव होते हैं। यदि गर्भमें दरिद्रपुत्र आता है तो उसकी माताके परिणाम दरिद्र रूप हो जाते हैं, अभक्ष्य पदार्थोंको भक्षण करनेके परिणाम हो जाते हैं अथवा फटे-पुराने वस्त्र पहननेके परिणाम हो जाते हैं गर्भके समयमें माताके जैसे परिणाम होते हैं उनसे ही गर्भमें आये हुए, पुत्रका भाग्य जाना जा सकता है।

पिता-पुत्रके विरोधका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
पितुः सुपुत्रस्य मिथश्च वैरम्॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि पिता-पुत्रका विरोध किस पापकर्मके उदयसे होता है?

उत्तर— यः कारयित्वा विषमं विवादं,
पित्रा समं पुत्रकलिं च दृष्ट्वा।
तुष्येन्न कुर्याद्विनयं गुरोश्च,
पापादमुष्माच्च मिथो विरोधी॥३९॥

अर्थ—जो पुरुष एक दूसरे के साथ भारी विवाद कराता रहता है, जो पिताके साथ होनेवाली पुत्रकी कलहको देखकर अत्यंत प्रसन्न होता है व जो गुरुजनोंकी विनय नहीं करता वह पुरुष इन पापकर्मोंके उदयसे परस्पर विरोध करने वाला उत्पन्न होता है।

भावार्थ—जो पुरुष इस भवमें माता-पिताके साथ व विशेषकर गुरुके साथ विरोध करता है, उनका विनय नहीं करता, उनके साथ वाद-विवाद करता है, किसी पिता-पुत्रके लड़ाई झगड़ेको देखकर प्रसन्न होता है अथवा और भी ऐसे ही ऐसे काम करता है वह पुरुष

परलोकमें भी अपने पिता व गुरुजनों के साथ अथवा पुत्र व शिष्यके साथ सदा काल विरोध करता रहता है। अथवा सबसे लड़ता झगड़ता रहता है। यही समझ कर किसीके साथ भी लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहिये।

लंगड़ा होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्,
पादेन खंजो भवतीह जीवः।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे लंगड़ा होता है?

उत्तर— छिन्नौ परेषां चरणौ च हस्तौ,
येनास्त्रशस्त्रैः करणेऽपि नेत्रे।
मानादपाङ्गं च तिरस्करोति,
पादेन खञ्जो भवतीह जीवः ॥४०॥

अर्थ—जो पुरुष अपने अस्त्र शस्त्रोंसे दूसरोंके हाथ पैरोंको काट डालता है, अथवा कान-नाक काट लेता है व नेत्र फोड़ देता है अथवा जो अपने अभिमानसे लूले-लंगड़े आदि अपंग पुरुषोंका तिरस्कार करता है वह पुरुष मरकर लूला-लंगड़ा व अपंग होता है।

भावार्थ—जिस पुरुषके हाथ पैर कट जाते हैं वह पुरुष बहुत दुःखी हो जाता है। वह पुरुष आने जानेसे भी लाचार हो जाता है खाने-पीनेसे भी लाचार हो जाता है, द्रव्य कमानेसे भी लाचार हो जाता है तथा प्रायः सब कामोंसे लाचार हो जाता है। ऐसे पुरुषको प्रत्येक कार्यके करनेमें महादुःख होता है। जो पुरुष ऐसे दुखी पुरुषोंका तिरस्कार करता है अथवा अन्य पुरुषोंके हाथ पैर काटकर इस प्रकार दुःखी बना देता है, वह पुरुष भी मरकर परलोकमें लूला-लंगड़ा होकर दुःखी होता है। यही समझकर कभी किसी जीवको किसी प्रकारका

दुःख नहीं देना चाहिए। सबको अपने समान सुखी बनानेका प्रयत्न करते रहना चाहिए।

नरक जानेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्,
स्याच्छ्वभ्रगम मनुजश्च मृत्वा।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे मरकर नरकगामी बन जाता है अर्थात् किस किस पापके करनेसे नरक जाता है?

उत्तर— अत्यन्तकोपादसुहिंसनाद्वा,
देवस्य धर्मस्य गुरुर्विरोधात्।
बंधोः समं वैरविरोधयोगात्,
स्यात्पापमूर्तिर्नरकस्य गामी।।४१।।

अर्थ—जो पुरुष अत्यंत क्रोध करता है वा प्राणोंका घात करता है अथवा जो पुरुष देव, धर्म, गुरुका विरोध करता रहता है अपने भाइयोंके साथ वैर विरोध करता रहता है वह पापमूर्ति मनुष्य अवश्य ही नरकगामी होता है।

भावार्थ—क्रोध करना महापाप का कारण है, क्रोध करनेसे इस लोकमें अनेक अनर्थ होते हैं। क्रोधके करनेसे से ही यह जीवअनेक प्राणियोंके प्राणोंका घात कर देता है, क्रोधके कारण ही माता,पिता, पुत्र, स्त्री आदिका घात कर देता है और क्रोधके करनेसे ही अपने भाईका व किसी अन्य धर्मात्मा भाई का घात कर देता है, ऐसा घातक मनुष्य मकर अवश्य ही नरक जाता है। इसीप्रकार देव, धर्म व गुरुका विरोध करना सबसे बड़ा पाप है। देव, धर्म, गुरु तीनों ही समस्त जीवोंका कल्याण करने वाले हैं, समस्त जीवोंको मोक्ष का मार्ग बतलाने वाले हैं तथा स्वयं परम वीतराग हैं और वीतरागताका ही

उपदेश देते हैं। ऐसे परम कल्याणमय देव, धर्म, गुरुके साथ विरोध करना, व उनका अपमान करना व उनकी आज्ञाको न मानना महापाप माना जाता है। ऐसे पापोंका फल नरक ही है। इसी प्रकार अपने भाइयोंके साथ विरोध करना वा धर्मात्मा भाइयोंके साथ विरोध करना भी पापका कारण है। धर्मको न माननेवाला पुरुष ही धर्मात्माका विरोध कर सकता है और इसीलिये ऐसा पुरुष अवश्य नरक जाता है यही समझकर देव, धर्म, गुरुका व धर्मात्मा पुरुषोंका विरोध कभी नहीं करना चाहिये, न कभी किसी प्राणी का घात करना चाहिये और न कभी क्रोध करना चाहिये।

छोटा वामन [बौना] शरीर प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव ! कस्मा-
ज्जीवो भवेद् वामनदेहधारी ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे वामनरूप छोटे शरीरको धारण करता है।

उत्तर— गर्वेण यो वामनदेहनिन्दा,
तस्यापमानं ननु तद्विघातम् ।
दुःखं प्रदातुं च करोति काङ्क्षां,
स स्यान्नरो वामनदेहधारी ।।४२।।

अर्थ—जो पुरुष अपने शरीरके अभिमानसे छोटे वामन शरीरको धारण करनेवालोकी निंदा करता है, उनका अपमान करता है, व उनका घात करता है अथवा उनको दुःख देनेकी इच्छा करता है ऐसा पुरुष मरकर ऐसे ही छोटे वामनशरीरको धारण करता है।

भावार्थ—शरीरके छह संस्थान हैं। उनमें वामन भी एक संस्थान है। वह निकृष्ट संस्थान है, क्योंकि वामनशरीरको धारण

करनेवाला मनुष्य कभी भी विशेष व उत्तम कार्य नहीं कर सकता। इसीलिए वह निंद्य शरीर वाला कहलाता है। जो मनुष्य इस पर्यायमें वामन व छोटे शरीर धारण करनेवालोंकी निंदा करते हैं व उनकी हँसी उड़ाते हैं, उनका अपमान करते हैं अथवा उनको मारते हैं, पीटते हैं, उनका घात करते हैं व अन्य अनेक प्रकारके दुःख देनेकी इच्छा करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर वामन ही होते हैं तथा वे भी अनेक अन्य जीवोंके द्वारा मारे जाते हैं, पीटे जाते हैं, अपमानित किये जाते हैं, निंदनीय कहे जाते हैं और अनेक प्रकारसे दुःखी किये जाते हैं। यही समझकर कभी किसीकी निंदा वा अपमान नहीं करना चाहिए और न कभी किसीको दुःख देना चाहिए।

पशुयोनि प्राप्त करनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्,
योन्यां पशोर्जायत एव जीवः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्म के उदयसे पशुयोनिमें उत्पन्न होता है?

उत्तर— स्वाचारहीनस्य करोति शंसां,
वर्ज्याशनं वा गुरुदेवनिन्दाम्।
भाराधिकं जीव जलान्नरोधं,
योन्यां पशोर्जायत एव की सः ।।४३।।

अर्थ—जो पुरुष श्रेष्ठआचरणोंसे रहित मनुष्योंकी प्रशंसा करता है, अभक्ष्य भक्षण करता है, व देव, धर्म, गुरु की निंदा करता है, या पशुओंपर अधिक बोझ लादता है अथवा जीवके अन्न-पानको रोक देता है ऐसा मनुष्य मरकर इसी पृथ्वीपर पशुयोनिमें उत्पन्न होता है।

भावार्थ—जो पुरुष श्रेष्ठ आचरणोंके स्वरूपको नहीं जानता व श्रेष्ठ आचरणोंको धारण नहीं करता ऐसा मिथ्यादृष्टि पुरुष ही

आचरणहीन मनुष्योंकी प्रशंसा किया करता है, ऐसा ही मिथ्यादृष्टि मनुष्य कभी न भक्षण करने योग्य कंद-मूल आदि अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करता है। पशुओं पर उनकी शक्तिसे अधिक बोझा लादता है व उनकी शक्तिसे अधिक उनको चलाता है अथवा समयानुसार उनको भोजन-पान नहीं देता बहुत कम देता है, अथवा गर्मी-सर्दीसे उनकी रक्षा नहीं करता तथा जो देव-धर्म-गुरुकी व शास्त्रों की निंदा किया करता है। अथवा अपने तीव्रमिथ्यात्व कर्मके उदयसे उनकी आज्ञाओंका उल्लंघन किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर पशुओंकी योनिमें ही उत्पन्न होता है।

कुभोगभूमिमें उत्पन्न होनेके कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्,
कुभोगभूम्यां च भवेत्कुजन्म।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये यह जीव किस पापकर्म के उदयसे कुभोगभूमिमें कुजन्म धारण करता है?

उत्तर— मिथ्यात्वभाजे मुनयेऽन्नदानं,
येन प्रदत्तं च जलौषधादि।
सद्दृष्टिसाधोश्च कृतोऽपमान,
उत्पद्यते न स कुभोगभूम्याम्॥४४॥

अर्थ—जो पुरुष मिथ्यादृष्टि साधुओंको अन्न, जल व औषधि आदिका दान देता है और जो सम्यग्दृष्टि श्रेष्ठ साधुओंका अपमान करता है ऐसा पुरुष मरकर कुभोगभूमिमें उत्पन्न होता है।

भावार्थ—बीज बोनेके लिये जैसी भूमि होती है वैसा ही उसका फल प्राप्त होता है। अच्छी भूमिमें बीज बोनेसे अच्छा फल मिलता है, बुरी भूमिमें बीज बोनेसे बुरा फल मिलता है और ऊसरमें बोनेसे कुछ फल नहीं मिलता। इसी प्रकार जो पुरुष सम्यग्दृष्टि वीतराग निर्ग्रंथ

साधुओंको आहारदान देता हैं व शास्त्र, औषधि आदिका दान देते हैं उनको उस दानके फलसे उत्तम भोगभूमि प्राप्त होती है। सम्यग्दृष्टि व्रती श्रावकोंको दान देनेसे मध्यम भोगभूमि प्राप्त होती है। सम्यग्दृष्टि अव्रती श्रावकोंको दान देनेसे जघन्यभोगभूमि प्राप्त होती है। इसका भी कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि वीतराग निर्ग्रंथ साधु उत्तमपात्र कहलाते हैं। सम्यग्दृष्टि व्रती श्रावक मध्यमपात्र कहलाते हैं और सम्यग्दृष्टि अव्रती श्रावक जघन्यपात्र कहलाते हैं। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि व्रती साधु कुपात्र कहलाते हैं। उनको दान देनेसे कुभोगभूमि प्राप्त होती है। मिथ्यादृष्टि अव्रती साधु अपात्र कहलाते हैं उनको दान देनेसे कोई किसी प्रकारका फल नहीं मिलता है। अव्रती मिथ्यादृष्टि को दान देना व्यर्थ है। इसी प्रकार जो पुरुष सम्यग्दृष्टि निर्ग्रंथ वीतराग गुरुओंकी निंदा करता है वह भी मिथ्यादृष्टि ही कहलाता है और ऐसा मिथ्यादृष्टि ही वीतराग निर्ग्रंथ साधुओंकी निंदा कर सकता है, इसीलिये वह कुभोगभूमिमें उत्पन्न होता है। कुभोगभूमिमें मनुष्य ही होते हैं, परंतु वे तिर्यंचोंके समान ही होते हैं। यही समझकर सम्यग्दृष्टि वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंको ही दान देना चाहिये अथवा सम्यग्दृष्टि श्रावकोंको दान देना चाहिए। इनके सिवाय अन्य किसीको देना हो तो करुणापूर्वक भूखे-प्यासेको भोजन दे देना चाहिए जो वह अन्यत्र ले जाकर खा लें। ऐसे दानको करुणादान कहते हैं।

कुग्रामवासी होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
कुग्रामवासी भवतीह जीवः।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे कुग्राममें रहनेवाला होता है?

उत्तर— आरोप्य दोषं हि हठादसत्यं,
निष्कासिता येन जना वनादौ।

कुक्षेत्रजन्तोश्च कृता प्रशंसा,
कुग्रामवासी स भवेत्कुभावात् ।।४५।।

अर्थ—जो पुरुष अन्य लोगोंको झूठा दोष लगाकर हठपूर्वक गाँवसे निकाल कर वनमें भेज देता है अथवा जो नीच क्षेत्रमें रहनेवाले जीवोंकी प्रशंसा करता रहता है ऐसा पुरुष मरकर अपने दुष्ट परिणामोंसे नीच वा छोटे गाँवमें रहनेवाला कुग्रामवासी होता है।

भावार्थ—किसी पुरुषका घर छुड़ाना वं उसे निकाल देना एक प्रकारका पाप है और वह हिंसानामके पापमें अंतर्भूत होता है, क्योंकि जिस पुरुषको निकाल दिया जाता है वह पुरुष घरबारसे रहित होकर महादु:खी होता है। इसीलिए इस पापका करनेवाला पुरुष कुग्राममें उत्पन्न होकर महादु:ख प्राप्त किया करता है। इसी प्रकार जो पुरुष अपने पापरूप व नीच परिणामोंके कारण म्लेच्छ आदि कुक्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंकी प्रशंसा किया करता है वह भी मरकर अपने नीच परिणामोंके फलसे कुग्रामवासी ही होता है। यही समझकर कभी किसीको अपने घरसे नहीं निकालना चाहिए। पशु पक्षियोंके घोंसले व घर भी नहीं बिगाड़ने चाहिये और न उनका स्थान छुड़ाना चाहिए। क्योंकि घर व घोंसला छुड़ानेसे पशु पक्षियोंको भी महादु:ख होता है। कभी-कभी बिना घर घोंसलेके उन पशु पक्षियोंको मर जाना भी पड़ता है। इसलिए किसीको भी किसी प्रकारका दु:ख नहीं देना चाहिए और न किसीका घर-घोंसला बिगाड़ना चाहिए।

व्यवहारशून्य होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— **पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।**
स्यादेव जीवो व्यवहारशून्यः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे व्यवहारशून्य होता है।

उत्तर– दृष्ट्वाप्यकुप्यद् व्यवहारदक्षान् ,
वृथाभिमानं च विधाय तुष्येत् ।
वा धीमतोऽज्ञानत एव निन्दां ,
स्यात्तीव्रपापाद् व्यवहारशून्यः ।।४६।।

अर्थ—जो मनुष्य किसी व्यवहार चतुर मनुष्योंको देखकर व्यर्थ ही क्रोधित होता है अथवा जो व्यर्थका अभिमान कर संतुष्ट होता है। अथवा जो पुरुष अपनी अज्ञानताके कारण बुद्धिमान पुरुषोंकी निंदा किया करता है। ऐसा पुरुष मरकर व्यवहारशून्य होता है।

भावार्थ—शास्त्रज्ञानमें चतुर होना और बात है तथा व्यवहारमें चतुर होना और बात है। ऐसे अनेक विद्वान् हैं जो शास्त्रज्ञानमें बहुत ही चतुर हैं अथवा अनेक शास्त्रोंके जानकार हैं तथापि वे व्यवहारमें चतुर नहीं होते हैं तथा ऐसे भी मनुष्य हैं जिन्हें शास्त्रज्ञान कुछ भी नहीं है अथवा जो पढ़े लिखे भी नहीं हैं परंतु व्यवहार ज्ञानमें अत्यंत चतुर होते हैं। इसका भी कारण यह है कि शास्त्रज्ञानके लिये सरलबुद्धिकी आवश्यकता है। जिनकी बुद्धि सरल होती उनको शास्त्रोंका ज्ञान शीघ्र होता है परंतु वे ही सरल बुद्धिवाले शास्त्रज्ञानी पुरुष व्यवहारज्ञानमें चतुर नहीं होते, क्योंकि व्यवहार ज्ञानके लिये कुछ तीक्ष्ण वा कुटिल बुद्धिकी भी आवश्यकता होती है। यद्यपि कुटिल बुद्धिका होना निंदनीय है तथापि कभी-कभी वह व्यवहारमें लाई जाती है। व्यवहार-ज्ञानके लिये तीक्ष्ण और तत्काल स्फुरायमान होनेवाली बुद्धिकी आवश्यकता है।

जो मनुष्य व्यर्थका अभिमान करते हैं व चतुर पुरुषोंकी निंदा करते हैं अथवा चतुर पुरुषोंको देखकर क्रोधित होते हैं ऐसे पुरुष मरकर व्यवहारशून्य होते हैं।

अधिक अन्न खानेवाला किस कारणसे होता है यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्,
बह्वन्नभुक्तोऽपि भवेन्न तृप्तः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे अधिक अन्न खा लेने पर भी तृप्त नहीं होता?

उत्तर— दत्तान्नदानं पशुपक्षिकेभ्यो,
बलात्स्वयं सेवितवान् नरो यः।
यो भोजनादौ च रतो न दाने,
मूर्खः स मृत्वा विपुलान्नभोजी ।।४७।।

अर्थ—जो पुरुष पशु-पक्षियों के लिये दिये हुए अन्नको बलपूर्वक स्वयं सेवन कर लेता है अथवा जो पुरुष सदा काल खाने पीनेमें ही लगा रहता है, दान देने के लिये जिसका मन कभी नहीं चलता ऐसा मूर्ख पुरुष मरकर अधिक अन्न खानेवाला होता है।

भावार्थ—जो पुरुष अपने दिये हुए दानको अथवा अपने पूर्वजोंके दिये हुए दानको अथवा अन्य किसी दूसरेके द्वारा दिये हुए दानको स्वयं ले लेता है वह पुरुष पापियोंमें भी महापापी होता है। एक तो वे पुरुष हैं जो किसी जिनालय व जिनप्रतिमा बनवानेके लिये अथवा किसी स्वाध्यायशालाके दिये दान देते हैं या भूखे मरते पशु पक्षियों को व भिक्षुकोंके दान देते हैं अथवा अन्य किसी ऐसे ही काम के लिए दान देते हैं ऐसे पुरुष वास्तवमें पुण्यवान हैं और वे परलोकके लिये भी अपना पुण्यकर्म साथ ले जाते हैं। परंतु एक वे मनुष्य हैं जो जिनालय व जिनप्रतिमाके लिये व अन्य किसी धर्मकार्य के लिये दिये हुए धनको भी बलपूर्वक स्वयं खा जाते हैं अथवा लूले, लंगड़े, पशुओंको व कबूतर आदि पक्षियोंको डाले हुए

दाने भी बटोकर स्वयं खा जाते हैं ऐसे मनुष्योंको महापापी समझना चाहिये। धर्मशास्त्रकी ऐसी आज्ञा है कि कमाये हुए धनमें से कुछ न कुछ दानमें अवश्य देना चाहिये और वह जिनपूजन, पात्रदान ऐसे उत्तम कार्योंमें ही देना चाहिये परंतु अच्छी कमाई करते हुए भी जिनालयमें दिये हुए दानको हड़प लेते हैं अथवा अन्य किसी कार्यमें दिये हुए दानको स्वयं काममें ले लेते हैं, यहाँ तक कि लूले, लंगड़े, पशु पक्षियोंके लिए दिये हुए दानको भी स्वयं खा जाते हैं उनका पापका क्या ठिकाना है? परलोकमें जाकर ऐसे पुरुषोंको भस्मकव्याधि होती है जिससे कि चाहे जितना अन्न खा लेनेपर भी वे कभी तृप्त नहीं होते। यही समझ कर बुद्धिमान मनुष्योंको दिये हुए दानमें से कभी एक पैसा नहीं लेना चाहिए। तथा अपने कमाये हुए धनमेंसे सदाकाल कुछ न कुछ दान अवश्य देते रहना चाहिए।

निर्धनता का अन्य कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्,
धनेन हीनो भवतीह जीवः।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस पापकर्मके उदयसे धनहीन दरिद्री होता है?

उत्तर— धनं परेषामपहृत्य तुष्येद्,
दृष्ट्वा हरान्तं गृहरत्नराज्यम्।
कृत्वापमानं धनहीनजन्तोः,
स द्रव्यहीनो भवति ह्यभाग्यः ॥४८॥

अर्थ—जो पुरुष दूसरेके धनको हरणकर संतुष्ट होता है अथवा जो दूसरेके घर, रत्न, राज्य आदिको हरण करने वालेको देखकर प्रसन्न होता है अथवा जो धनहीन मनुष्योंका अपमान कर संतुष्ट होता है वह मनुष्य मरकर भाग्यहीन दरिद्री होता है।

भावार्थ—दूसरेका धन हरण करना व हरण करनेवाले को देखकर प्रसन्न होना चोरी है। जो पुरुष इस प्रकारकी चोरी करता है, दूसरेका धन छीनकर उसको निर्धन बनाता है अथवा किसी दुखी निर्धनका अपमान करता है वह मनुष्य मरकर अवश्य ही धनहीन दरिद्री होता है। इसका भी कारण यह है कि यह धन मनुष्योंका बाह्य प्राण है। धनका स्वामी मनुष्य जब धनकी की रखवाली करने लगता है तब यह यही कहता है कि "प्राण रहनेतक तो मुझसे कोई धन ले नहीं सकता। मुझे मारकर भलेही कोई ले जाय। इससे सिद्ध होता है कि धन प्राणोंसे भी अधिक प्रिय होता है। ऐसे धन को जो कोई हरण कर लेता है वह उसके प्राणोंको ही हरण कर लेता है। इसीलिए दूसरेके धनको हरण कर लेना महापाप कहा जाता है। इसमें हिंसा और चोरी दोनोंका ही पाप लगता है इसीलिए ऐसे कामको करनेवाला मनुष्य परलोकमें जाकर अवश्य ही निर्धन और महादु:खी होता है। यही समझकर कभी किसी का धन हरण नहीं करना चाहिये।

कुत्सित काव्य करनेवालेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
दक्षः कुकाव्ये भवतीह जीवः।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्मके उदयसे यह जीव कुत्सित काव्य करनेमें निपुण होता है?

उत्त— कुकाव्यशास्त्रेऽप्यकरोद् रुचिं यः,
श्रुत्वा तथा दन्तकथामसाराम्।
कुशास्त्रदानं प्रविधाय तुष्येत्,
कुकाव्यशास्त्रे निपुणो भवेत्सः ।।४१।।

अर्थ—जो पुरुष कुत्सित काव्यशास्त्रोंमें रुचि रखता है, व साररहित दंतकथाओंको सुनकर संतुष्ट होता है अथवा कुत्सित

काव्यशास्त्रोंका दान देकर संतुष्ट होता है ऐसा मनुष्य मरकर कुत्सित काव्य शास्त्रोंकी रचना करनेमें व उनके जाननेमें निपुण होता है।

भावार्थ—कामशास्त्रकी कथा कहनेवाले व कामदेवकी वृद्धि करनेवाले या कामको उत्तेजित करनेवाले काव्योंकी कुत्सित काव्य कहते हैं। ऐसे कुत्सित काव्योंकी रचना करनेसे महापाप होता है क्योंकि ऐसा काव्य जबतक विद्यमान रहता है तब तक अनेक मनुष्य उसे पढ़कर व सुनकर पाप उत्पन्न करते रहते हैं। इसीलिए ऐसे काव्योंको कुत्सितकाव्य कहते हैं और उनका पढ़ना-पढाना महापाप माना जाता है इसी प्रकार अनेक दंत कथाएँ ऐसी हैं जिनके कुछ सार नहीं है अथवा जिनके सुननेसे काम उत्तेजित होता है अथवा क्रोध बढ़ता है अथवा मायाचारीकी शिक्षा मिलती है व अन्य अनेक नीच कामोंकी शिक्षा मिलती है, ऐसी दंतकथाओंका सुनना भी पाप ही कहलाता है, क्योंकि ऐसी कथाओंके सुननेसे भी परिणामोंमें दुष्टता आती जाती है इस प्रकार ऐसे कुत्सित शास्त्रोंका दान देना भी पापका कारण है। क्योंकि ऐसा कुत्सित शास्त्र जिसको दिया जाता है वही पुरुष उसे पढ़कर व सुनकर पाप उत्पन्न करता रहता है। तथा यह पापोंकी परंपरा सैकड़ों वर्षतक चलती रहती है। इसलिये ऐसे पाप शास्त्रोंमें जो रुचि करता है व उनको सुनता है व दान देता है वह मनुष्य परलोकमें जाकर महापाप उत्पन्न करनेके लिए कुत्सित काव्य करनमें ही चतुर होता है। जिससे कि महापाप उत्पन्न करता हुआ नरकादिकके दु:ख प्राप्त करता है। अतएव भव्यजीवोंको ऐसे कुत्सित काव्य कभी नहीं करने चाहिये और न कभी सुनने चाहिये।

यह जीव अधिक भार ढोनेवाला क्यों होता है यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
भवेद्धि जीवो बहुभारवाही।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर बतलाइये कि किस पापकर्मके उदयसे यह जीव अधिक बोझा ढोनेवाला उत्पन्न होता है?

उत्तर— **अरोपणाद्वाधिकभारवस्तु,**
छलेन हीनाधिकवाहनाद्वा।
दीनान् पशून् वाऽधिकताडनाद्वा,
तुष्येत् स ना स्याद्बहुभारवाही ।।५०।।

अर्थ—जो पुरुष दीन पशुओंपर अधिक बोधा लादकर प्रसन्न होता है व छलसे दीन पशु व मनुष्योंको अधिक काममें लेकर व उनसे शक्तिसे अधिक काम कराकर प्रसन्न होता है अथवा दीन पशुओंको अधिक ताड़ना कर प्रसन्न होता है ऐसा मनुष्य परलोकमें जाकर अधिक बोझा ढोनेवाला होता है।

भावार्थ—दीन-हीन मनुष्योंपर व पशुओंपर अधिक बोझा लादना, व उनसे उनकी शक्ति अधिक काम लेना व उनको अनुचितरीतिसे ताड़ना करना महापाप है। पशु वचनहीन होते हैं। वे कुछ कह नहीं सकते, परंतु शक्तिसे अधिक बोझा लादनेपर वे दुःखी होते हैं। जिस प्रकार अधिक बोझा लादनेसे पशु दुःखी होते हैं उसी प्रकार दीन अनाथ दरिद्री मनुष्योंपर यदि अधिक बोझा लाद दिया जाय तो वे भी बहुत दुःखी होते हैं। यह बात दूसरी है कि ऐसे मनुष्य अपने पेटके लिए अधिक दुःख सहन कर लेते हैं, परंतु है तो यह अन्याय। इसी प्रकार उनसे बलपूर्वक अधिक काम लेना व उनको अधिक दंडित करना भी अन्याय है। जो पशु लूले, लंगड़े हैं व रोगी हैं अथवा जिनके शरीरपर घाव हो रहे हैं ऐसे पशुओंसे कभी काम नहीं लेना चाहिए। ऐसे पशुओंसे काम लेना महा अन्याय है। तथा इसीलिए ऐसे अन्याय करनेवाले मनुष्य मरकर ऐसे ही दीन-दरिद्री मनुष्य व पशु होते हैं जिनपर उनकी शक्तिसे अधिक बोझा लादा जाता है। अतएव किसी जीवको किसी प्रकारसे भी नहीं सताना चाहिए।

दीर्घ आयु पाकर भी महादुःखी किस कारणसे होता है यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
दीर्घायुरेवं भवतीह दुःखी।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव लंबी आयु पाकर भी महादुःखी क्यों होता है?

उत्तर— द्रुच्छेदनं वा खननं च भूम्याः,
निष्कारणं येन कृतं कुपापम्।
हठात् त्रसस्थावरजीवबाधा,
दीर्घायुरेवापि भवेद्धि दुःखी।।५१।।

अर्थ—जो पुरुष बिना करणके वृक्षोंको काटता है, छोटे-छोटे पौधोंको काटता है, व बिना कारणके पृथ्वीको खोदता है, अथवा जो बिना ही कारणके हठपूर्वक त्रस स्थावर जीवोंको दुःख पहुँचाता है ऐसा मनुष्य मरकर दीर्घ आयु पाकरके भी महादुःखी होता है।

भावार्थ—यद्यपि इस संसारमें दीर्घ आयुका प्राप्त होना अच्छा समझा जाता है, परंतु शारीरिक व मानसिक दुःख होनेपर व दरिद्रता होनेपर अधिक आयुवालेको महादुःख होता है। आयुके अधिक होनेपर इन्द्रियाँ सब शिथिल हो जाती हैं, शरीर निर्बल हो जाता है, उठने बैठनेकी शक्ति नहीं रहती, कुछ काम होता नहीं तथा सब प्रकारसे बेकार हो जाता है। ऐसी अवस्था में यदि दरिद्रता हो, व पुत्र-पौत्र दुर्वचन कहनेवाले हों, व शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न हो गये हों, खाने-पीनेको मिलता न हो वा और भी किसी प्रकारका दुःख हो तो फिर उस बड़ी आयुका काटना अत्यंत कठिन हो जाता है। उस बड़ी आयुसे वह स्वयं दुःखी होता है तथा अन्य देखनेवाले भी दुःखी होते हैं। ऐसे मनुष्यको देखकर देखनेवाले भी यही कहते हैं कि "अब तो यह शीघ्र

ही मर जाय तो अच्छा" परंतु महादुःखी होता हुआ भी वह मनुष्य बिना आयु पूरी किये मर नहीं सकता। इससे सिद्ध होता है कि दुःखी होनेपर दीर्घायुका पाना और अधिक दुःखी बनानेके लिए होता है। तथा जो मनुष्य व्यर्थके पाप किया करते हैं बिना कारण व्यर्थ ही वृक्षोंके पौधोंको काट डालते हैं, पृथ्वी खोद डालते हैं, अग्नि लगा देते हैं, व्यर्थ पानी फैलाते रहते हैं व त्रस स्थावर जीवोंको अनेक प्रकारसे दुखी किया करते हैं ऐसे जीव मरकर दीर्घायु पाकर भी दुःखी होते हैं।

नपुंसक होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
नपुंसकः स्याद्भुवि सर्वनिन्द्यः॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे समस्त लोगोंके द्वारा निंदनीय ऐसा नपुंसक होता है?

उत्तर— क्रीडा ह्यनङ्गे च रुचिः कुहास्ये,
क्लीबस्य निन्दा भुवि तीव्रकामी।
कुशीलहेतोश्च कृतः प्रयत्नः,
इत्यादिपापात्स नपुंसकः स्यात्॥५२॥

अर्थ—जो पुरुष अनंगक्रीडा किया करता है, निंदनीय हँसी करनमें प्रेम रखता है, जो नपुंसक हिंजड़ोंकी निंदा किया करता है, जो संसारमें अत्यंत तीव्रकामी होता है और कुशील सेवन करनेके लिए अनेक प्रयत्न किया करता है वह पुरुष मरकर इन पापोंके कारण नपुंसक होता है।

भावार्थ—जो न तो स्त्री होते हैं और न पुरुष होते हैं उनको नपुंसक कहते हैं। जिनकी इच्छा पुरुषोंके साथ रमण करनेकी होती है उनको स्त्रीलिंग माना जाता है तथा जिनकी इच्छा स्त्रीके साथ रमण

करनेकी होती है उनके पुल्लिंग माना जाता है, परंतु नपुंसकलिंग वालोंकी इच्छा दोनोंके साथ रमण करनेकी होती है। यद्यपि नपुंसक नपुंसक ही होते हैं तथापि उनके हृदयमें कामसेवनकी लालसा अत्यंत तीव्र होती है। नपुंसक जीवोंकी कामवासना पजावेकी (कंड़े की) अग्नि के समान होती है जो बहुत कालतक जलती रहती है। इसीलिये यह नपुंसक पर्याय अत्यंत निंद्य मानी जाती है। जो पुरुष काम सेवनके अंगोंको छोड़कर अन्यत्र क्रीड़ा किया करते हैं अथवा कामोत्तेजित करनेवाली निंदनीय हँसी करनेमें प्रेम रखते हैं अथवा जिनके काम सेवनकी लालसा अत्यंत तीव्र होती है अथवा जो लोग कुशील सेवन करनेके लिए परस्त्रियोंको वश करनेके लिए व परपुरुषोंको वश करनेके लिए अनेक प्रकारके निंदनीय प्रयत्न किया करते हैं अथवा और भी ऐसे ही ऐसे काम किया करते हैं ऐसे पुरुष व स्त्री मरकर अवश्य ही नपुंसक होते हैं। इसलिये भव्यजीवोंको इस निंदनीय पर्यायसे बचनेके लिए सदा काल अपने हृदयको शांत रखना चाहिये। काम सेवनकी तीव्रलालसा कभी नहीं रखनी चाहिये।

विकलत्रय होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
मृत्वेति जीवो विकलत्रयः स्यात्।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे वा कैसे पाप करनेसे मरकर विकलत्रय जीव होता है?

उत्तर– दुःखं प्रदत्तं विकलत्रयाणां,
सुनिर्दयाताडनमरणादिः।
बन्दीकृता वा त्रसजीववृन्दाः,
स तीव्रपापाद्विकलत्रये स्यात्।।५३।।

अर्थ—जो पुरुष इस भवमें अत्यंत निर्दयताके साथ विकलत्रय जीवोंको दु:ख देता है, अथवा उनको ताड़न करता है व मारता है अथवा जो अनेक त्रसजीवोंको घेर बटोरकर बंद कर देता है ऐसा मनुष्य अपने तीव्र पापके उदयसे मरकर विकलत्रय जीवोंमें पैदा होता है।

भावार्थ—दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवोंको विकलत्रय कहते हैं। लट, पई, गिंडोये, जोंक आदि दो इन्द्रिय जीव कहलाते हैं। चींटी, खटमल आदि जीव तेइन्द्रिय कहलाते हैं। मक्खी, भौंरा, बर्र, ततैया, पतंगा आदि चौइन्द्रिय जीव कहलाते हैं। दोइन्द्रियके स्पर्शन, रसना ये दो इन्द्रियाँ होती है। तेइन्द्रिय के स्पर्श, रसना, घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं। तथा चौइन्द्रियके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियाँ होती हैं। ये तीनों ही प्रकारके जीव त्रस होते हैं और पूर्ण इन्द्रियाँ न होनेके कारण विकलत्रय कहलाते हैं। विकलत्रय महादुखी होते हैं और उन्हें प्रत्येक समयमें मरनेका डर लगा रहता है। जो पुरुष इस भवमें विकलत्रय जीवोंको दु:ख देते हैं, उन्हें मारते हैं, बाँधकर उड़ाते हैं उनके ऊपर धूल फेंककर दुखी करते हैं व त्रस जीवोंको बाँधकर रखते हैं, घेरकर रखते हैं, भूखे प्यासे रखते हैं, सर्दी गर्मीमें बँधे रखते हैं व अन्य किसी प्रकारसे दु:ख देते हैं वे जीव इस तीव्र पाप करनेके कारण विकलत्रय पर्यायमें उत्पन्न होते हैं।

दास होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
दासः परेषां भवतीह जीवः।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे इस संसारमें दूसरोंका दास हो जाता है?

उत्तर— यः कारयित्वा स्वगृहादिकार्य,
ददाति दीनाय धनादिवित्तम्।

स्वप्नेपि धैर्यं ह्यदधान्न लोभाद्,
दासः परेषां स भवेदभाग्यः ।।५४।।

अर्थ—जो पुरुष किसी दीन मनुष्यको अपने घरका काम कराकर धन देता है और लोभके कारण स्वप्नमें भी कभी उनको धैर्य नहीं देता है ऐसा पुरुष मरकर परलोकमें दूसरेका दास होता है।

भावार्थ—दीन-हीन पुरुषोंको व भूखे प्यासे पुरुषोंको करुणापूर्वक धनादिकका दान देना चाहिये। धन पाकर दान देना प्रत्येक गृहस्थका कर्तव्य हो जाता है। परंतु जो पुरुष लोभ के कारण दानके नामसे थोड़ासा धन तो देते है, परंतु उससे घरका सब काम कराकर व उतने की मजूरी कराकर थोड़ासा धन देते हैं ऐसे पुरुष मरकर दूसरेके दास होते हैऔर मजूरी कर अपना पेट भरते हैं फिर भी मजूरी मिलती है व नहीं भी मिलती है। इस प्रकार वे जीव महादुखी होते हैं। यही समझकर दान देकर कभी उससे बदला नहीं चुकाना चाहिये। दीनोंको करुणापूर्वक ही दान देना चाहिये।

स्त्रीपर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
प्राप्नोति जीवो ललनाशरीरम्।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे स्त्रीपर्यायको प्राप्त होता है?

उत्तर— स्त्रीवेषिजीवं प्रविलोक्य तुष्येत्,
करोति नित्यं ललनाभिलाषाम्।
हास्यं गतिं दारसमं च वार्ता,
मृत्वा नरोऽयं ललना भवेद्धि।।५५।।

अर्थ—जो पुरुष स्त्रीका वेष धारण करनेवाले मनुष्योंको देखकर संतुष्ट होता हैं, तथा जो सदाकाल स्त्रियोंकी अभिलाषा करता रहता है

और जो स्त्रियोंके ही समान हँसता है, स्त्रियोंके ही समान चलता है और स्त्रियोंके ही समान बातचीत करता है ऐसा मनुष्य मरकर अवश्य ही स्त्रीपर्यायको प्राप्त होता है।

भावार्थ—इस संसारमें ऐसे अनेक मनुष्य हैं जो सदा काल स्त्रियोंके साथ ही बैठते-उठते हैं, उन्हींके साथ बातचीत करते हैं, मनुष्यपर्यायसे स्त्रीपर्यायको उत्तम समझते हैं और इसीलिये जो हँसना, गाना, चलना, बातचीत करना, मटकना, वस्त्र पहनना, आभूषण पहनना आदि समस्त कार्य स्त्रियोंके समान करते हैं। ऐसे पुरुष मरकर अपने उन्हीं पापरूप परिणामोंके कारण स्त्रीपर्यायको प्राप्त होते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो स्त्रीपर्याय अत्यंत निंद्यपर्याय है। प्रसूतिके समय उसे अनेक प्रकारके महा दुःख उठाने पड़ते हैं तथा वह सदाकाल पराधीन रहती है। इसीलिये ऐसी स्त्रीपर्यायमें जन्म लेना पापका ही कारण माना जाता है।

स्थावर शरीर धारण करनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– पापोदयान्मे वद देव! कस्मा–
ज्जीवो भवेत्स्थावरदेहधारी।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे स्थावरशरीर धारण करता है।

उत्तर– धर्मस्य देवस्य गुरोः प्रणिन्दा,
कुदेवधर्मादिगुरोः प्रशंसा।
स्वाचारनिन्दाऽपि **कृतैव येन,**
स स्यान्नरः स्थावरदेहधारी।।५६।।

अर्थ—जो पुरुष भगवान् अरहंत देवकी निंदा करता है, अहिंसामय धर्म और वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंकी निंदा

करता है, जो कुदेव, कुधर्म और कुगुरुकी निंदा प्रशंसा करता है और श्रेष्ठ आचरणोकी भी निंदा करता है, ऐसा पुरुष मरकर अवश्य स्थावरशरीर धारण करता है।

भावार्थ—एकेन्द्रिय जीवोंको स्थावर कहते हैं, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, अग्निकायिक और वनस्पतिकायिकके भेदसे स्थावरजीवोंके पाँच भेद हैं। निगोदिया जीव भी स्थावर कहे जाते हैं ये निगोदिया जीव एक श्वासमें अठारहं बार जन्म लेते हैं और अट्ठारह बार ही मरण करते हैं। इस संसारनें जन्म मरणके समान अन्य कोई दुख नहीं है तथा वह महादुख निगोदिया जीवों के एक श्वासमें अठारह बार प्राप्त होता है। ऐसा अत्यंत पापमय तथा निंदनीय स्थावर शरीर देवशास्त्र-गुरुकी निंदा करनेसे, कुदेव, कुधर्म, कुगुरुकी प्रशंसा करनेसे और आचरणोंकी निंदा करनेसे प्राप्त होता है। इसलिये भव्य जीवोंको देव-शास्त्र-गुरुकी निंदा नहीं करनी चाहिये।

अंगहीन होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– पापोदयान्मे वद देव! कस्मा–
दङ्गैरुपाङ्गैर्भवतीह हीनः ।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे अंग-उपांगसे हीन होता है?

उत्तर– अङ्गं ह्युपाङ्गं च परस्य येन,
विच्छेदितं वा भवनं प्रणष्टम्।
दृष्ट्वाङ्गहीनं स्वयमेव तुष्येत्,
भवेत्स दुष्टश्च किलाङ्गहीनः ।।५७।।

अर्थ—जो पुरुष दूसरेके अंग-उपांगोंको काट डालता है व दूसरोंका घर नष्ट कर देता है अथवा जो अंग-उपांगहीन मनुष्योंको देखकर संतुष्ट होता है ऐसा मनुष्य मरकर अंगहीन होता है।

भावार्थ—दूसरोंके अंग-उपांग काटना महापाप है। जिसके अंग-उपांग काट दिये जाते हैं वह मनुष्य बेकार हो जाता है और फिर वह जन्मभर दुखी रहता है। इसी प्रकार जिसका घर नष्ट हो जाता है वह भी जन्मभर दुखी रहता है। ऐसा महादुख देना महापापका कारण है। यही कारण है कि ऐसे काम करनेवाला वह महापापी पुरुष मरकर अगले जन्म में अंग-उपांग हीन हो जाता है। और वह भी जन्म भर तक महादुखी बना रहता है। इसी प्रकार अंग-उपांगहीन मनुष्योंको देखकर जो संतुष्ट होता है जिसके हृदयमें उनको देखकर करुणा नहीं आती ऐसे मनुष्य भी मरकर अंग-उपांग हीन होते हैं। यही समझकर किसी दुखी जीवको देखकर कभी संतुष्ट नहीं होना चाहिये और न किसीके अंग-उपांग काटने चाहिये।

नीचकुलमें उत्पन्न होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— पापोदयान्मे **वद देव! कस्मात्।**
स्याज्जन्म जन्मोश्च कुले हि नीचे।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकार्यके करनेसे व किस पापकर्मके उदयसे नीचकुलमें उत्पन्न होता है?

उत्तर— **निजप्रशंसा स्वमुखात्परेषां,**
निन्दा कृता श्रेष्ठकुलस्य येन।
गर्वादबोधात् गुणिनां कुलस्य,
तज्जन्म कौ नीचकुलं भवेद्धि।।५८।।

अर्थ—जो पुरुष अपने मुखसे अपनी ही प्रशंसा करते हैं तथा दूसरोंकी निंदा करते हैं अथवा जो अपने अभिमानसे व गुणियोंके उच्चकुलके अज्ञानसे श्रेष्ठकुलकी निंदा किया करते हैं वे पुरुष मरकर नीचकुलमें जन्म लेते हैं।

भावार्थ—श्रेष्ठकुलकी व श्रेष्ठ कुलवालोंकी निंदा करना श्रेष्ठ

कुलसे वा श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होनेवाले पुण्यवान मनुष्योंसे अरुचि उत्पन्न करता है जो मनुष्य पुण्यवान मनुष्योंसे अरुचि करता है वह पुण्यकार्योंसे भी अरुचि करता है तथा पुण्यकार्योंसे अरुचि करनेके कारण वह सदाकाल नीचकार्य ही करता रहता है। नीचकार्योंके करनेसे वह पापकर्मोंका बंध करता है और उनपापकर्मोंका उदय होनेपर वह नीचकुलमें उत्पन्न होता है। नीच कुलमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य अपने पापकर्मके उदयसे सर्वत्र तिरस्कृत होते हैं। जिनपूजा, पात्रदान आदि उत्तम कार्योंसे वंचित रहते हैं और प्रायः जन्मभर दुःखी रहते हैं।

उच्चकुलमें उत्पन्न होकर भी धनहीन किस कारणसे होते हैं यह बतलाते हैं–

प्रश्न– पापोदयान्मे वद देव! कस्मात्।
हीनो धनैरुच्चकुलेऽपि जीवः ।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मके उदयसे उच्चकुलमें उत्पन्न होकर भी धनहीन होता है?

उत्तर– पुरोच्चगोत्रं च शुभेन बद्धं,
पश्चात्सगर्वात्परनिन्दनादि ।
कृतो गुरोर्येन सदापमानः,
स स्याद्धनैरुच्चकुलेऽपि हीनः ।।५९।।

अर्थ—जिन जीवोंने पहले शुभ परिणामोंके निमित्तसे ऊँच गोत्रका बंध कर लिया है और फिर अपने अभिमानसे दूसरोंकी निंदा की है अथवा अपने अभिमानसे जिन्होंने गुरुजनोंका सदा अपमान किया है ऐसे पुरुष उच्चकुलमें तो उत्पन्न होते हैं, परंतु धनहीन होते हैं।

भावार्थ—उच्चकुलमें उत्पन्न होकर धनहीन होनेसे बहुत दुःख होता है। इसका भी कारण यह है कि उच्चकुलकी प्राप्ति पुण्यकर्मके उदयसे होती है। धनादिककी प्राप्ति भी पुण्यकर्मके उदयसे होती है।

उच्चकुलमें उत्पन्न होनेवालोंको अपने समान उच्चकुलवालोंके साथ व्यवहार करना पड़ता है, परंतु वह व्यवहार बिना धनके नहीं होता। बराबरका व्यवहार न करनेसे उन सबके साथ लज्जित होना पड़ता है। अतः वह मानसिक पीड़ा सदा दुःख देती रहती है। इसलिये भव्यजीवोंको पुण्यकर्म करते ही रहना चाहिये। पुण्यकर्मोंके साथ अभिमान कभी नहीं करना चाहिये।

जीविकाके लिये परिभ्रमण करनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— देशे विदेशे च कुतश्च पापा-
दाजीविकार्थे मनुजा भ्रमन्ति ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर बतलाइये कि यह जीव अपने किस पापकर्मके उदयसे आजीविकाके लिये देश-विदेशमें परिभ्रमण करते हैं?

उत्तर— योऽनेकवारं परिभ्रामयित्वा,
गृहादिकार्यं खलु कारयित्वा।
आशां प्रदर्श्यापि धनं न यच्छेत्,
भ्रमेत्सदा कौ स च वृत्तिहेतोः ।।६०।।

अर्थ—जो पुरुष अपने सेवकोंको अनेक बार इधर-उधर दौड़ाकर घरके काम कराता है। और फिर आशा दिखलाकर भी धन नहीं देता वह पुरुष अपनी जीविकाके लिये इस पृथ्वीपर सदा काल परिभ्रमण किया करता है।

भावार्थ—सेवकोंसे घरका सब काम लेकर भी तथा उसके बदले उसको धन देनेकी आशा दिलाकर भी धन न देना एक प्रकारका महापाप है, क्योंकि जब घरमें धन नहीं होता है तभी मनुष्य दूसरोंके घर जाकर सेवा करता हैं। दिनभर सेवा करनेपर व घरके सब काम करनेपर भी यदि उसको धन नहीं मिलता है तो उस दिन वह भी

भूखा रहता है और उसके बाल बच्चे भी भूखे रहते हैं। अब जिस मनुष्यको पहले दिन भोजन नही मिला है वह मनुष्य दूसरे दिन भी काम नहीं कर सकता और इस प्रकार वह तथा उसके बालबच्चे बहुत दुखी हो जाते हैं, उनके परिणामोंमें विकलता हो जाती है और वे क्षण-क्षणमें काम कराकर धन न देनेवालेके लिए अशुभ आशीर्वाद देते रहते हैं। इसलिये जो जीव काम कराकर भी धन नही देते वे जीव मरकर अपनी आजीविकाके लिये देश-विदेशमें घूमते फिरते हैं फिर भी उनको जीविका प्राप्त नहीं होती है। इसलिये काम कराकर किसीका भी धन नहीं रोकना चाहिये।

छलपूर्वक जीविका प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— कर्मोदयान्मे वद देव! कस्मा-
च्छलैः समं सञ्ज्वलतीह वृत्तिः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकर्मके उदयसे इन जीवोंकी जीविका छल पूर्वक चलती है?

उत्तर— छलेन दत्तं मुनयेऽन्नदानं,
तथा कृता देवगुरोश्च सेवा।
येन प्रशंसा खलवञ्चकानां,
स्यात्तीव्रपापाच्छलयुक्तवृत्तिः ।।६१।।

अर्थ— जो पुरुष वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके लिये छलपूर्वक आहारदान देते हैं व छलपूर्वक देव-शास्त्र-गुरुकी सेवा करते हैं अथवा जो दुष्ट ठगोंकी प्रशंसा किया करते हैं ऐसे पुरुष मरकर उस तीव्र पापकर्मके उदयसे छलपूर्वक होनेवाली जीविका प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंको आहारदान देना पुण्यका काम है, परंतु वही आहारदान यदि छलपूर्वक दिया जाता है तो वह कार्य पापकार्य हो जाता है। सम्यग्दृष्टि सदाचारी पुरुष तो कभी

छलपूर्वक आहर दे ही नहीं सकता। परंतु जो पुरुष अंतरंगमें मिथ्यात्वको धारण करता है वह छलपूर्वक आहार दे सकता है अथवा जो पुरुष बाह्यप्रवृत्तिमें समाजका अपराधी होता है जातिच्युत व पतित होता है वह भी छलपूर्वक मुनियोंको आहारदान दे सकता है। इसी प्रकार देव-धर्म-गुरुकी सेवा, जिन पूजन, प्रतिष्ठा, पात्रदान आदि भी छलपूर्वक हो सकते हैं। जो मनुष्य दुष्ट मायाचारी जीवों की प्रशंसा करता है और अपने मिथ्यात्वके उदयसे उनको श्रेष्ठ मानता है वह भी उसीके समान पाप करता है। अथवा कितने ही मनुष्य धन व पुत्र प्राप्त होनेकी तीव्र लालसासे देव व गुरुकी सेवा किया करते हैं व गुरुओंको आहारदानादिक दिया करते हैं। इसप्रकार छलपूर्वक धर्मकार्य करनेवालोंको परलोकमें जाकर छलपूर्वक होनेवाली जीविका प्राप्त होती है।

यह जीव पशु होकर घर-घर बिकता रहता है ऐसा पशु किस कारणसे होता है-

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च पशुर्भवेन्ना।
विक्रीयते येन गृहे गृहे कौ।।

अर्थ—हे प्रभो! अब यह बतलाइये कि यह जीव किस पापकर्मसे पशु होता है तथा घर-घर बिकता रहता है?

उत्तर– छलात्परेषां वनितां च पुत्रीं,
क्रीणाति गां वा शयनान्नवस्त्रम्।
छलिप्रशंसां नितरां करोति,
भूत्वा पशुर्विक्रियते गृहादौ।।६२।।

अर्थ—जो मनुष्य छलपूर्वक किसी दूसरेकी स्त्रीको व पुत्रीको मूल्य देकर लेता है, छलपूर्वक किसी गायको व अन्य पशुको लेता है, सोने बैठनेके सामान व अन्न वस्त्र छलपूर्वक लेता है अथवा जो

मायाचारी लोगोंकी प्रशंसा किया करता है वह मनुष्य मरकर ऐसा ही पशु होता है जो घर-घर बिकता रहता है।

भावार्थ—मायाचारी करना तिर्यंचयोनिका कारण है। जिस प्रकार तिर्यंचयोनिमें उत्पन्न होनेवाले पशु अनेक प्रकारके हैं उसी प्रकार मायाचारी भी अनेक प्रकार की है। उस अनेक प्रकारकी मायाचारी से जो पुरुष अनेक प्रकारके छल-कपट बनाकर किसी की पुत्रीको मोल ले लेता है व किसी स्त्रीको मोल ले लेता है वह मनुष्य उस छल कपट रूप पापके कारण ऐसा पशु होता है जो घर-घर बिकता फिरता है। इसीप्रकार जो मनुष्य मायाचारी करनेवालोंकी प्रशंसा करता है अथवा छल-कपट से अन्न-वस्त्र आदि अन्य पदार्थोंको मोल लेता है, वह मनुष्य भी मरकर ऐसा ही घर-घर बिकनेवाला पशु होता है। इस प्रकारके मायाचारी मनुष्य उन स्त्रियोंको पालन पोषण करनेके व अन्य अनेक प्रकार के लोभ दिखलाते हैं और फिर उनको मोल ले लेते हैं तथा अपने वशमें कर लेते हैं। ऐसे नीच मनुष्य भेड़, बकरी आदि नीच पशु होते हैं। जहाँ अनंत-कालतक दुःख भोगा करते हैं।

एक साथ अनेक जीवोंकी मृत्युका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वदैककाले।
भूयिष्ठजन्तोर्भवतीह मृत्युः।।

अर्थ—हे प्रभो! अब यह बतलाइये कि एक ही समयमें अनेक जीवोंकी मृत्यु किस पापकार्यके करनेसे होती है?

उत्तर— अनेकजीवो हि मिथो मिलित्वा,
साधोः प्रणिन्दामकरोत्कुकृत्यम्।
तुष्येत् पशोर्वीक्ष्य कलिं ह्यबोधात्,
कुर्यात्कुबन्ध समुदायमृत्योः।।६३।।

अर्थ—जब कभी अनेक जीव मिलकर किसी साधुकी, वीतराग निर्ग्रंथ गुरुकी निंदा करते हैं अथवा अनेक जीव मिलकर अन्य कोई कुकर्म करते हैं अथवा अनेक जीव मिलकर अपनी अज्ञानताके कारण पशुओंकी लड़ाई देखकर प्रसन्न होते हैं ऐसे जीव मिलकर एक साथ मरनेका पाप बंध किया करते हैं।

भावार्थ—वर्षाके दिनोंमें अनेक गिंजाई उत्पन्न होती हैं तथा सैकड़ों हजारों गिंजाइयोंका छत्ता थोड़ेसे ही स्थानमें बना रहता है। यदि उन गिंजाइयोंके ऊपर किसी हाथी व ऊँटका पैर पड़ जाय या उनके ऊपर कोई पला भरकर मिट्टी डाल दे, अथवा अग्नि डाल दे तो वे सब गिंजाई एक साथ मर जाती हैं अथवा मशीनोंके युद्धमें अनेक जीव एक साथ मर जाते हैं व विष मिली वायुसे अनेक जीव एक साथ मर जाते हैं ऐसे अनेक जीव जो एक साथ मरते हैं उनका ही साथ होता है। तथा ऐसा एक साथ उदय में आनेवाला पाप कर्मका बंध भी वे सब एक ही साथ करते हैं।

जो हजारों जीव किसी सभामें बैठकर एक साथ किसी वीतराग निर्ग्रंथ गुरुकी निंदा करते हैं अथवा भगवान् अरहंत देवकी व उनके कहे हुए शास्त्रोंकी निंदा करते हैं अथवा अनेक मनुष्य एकसाथ मिलकर पशु-पक्षियोंका युद्ध देखते हैं और प्रसन्न होते हैं ऐसे सब जीव या उनमेंसे अनेक जीव ऐसे ही आयु कर्मका बंध करते हैं जो एक ही साथ अंतको प्राप्त होते हैं। यही समझकर किसी भी वीतराग देव-शास्त्र-गुरुकी निंदा नहीं करनी चाहिये व पशु पक्षियोंका युद्ध नहीं देखना चाहिये ।

किसी पुरुषको देखकर स्त्रीके हृदयमें व किसी स्त्रीको देखकर किसी पुरुषके हृदयमें काम वासना उत्पन्न हो जाती है उसका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च नरस्य नार्याः ।
दृष्ट्वा मिथः स्यात्खलकामजन्म ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कर्मसे स्त्री पुरुषोंमें परस्पर एक दूसरे को देखकर कामवासना उत्पन्न हो जाती है ?

उत्तर– नार्याः पुरा जन्मनि वा नरस्य,
मिथो यदि स्याद् व्यभिचारकर्म ।
रागादिहास्यं हृदि तत्प्रमोहात्,
तयोऽरमुत्रेपि भवेत्प्रमोहः ।।६४।।

अर्थ—पहले जन्ममें जिन स्त्री पुरुषोंका संबंध रहता है, व पहले जन्ममें जो स्त्री पुरुष परस्पर व्यभिचार करते रहते हैं अथवा एक दूसरे पर मोहित होकर रागभाव व हँसी किया करते हैं ऐसे स्त्री पुरुषोंके हृदयमें परलोकमें भी परस्पर मोह उत्पन्न होता है ।

भावार्थ—एक कुटुंबमें जितने जीव उत्पन्न होते हैं उनका पूर्वभवका संबंध प्रायः कुछ न कुछ रहता ही है । लोग पूर्वभवमें परस्पर शत्रु होते हैं ऐसे जीव यदि एक कुटुम्बमें आकर उत्पन्न होते हैं तो एक कुटुंबमें होनेपर भी परस्पर उनका विरोध रहता ही है । इसी प्रकार जिन स्त्री पुरुषोंका पहले भव में परस्पर संबंध रहा है अथवा जिन स्त्री पुरुषोंने पहले भवमें परस्पर व्यभिचार सेवन किया है, परस्पर एक दूसरेपर मोहित होकर रागभाव किये हैं व हँसी आदि विनोद किया है अथवा जिन दोनोंमें परस्पर होनेवाला रागभाव हृदयमें बना रहा है ऐसे जीव जब दूसरे भवमें भी स्त्री पुरुष होते हैं तब उनमें एक दूसरेको देखकर रागभाव व मोह उत्पन्न होता ही हैं तथा ऐसा मोह व रागभाव अनेक जन्मोंतक बना रहता है। यही समझकर भव्यजीवोंको कभी किसीसे अधिक प्रेम व रागभाव नहीं करना चाहिये। भोगोपभोगोंका

सेवन भी न्यायपूर्वक ही करना चाहिये। अन्यायपूर्वक भोगोपभोगोंका सेवन कभी नहीं करना चाहिये।

क्रोध उत्पन्न होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– **पापोदयाज्जायत एव कस्मात्।**
दृष्ट्वान्यजीवान् हृदि कोपजन्म।।

अर्थ—हे प्रभो! अब यह बतलाइये कि किस पापकर्मके उदयसे इस जीवके हृदयमें अन्य जीवोंको देखकर क्रोध उत्पन्न हो जाता है?

उत्तर– **यः कोऽपि नो पूर्वभवस्य शत्रुः,**
स्वदेहहन्ता यदि वा विरोधी।
वियोगकर्ता स्वकुटुम्बकानां,
तं वीक्ष्य कोपो भवतीह जन्तोः।।६५।।

अर्थ—जो कोई पुरुष पहले भवमें अपना शत्रु था अथवा अपने शरीरको नाश करनेवाला व विरोधी था अथवा अपने किसी कुटुंबके मनुष्यका वियोग करनेवाला था ऐसे मनुष्यको देखकर इन जीवोंके हृदयमें अवश्य ही क्रोध उत्पन्न होता है।

भावार्थ—क्रोधादिक कषायोंकी उत्पत्ति पहले जन्मके संस्कारोंसे ही होती है। पहले भवमें जिन जीवोंने अपनी कुछ हानि की है व अपने कुटंबकी कुछ हानि की है या अपने साथ कुछ विरोध किया है ऐसे जीवोंको देखकर अपने हृदयमें अवश्य ही क्रोध उत्पन्न होता है। यदि पहले भवमें हमारे जीवने किसीके साथ वैर विरोध किया है तो हमको देखकर दूसरेके हृदयमें क्रोध उत्पन्न होता है। यही समझकर भव्यजीवोंको कभी किसीके साथ वैर विरोध नहीं करना चाहिये अथवा किसीका हानि नहीं करनी चाहिये। जिस किसीके साथ वैर विरोध हो उससे उसी समय क्षमा माँग लेनी चाहिये इसप्रकार अपने आत्मामें क्रोधादिकका संस्कार कभी नहीं रखना चाहिये।

एक साथ अनेक जीवोंके रोगी होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– **कस्माद्धि पापाच्च भवन्ति चैक-**
काले सरोगा बहुजीववर्गाः ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह अनेक जीवोंका समुदाय एक ही समयमें किस पापकर्मके उदयसे एक साथ रोगी होता है?

उत्तर– **साधोर्वपुः स्वेदरजःप्रलिप्तं,**
दृष्ट्वा जुगुप्सामकरोत्प्रणिन्दाम् ।
स्वानन्दतुष्टस्य तथापमानं,
स्यादेककालेपि च रोगयुक्तः ।।६६।।

अर्थ—जो अनेक जीव मिलकर वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके पसीना और धूलिसे मिले हुए मलिन शरीरको देखकर ग्लानि करते हैं या उनकी निंदा करते हैं अथवा आत्मामें लीन रहनेवाले उन्हीं मुनियोंका अपमान करते हैं ऐसे जीव उस पाप कर्मके उदयसे एक ही समयमें रोगी होते हैं।

भावार्थ—वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी निंदा करना, उनको देखकर ग्लानि करना व उनका अपमान करना महापाप हैं। मुनिलोग पूर्ण अहिंसाव्रतको पालन करते हैं। स्नान करने में अनेक जीवोंकी हिंसा होती है। यही कारण है कि मुनिलोग आजन्म स्नानके त्यागी होते हैं। गर्मीके दिनोंमें पसीना आता ही है और धूलि उड़कर उनपर जम ही जाती है तथापि वे मुनिराज कभी स्नान नहीं करते, उस शरीरकी मलिनताको सहन करते हैं। वे मुनिराज शरीरको भी पर और हेय समझते हैं, इसलिये वे शरीरसे भी कभी ममत्व व मोह नहीं करते। वे मुनिराज तो अपने शुद्ध आत्माको ही अपना समझते हैं और इसीलिये वे सदाकाल उसीमें लीन रहते हैं। ऐसे मुनियोंको देखकर जो

अनेक जीव उनकी निंदा करते हैं, उनका अपमान करते हैं उनके लिये बुरे वचन कहते है, उनके आहार विहारमें प्रतिबंध करते हैं व उनसे अरुचि रखते हैं, उनकी आज्ञाका उल्लंघन करते या कराते हैं अथवा अन्य किसी प्रकार उनका विरोध करते हैं ऐसे समस्त जीव एक साथ रोगी होते हैं। उन सब जीवोंने एक साथ पापका बंध किया इसलिये उन सब का उदय भी एक साथ हो आता है। यही समझकर वीतरागी मुनियोंकी निंदा कभी नहीं करनी चाहिये।

रोगोंकी शांतिके लिये प्रयत्न करनेपर भी रोग शांत नहीं होता इसका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न– रोगापशान्त्यै च कृते प्रयत्ने।
तस्योपशान्तिर्भवतीह किं न ।।

अर्थ—रोगोंकी शांतिके लिये प्रयत्न करने पर भी उस रोगकी शांति नहीं होती इसका कारण क्या है ?

उत्तर– सरोगिसेवा न कृता प्रदत्तं,
स्वल्पौषधं रैविपुलं गृहित्वा।
रोगस्य भीतिं च प्रदर्श्य लोभाद्,
यत्ने कृते नश्यति नुर्न रोगः ।।६७।।

अर्थ—जो पुरुष वैद्य होकर भी रोगीयोंकी सेवा नहीं करता, अथवा अपने तीव्र लोभसे रोगका भय दिखलाकर बहुतसा धन लेकर भी बहुत थोड़ी औषधि देता है वह पुरुष रोगी होनेपर उसकी शांतिके लिये अत्यंत प्रयत्न करने पर भी नीरोग नहीं होता।

भावार्थ—जो मनुष्य जिस विद्याका जानकार है उसको उस विद्याके द्वारा अपना और दूसरोंका दोनोंका उपकार करना चाहिये। यहाँ पर इतना और समझ लेना चाहिये कि केवल धन बटोर लेना अपना उपकार नहीं है। धन तो अपने कर्मके क्षयोपशमके अनुसार

आता ही है। किंवा अपने आत्माका कल्याण कर लेना, पापकर्मोंको नष्टकर पुण्यकर्मोंका संचय कर लेना अपना उपकार कहलाता है। उस विद्यासे जिस प्रकार भी दूसरों का उपकार हो उसे उसी प्रकार दूसरोंका उपकार करते रहना चाहिये। यही उस विद्याके प्राप्त होनेका फल है। वैद्योंको रोगियोंकी सेवा भी करनी चाहिये और उचित मूल्य लेकर अच्छी औषधि देनी चाहिये। यदि कोई गुणी निर्धन आजाय तो उसकी विशेष सेवा करनी चाहिये तथा ऐसे निर्धनों के लिये बिना मूल्य औषधि भी देनी चाहिये। जो वैद्य ऐसा नही करते हैं तथा अधिक मूल्य लेकर भी अच्छी औषधि, नहीं देते रोगियोंकी सेवा नहीं करते अथवा अधिक धन लेनेकी इच्छासे रोगको बढ़ा देते हैं, रोगको असाध्य व कष्टसाध्य बतलाकर अधिक धन लेनेकी इच्छा करते हैं, जो निर्धनोंसे भी अधिक धन वसूल कर लेते हैं ऐसे वैद्य रोगी होनेपर बहुत अधिक कष्ट पाते हैं तथा उस रोगको शांत करनेके लिये उत्तम उपाय करनेपर भी नीरोग नहीं होते हैं।

गर्भपात होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद! स्त्रियश्च।
कौ गर्भपातो भवति प्रभो मे।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापके करनेसे स्त्रियोंका गर्भपात हो जाता है?

उत्तर– पुत्रो यया मारित एव गर्भे,
तुग्मारणार्थं च विषं प्रदत्तम्।
वा गर्भपातं प्रविधाय तुष्येत्,
तस्या भवेदिह हि गर्भपातः।।६८।।

अर्थ—जिस किसी स्त्रीने अपने व दूसरेके पुत्रको गर्भमें ही मार दिया है, किसी के पुत्रको मारनेके लिए विष दिया है, अथवा

जो गर्भपात करके संतुष्ट हुई है उस स्त्रीका गर्भपात अवश्य ही होता है।

भावार्थ—गर्भमें रहनेवाला बालक अत्यंत दुःखी, अत्यंत लाचार और सर्वथा पराधीन रहता है। उस समय वह थोड़ेसे ही प्रयोगसे मर जाता है। ऐसे लाचार पराधीन पुत्रको मार देना महापाप कहलाता है। जो स्त्री ऐस महापाप करती है अथवा जो स्त्री अपने व दूसरेके पुत्रको विष देकर मार देती है अथवा जो गर्भपात करके प्रसन्न होती है अथवा सौतके पुत्रोंसे ईर्ष्या, द्वेष रखकर उनको दुःख देती है ऐसी स्त्रीका गर्भपात अवश्य हो जाता है। गर्भपात होना पापका कारण है और वह पुत्र मारने आदि महापापोंके करनेसे ही होता है।

कुव्यसनोंमें धन खर्च होने कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च धनादिशक्ते-
र्व्ययो भवेद्वा व्यसने जनानाम्।

अर्थ—हे प्रभो! अब यह बतलाइये कि किस पापके करनेसे लोगोंका धन व अन्य शक्तियाँ कुव्यसनोंमें खर्च हो जाती हैं?

उत्तर— धनं कुमार्गे हि हठान्नियोज्य,
कृत्वा प्रशंसां व्यसनस्थितानाम्।
बलान्यभार्यामपहृत्य तुष्येत्,
तेषां धनादेर्व्यसने व्ययः स्यात्॥६९॥

अर्थ—जो पुरुष हठ पूर्वक अपने धनको किसी कुमार्गमें लगा देता है अथवा जो पुरुष कुव्यसनोंमें लीन होनेवाले मनुष्यों की प्रशंसा करता है अथवा जो किसीकी स्त्रीको बलपूर्वक हरण कर संतुष्ट व प्रसन्न होता है ऐसे पुरुषोंका धन व शक्ति कुव्यसनोमें ही खर्च होती है।

भावार्थ—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील सेवन आदि पापोंके साधनोंको कुमार्ग कहते हैं। तथा जुआ खेलना, मांसभक्षण करना,

मद्यपान करना, वेश्या और शिकार खेलना ये सात कुव्यसन कहलाते हैं। ये कुमार्ग व व्यसन सब पापोंके मार्ग हैं। इनके करनेसे महापाप उत्पन्न होता है। यद्यपि इन पापोंके करने वाले नरकादिक दुर्गतियोंमें ही जाते हैं। परंतु किसी कारण विशेषसे यदि ऐसे मनुष्य मरकर धनी मनुष्य हो जाते हैं तो फिर उनका वह धन दुर्व्यसनोंमें ही खर्च हो जाता है। जिन लोगोंको जन्म-जन्मांतरसे दुर्व्यसनोंका अभ्यास पड़ा हुआ है ऐसे लोगोंका मन फिर दुर्व्यसनोंमें ही लगा रहता है।

सम्यग्ज्ञानमें भी रुचि न होनेंका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च न रोचतेऽयं।
जीवायमिष्टः सुखदः सुबोधः।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पाप कार्यके करनेसे इस जीवको मिष्ट और सुख देनेवाला श्रेष्ठ ज्ञान भी अच्छा नहीं लगता?

उत्तर– दत्वा कुशिक्षां व्यसने नियोज्य,
कृत्वा जनान् देवगुरोश्च निन्दाम्।
श्रुत्वेति तुष्येद्वचनं खलादेः,
तस्मै सुबोधोपि न रोचतेऽत्र।।७०।।

अर्थ—जो पुरुष कुशिक्षा देकर व दिलाकर प्रसन्न होता है अथवा जो पुरुष अनेक मनुष्योंको कुव्यसनोंमें लगाकर प्रसन्न होता है देव, शास्त्र, गुरुकी निंदा कर प्रसन्न होता है, अथवा दुष्ट व नीच पुरुषोंके वचनोंको सुनकर प्रसन्न होता है ऐसे पुरुषको अंतमें जाकर भी श्रेष्ठ ज्ञानमें रुचि कभी नहीं होती है।

भावार्थ—जिनके हृदयमें तीव्र मिथ्यात्व बैठा हुआ है ऐसे ही पुरुष कुशिक्षासे प्रसन्न होते हैं। जिस शिक्षासे मिथ्यात्वरूप परिणाम हो जाय, जिस शिक्षासे देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति हट जाय, रत्नत्रयसे

रुचि हट जाय, सम्यक्चारित्रसे द्वेष करने लग जाय, देवपूजा-पात्रदान आदिको बुरा कहने लग जाय, वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंकी निंदा करने लग जाय व शास्त्रोंकी आज्ञाका उल्लंघन करने लग जाय ऐसी शिक्षाको कुशिक्षा कहते हैं। जो लोग ऐसी शिक्षामें प्रसन्न होते हैं वे लोग मोक्षमार्गसे सदा विपरीत रहते हैं और इसीलिए ऐसे लोग देव शास्त्र, गुरुकी निंदा करते हैं व दुष्टोंके वचनोंको सुनकर प्रसन्न हुआ करते हैं। ऐसे मिथ्यादृष्टि पुरुषोंको भला श्रेष्ठ ज्ञान व आत्मज्ञान अच्छा कैसे लग सकता है अर्थात् कभी नहीं लग सकता।

चांडालके हाथसे मृत्यु होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न– कस्माद्धि पापाश्च वदेति जन्तो–
श्चाण्डालहस्तैर्भवतीह मृत्युः ।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस किस पापकार्यके करनेसे यह जीव चांडालके हाथसे मारा जाता है?

उत्तर– दुःखप्रदं हिंसकमेव कृत्यं,
कृतं हृतं प्राणधनं पशोर्यैः ।
सुसेवितं वा मधुमद्यमांसं,
चाण्डालतः स्यान्मरणं च तेषाम् ।।७१।।

अर्थ—जो पुरुष अनेक जीवोंको महा दुःख देनेवाले हिंसा के कार्य करते रहते हैं अथवा पशुओं के प्राणरूपी धनको हरण

है तथापि महापापकर्मके उदयसे ऐसा समय आता है। जो पुरुष अनेक
पापी लोग चांडालके ही हाथसे मारे जाते हैं।

भावार्थ—चांडालके हाथसे मरना अत्यंत निंदनीय गिना जाता है तथा पि महापापकर्मके उदयसे ऐसा समय आता है। जो पुरुष अनेक जीवोकी हिंसा करते रहते हैं, व अनेक जीवोंकी हिंसासे होनेवाले व्यापारको करते हैं, जो पशुओंको मारते हैं व पशुओंको, पक्षियोंको

अनेक प्रकारके दुःख देते हैं व मद्यपान करते है, मांसभक्षण करते हैं व शहद खाते हैं, अथवा अनेक जीवोंसे भरे हुए गूलर, बड, पीपल आदिके फलोंको भक्षण करते हैं ऐसे जीव चांडाल, भील आदिके हाथसे मारे जाते हैं और फिर परलोकमें जाकर नरकादिके दुःख भोगते हैं।

मरकर कुत्ता होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।
मृत्वा मनुष्यो भवतीह कौ श्वा ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस पापके करनेसे मरकर कुत्ता हो जाता है ?

उत्तर– ईर्ष्याभिमानं कुविरोधवैरं,
करोति यः कोपि मिथो विवादम् ।
रौद्रार्त्तचिन्तामटनं च कोप-
मित्यादिपापात्स भवेत्किल श्वा ।।७२।।

अर्थ—जो पुरुष सदाकाल ईर्ष्या व अभिमान करता रहता है, प्रत्येक के साथ वैर विरोध करता रहता है व परस्पर विवाद करता रहता है, आर्तध्यान, रौद्रध्यानका चिंतवन करता रहता है, व्यर्थ ही इधर-उधर फिरता रहता है अथवा और भी ऐसे ही ऐसे कार्य करता रहता है। ऐसा पुरुष मरकर परलोकमें कुत्ता ही होता है।

भावार्थ—कुत्तेकी पर्याय नीच पर्याय है। वह विष्ठा, माँस आदि निकृष्ट पदार्थोंका भक्षण करता रहता है, घर-घर फिरता है, कुत्तोंके साथ लड़ता रहता है। तथा जहाँ जाता है वहाँ ही दुतकारा जाता है। ऐसी यह कुत्तेकी नीच पर्याय नीच कार्य करनेसे ही प्राप्त होती है। एक दूसरेके साथ ईर्ष्या करना, अभिमान करना, कुत्तोंके ही समान आपसमें वैर विरोध करना, व परस्पर विवाद लड़ाई-झगड़ा करना, बिना कारणके क्रोध करना, बिना कारण इधर-उधर

घूमते रहना अथवा आर्तध्यान, रौद्रध्यानमें लीन रहना आदि कार्य भी नीच कार्य हैं तथा जो मनुष्य इन नीच कार्योंको करता रहता है वह मनुष्य मरकर कुत्ता ही होता है यही समझकर प्रत्येक मनुष्यको इन नीचकार्योंसे बचते रहना चाहिये।

मरकर बिल्ली होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
नरो विडालो भवतीह मृत्वा।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मर किस पापकार्यके करनेसे मरकर बिल्ली होता है?

उत्तर– दुग्धान्नपानाद्यभिलाषतो यो,
बन्धोर्धनादेरपहर्तुकामः।
दुर्ध्यानभाग् वा कुटिलः सदा स,
मृत्वा विडालो भवतीह पापी।।७३।।

अर्थ—जो पुरुष अन्न, पान, दूध, दहीकी अभिलाषासे अपने भाई बंधुओंके धनको हरण करना चाहता है जो सदा काल मायाचारी करता रहता है व अशुभ दुर्ध्यान करता रहता है वह मनुष्य मरकर भाग्यहीन बिलाव होता है।

भावार्थ—बिलाव होना कुत्तेसे भी नीच और बुरा है। बिलाव बहुत मायाचारी होता है, जितना खाता नहीं है उतना बिगाड़ देता है तथा सदाकाल जीवोंकी घातमें बैठा रहता है। इसी प्रकार जो मनुष्य सदा काल मायाचारी करनेमें लगा है, सदा काल दूसरोंका कार्य बिगाड़नेका प्रयत्न किया करता है, व दूसरोंके धनको हरण करनेकी इच्छा करता रहता है अथवा दूसरोंको हानि पहुँचानेका प्रयत्न किया करता है अथवा और भी ऐसे ही ऐसे काम किया करता है, निरन्तर मायाचारीका चिंतवन किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर विलावकी

पर्याय पाता है। तथा उस पर्यायमें अनेक जीवोंकी हिंसा कर चिरकालतक नरकादिक दुर्गतियोंके दुःख भोगता रहता है। यही समझकर मनुष्योंको सदा काल ऐसे पापके कार्योंसे बचते रहना चाहिये।

सिंहपर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा मनुष्यो भवतीह सिंहः।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य कैसे पाप करनेसे मरकर सिंह होता है?

उत्तर– दुर्ध्यानभाग् यः पशुहिंसकोऽस्ति,
क्रूरस्वभावो जनताविरोधी।
मांसप्रलोभी स्वपरात्मघाती,
मृत्वा स जीवो भवतीह सिंहः।।७४।।

अर्थ—जो मनुष्य सदाकाल दूसरोंको मारनेका चिंतवन करता है, अनेक पशुओंकी हिंसा करता रहता है, जिसका स्वभाव सदाकाल क्रूर रहता है, जो सदाकाल लोगोंका विरोध करता रहता है, जो माँसभक्षणका तीव्रलोलुपी होता है और अपने आत्माका व अन्य जीवोंका घात करने वाला है ऐसा मनुष्य मरकर अवश्य ही सिंह होता है।

भावार्थ—सिंहकी पर्याय महापाप करनेवाली पर्याय है। यही कारण है कि प्रायः सिंह मरकर नरक ही जाता है। ऐसी पापरूप सिंहकी पर्याय महापाप करनेसे ही प्राप्त होती है। सदाकाल दुर्ध्यान करते रहना, दूसरोंको मरने-मारनेका चिंतवन करते रहना, शिकार खेलकर अनेक पशु-पक्षियोंकी हिंसा करते रहना, व अन्य किसी प्रकारसे अनेक पशुओंकी हिंसा करते रहना, अपने स्वभावमें सदा क्रूरता रखना, साधारण लोगोंके साथ अधिक विरोध रखना, मांसभक्षण

व मद्यपान करनेमें अत्यंत लोलुपता रखना, आत्मघात करनेका प्रयत्न करना अथवा दूसरोंके घातका प्रयत्न करते रहना व अन्य ऐसे ही कार्य करना महापाप कहलाते हैं। इन्हीं पापोंके करनेसे यह मनुष्य मरकर सिंह होता है।

शृगाल पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।
ना जम्बुकः स्याद् भुवने ह्यभाग्यः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस किस पापकर्मके करनेसे मरकर इसी लोकमें शृगाल होता है ?

उत्तर- मिथ्याप्रलापी जनवञ्चको यो,
वेर्ष्याकरो वा कलहप्रवीणः।
दानादिधर्माद्धि सदैव दूरः,
स जम्बुकः स्यान्मनुजोऽपि मृत्वा ।।७५।।

अर्थ—जो मनुष्य सदाकाल मिथ्याभाषण करता रहता है, सदाकाल लोगोंको ठगता रहता है, सबके साथ ईर्ष्या, द्वेष करता रहता है, व सबके साथ कलह करता रहता है, और जो पात्रदान, जिनपूजा आदि धर्मकार्योंसे सदा दूर रहता है ऐसा मनुष्य मरकर शृगाल होता है।

भावार्थ—शृगाल गीदड़को कहते हैं। गीदड़ बहुत ही चालाक होता है और प्रायः ठग-ठग कर ही अपना पेट भरा करता है। जो मनुष्य मिथ्याभाषण करनेमें, लड़ाई-झगड़ा करने में चतुर होता है व अनेक जीवोंके साथ ईर्ष्या-द्वेष करता रहता है, जो कभी दान नहीं देता, कभी जिनपूजन नहीं करता, कभी व्रत-उपवास नहीं करता, तथा और भी शुभकार्योंसे दूर रहता है ऐसा मनुष्य मरकर गीदड़ होता है।

यह मनुष्य शील और व्रतोंको भंग करनेवाला किस कारणसे होता है यही बतलाते हैं-

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।
व्रतं गृहीत्वा त्यजतीह मूढः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पापकर्मके करनेसे व्रतोंको ग्रहण करके भी छोड़ देता है?

उत्तर– यः कारयित्वा व्रतशीलभङ्गं,
तुष्येत्परेषां प्रविधाय निन्दाम्।
साधोश्चरित्रे ह्ययुनक् प्रदोषं,
स स्यादमुत्रे व्रतीशीलभङ्गी।।७६।।

अर्थ—जो मनुष्य दूसरोंके व्रत व शीलको भंग कराकर प्रसन्न होता है, व दूसरोंकी निंदा करता है अथवा जो साधुओंके चारित्रमें दोष लगाता है, ऐसा मनुष्य मरकर परलोकमें अपने व्रत शीलोको भंग करनेवाला होता होता है।

भावार्थ—अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग (परिग्रह परिमाण) ये पाँच व्रत कहलाते हैं तथा गुणव्रत शिक्षाव्रतोंको शील कहते हैं। ये व्रत और शील दोनों ही आत्माका कल्याण करनेवाले और परंपरासे मोक्षके कारण है। इसलिये जो मनुष्य इन व्रत और शीलोंको ग्रहण करके फिर छोड़ देता है अथवा इनका भंग करता रहता है अथवा इनमें अधिक अतिचार लगाता रहता है वह मनुष्य बहुत अधिक पापी समझना चाहिये। कल्याण करनेवाले रत्नको पाकर कोई भी नहीं छोड़ता। इसी प्रकार इन व्रतोंको भी लेकर कभी नहीं छोड़ना चाहिये। फिर भी जो मनुष्य इनको धारण कर छोड़ देता है उसके समान कोई भाग्यहीन पापी नहीं है। ऐसा भाग्यहीन पापी मनुष्य पहले जन्ममें दूसरोंके व्रत-शील भंग करानेसे होता है, दूसरोंकी निंदा करनेसे होता है अथवा मुनियोंके पवित्रचारित्रमें दोष लगानेसे होता है। अथवा किसी धर्मात्माको मिथ्या कलंक लगानेसे होता है। यही समझकर भव्य जीवोंको इन पापोंसे सदा बचते रहना चाहिये।

यह मनुष्य किस पापके करनेसे मरकर गायकी पर्याय पाता है यही कहते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।
मृत्वा मनुष्यो भवतीह धेनुः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापके करनेसे यह मनुष्य मरकर गायका शरीर धारण करता है?

उत्तर- आचारहीनश्च विचारशून्यो,
ह्यभक्ष्यभक्षी भुवि केवलं यः ।
पानान्नलोभी खलु मन्दबुद्धिः,
स स्यादमुत्रे मनुजोऽपि धेनुः ।।७७।।

अर्थ—जो मनुष्य सदाचारसे रहित है, विचारशून्य है, अभक्ष्य भक्षण करनेवाला है, अन्नपानका अत्यंत लोलुपी है, अथवा जो मंदबुद्धि है ऐस मनुष्य मरकर परलोकमें गायकी पर्याय प्राप्त करता है।

भावार्थ—गाय बहुत भोली-भाली होती है। इसलिए जो पुरुष इस जन्ममें आचार-विचार न करते हुए चाहे जहाँ जिसके घर, चाहे जिसके हाथका खा लेते हैं जो खाने-पीने वँ रहन-सहन में विचार नहीं करते, न भक्ष्य-अभक्ष्यका विचार करते हैं, तथा जो अन्नपानके तीव्रलोलुपी बने रहते हैं और जिनकी बुद्धि अत्यंत मंद होती है ऐसे मनुष्य मरकर गायका जन्म लेते हैं।

भैंस व भैंसाकी पर्याय किस कारणसे प्राप्त होती है यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।
मृत्वा मनुष्यो महिषो भवेत्को ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मरकर किस कारणसे भैंस वा भैंसा होता है?

उत्तर— धर्मोपदेशं सुखदं न श्रुत्वा,
गृह्णाति यः केवलमेव दोषम्।
वाऽशान्तिमेकां विषमां करोति,
स स्याद्धि मृत्वा महिषो ह्यभाग्यः ।।७८।।

अर्थ—जो पुरुष धर्मके उपदेशको कभी नहीं सुनता तथा केवल दोषको ही ग्रहण किया करता है तथा इस संसारमें जो केवल एक अशांति को ही उत्पन्न किया करता है ऐस पुरुष मरकर भैंसा होता है।

भावार्थ—भैंसा बहुत हठीला, उपद्रव करनेवाला और कभी न शांत रहनेवाला पशु है। इसलिये जो मनुष्य सदा अशांति फैलाया करता है कभी सामाजिक झगड़े वा कभी धार्मिक झगड़े उत्पन्न किया करता है, जो पुरुष कभी देशके झगड़े उत्पन्न करता है, कभी राज्यके झगड़े उत्पन्न करता है, कभी कुटुंबके झगड़े व कभी भाइयोंके झगड़े उत्पन्न किया करता है अथवा जो धर्मकार्योंकी ओर कभी ध्यान नहीं देता, जो सदा दूसरोंके दोषोंको ही ग्रहण किया करता है। ऐसा पुरुष मरकर भैंसा ही होता है जो इस पर्यायमें आकर भी उपद्रव किया करता है।

बकरा होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा मनुष्योऽपि भवेदजः कौ।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मरकर किस कारणसे बकरा होता है?

उत्तर— वृथैव गच्छेद्धि वदेद् वसेद् वा,
करोत्यकार्यं नयनं निमील्य।
निजप्रशंसां च परप्रणिन्दां,
कृत्वेति तुष्येत्स भवेदजः कौ।।७९।।

अर्थ—जो मनुष्य बिना प्रयोजनके व्यर्थ ही इधर-उधर घूमता

फिरता है, व्यर्थ ही बकवाद करता फिरता है और व्यर्थ ही इधर-उधर रहता फिरता है जो अपने नेत्रोंको बंदकर निंदनीय कार्य किया करता है अथवा अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा करके बहुत प्रसन्न होता है ऐसा मनुष्य मरकर इसी पृथ्वीपर बकरा होता है।

भावार्थ—बकराकी पर्याय नीच पर्याय है उसको सदाकाल मरनेका भय लगा रहता है तथा भूख-प्यासके महादुःख भोगा करता है। ऐसी नीच पर्याय नीच और व्यर्थके काम करनेसे ही होती है। जो मनुष्य बिना कामके बाजारमें व गलियोंमें इधर-उधर घूमा करता है, अथवा जो बिना प्रयोजनके अनेक प्रकारकी बकवाद किया करता है और जो चाहे जहाँ रह जाता है, जो किसी प्रकारका विचार किये बिना बुरेसे बुरा काम कर डालता है, जो अपनी प्रशंसासे प्रसन्न होता है तथा दूसरे की निंदा सुनकर व स्वयं दूसरोंकी निंदा करके प्रसन्न होता है अथवा जो पुरुष अन्य ऐसे ही नीच कार्योंको करता रहता है वह पुरुष मरकर बकरा होता है।

कौआकी पर्याय प्राप्त करनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा मनुष्यो भवतीह काकः।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मरकर किस पापकार्यके करनेसे कौआ होता है?

उत्तर— यस्तु ह्यभक्ष्यं मलिनं च निन्द्यं,
यश्नाति मांसं कटुकं ब्रवीति।
दुःखप्रदं कर्कशमेव वाक्यं,
मृत्वा स मर्त्यो भवतीह काकः।।८०।।

अर्थ—जो मनुष्य अभक्ष्य, मलिन और निंदनीय पदार्थोंका

भक्षण करता है और जो दुःख देनेवाले कठोर और कड़वे वाक्य ही बोला करता है ऐसा मनुष्य मरकर कौआ होता है।

भावार्थ—कौआ अत्यंत निंदनीय पक्षी है वह अभक्ष्य भक्षण करता रहता है। मलिन निंद्य पदार्थोंका भक्षण करता है, माँस, विष्ठा आदिका भक्षण करता है और सदाकाल कठोर वचन बोला करता है। यहाँतक कि इस संसारमें उसका बोलना अपशुकन माना जाता है। ऐसे निंद्य पक्षीकी पर्याय निंद्य काम करनेसे ही प्राप्त होती है। जो मनुष्य कौओं के समान अभक्ष्य भक्षण किया करते हैं, मलिन और निन्दनीय पदार्थों का भक्षण करते हैं, मद्य-मांस मधुका सेवन व उदंबर फलोंका भक्षण किया करते है अथवा जो कौओंके समान कठोर दुर्वचन, निंदनीय वचन कहा करते हैं व दूसरोंकी निंदा किया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर इन्हीं पापोंके कारण कौआकी पर्याय प्राप्त करते हैं।

दुष्ट होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा मनुष्यो भवतीह दुष्टः।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि मनुष्य किस किस पापके करनेसे मरकर दुष्ट होता है?

उत्तर– दुष्टस्य येन व्यसनस्थजन्तोः,
साधोः समं वा विषमं विवादः।
मिथ्यात्वमूढस्य कृता प्रशंसा,
मृत्वा स मर्त्यो भवतीह दुष्टः।।८१।।

अर्थ—जो मनुष्य इस जन्ममें किसी दुष्टके साथ वादविवाद करता है व किसी जुआरी व चोर आदि व्यसनियोंके साथ वाद-विवाद करता रहता है। अथवा जो साधु सज्जनोंके साथ विवाद करता रहता

है। अथवा जो मनुष्य मिथ्यादृष्टि व अत्यंत मूर्ख मनुष्योंकी प्रशंसा किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर दुष्ट मनुष्य होता है।

भावार्थ—दुष्ट मनुष्य सबके साथ दुष्टता किया करता है, तथा विशेषत: सज्जनोंके साथ व वीतराग निर्ग्रंथ साधुओंके साथ दुष्टता किया करता है। ऐसा दुष्ट मनुष्य दुष्ट व नीच काम करनेसे ही उत्पन्न होता है। जो मनुष्य दुष्ट मनुष्योंमें रहता है, दुष्ट मनुष्योंकी प्रशंसा किया करता है, दुष्ट मनुष्योंसे दुष्टताके काम सीखता है, व मिथ्यादृष्टियोंके साथ रहकर मिथ्यात्वकी वृद्धि करता है, वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी निंदा करता है उनके साथ वाद-विवाद करना चाहता है व उनका तिरस्कार करता है, अथवा जो अन्य ऐसे ही दुष्टताके कार्य किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर फिर भी महादुष्ट होता है और फिर अनेक दुष्टताके काम कर नरक आदि दुर्गतियोंके महादु:ख भोगता रहता है। यही समझ कर मनुष्योंको कभी दुष्टता नहीं करनी चाहिए। सज्जनोंके ही साथ अपनी संगति रखनी चाहिए और सदाकाल धर्मकार्यमें लगे रहना चाहिये।

व्यभिचारी होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।
मृत्वा नरः स्याद्व्यभिचारसेवी ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पापके करनेसे मरकर व्यभिचारी मनुष्य होता है?

उत्तर– वेश्यादिकानां च कुशीलजन्तोः,
सङ्गः कृतो दुष्टजनादिकानाम्।
क्रीडा समं येन नपुंसकेन,
मृत्वा नरः स्याद्व्यभिचारभाक् सः ।।८२।।

अर्थ—जो मनुष्य इस जन्ममें वेश्याओंकी संगति करते हैं, अन्य

व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी संगति करते हैं व दुष्ट लोगोंकी संगति करते हैं, अथवा जो नपुंसकोंके साथ क्रीड़ा करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर व्यभिचारी होते हैं।

भावार्थ—व्यभिचार सेवन करना महापाप हैं, जो पुरुष व्यभिचार सेवन करता है वा व्यभिचार सेवन करनेकी इच्छा करता है वह मनुष्य भी रावणके समान अत्यंत निंदित होकर नरकादिक दुर्गतियोंके दुःख भोगता है। रावणने व्यभिचार सेवन करनेकी इच्छामात्र ही की थी उसीके फलसे आजतक उसकी निंदा हो रही है तथा वह रावणका जीव आजतक नरकमें पड़ा दुःख भोग रहा है। इसलिये व्यभिचार सेवन करनेकी कभी इच्छा भी नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य व्यभिचारी जीवोंके साथ उठता-बैठता है वेश्याओंकी संगतिमें रहता है वा अन्य व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी संगतिमें रहता है, अन्य चोर- जुआरी आदि दुष्ट लोगोंकी संगतिमें रहता है व अनंगक्रीडा करता है, हिजडोंकी संगतिमें रहता है व उनके साथ क्रीड़ा करता है ऐसा मनुष्य इस लोकमें भी व्यभिचारी बन जाता है और मरकर भी तीव्र व्यभिचारी होता है। जहाँसे मरकर फिर वह नरकादिक दुर्गतियोंके दुःख भोगता है। इसलिये भव्य जीवोंको कभी भी दुष्टों संगतिमें नहीं बैठना चाहिये।

पागल होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वेति मर्त्यो ग्रहिलो भवेत्को।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस किस पाप-कार्यके करनेसे यह मनुष्य मरकर अगले जन्में पागल हो जाता है?

उत्तर— मंत्रैश्च तंत्रैर्ग्रहिलोन्यजीवः,
कृतश्च, कृत्वा ग्रहिलापमानम्।
वारोप्य तस्योपरि रोषदोषं,
तुष्येत्स मृत्वा ग्रहिलो नरः स्यात्।।८३।।

अर्थ—जो मनुष्य किसी मंत्रसे व किसी तंत्रसे अन्य जीव को पागल बना देता है, अथवा जो पागल जीवोंका अपमान करता है अथवा जो उस पागलके ऊपर क्रोधित होनेका दोष आरोपण कर संतुष्ट होता है ऐसा मनुष्य मरकर अगले जन्ममें पागल होता है।

भावार्थ—पागल मनुष्योंका जीवन भी व्यर्थ है। वह न तो कुछ धर्मकर्म कर सकता है और न घर गृहस्थीका काम कर सकता है। पागल मनुष्य केवल इधर-उधर घूमता रहता है। उसे न खानेका ध्यान है, न पीनेका ध्यान है और न पहननेका ध्यान है। यदि नंगा है तो नंगा ही घूमता रहता है। ऐसा पागल मनुष्य पापकर्मके उदयसे ही होता है। जो मनुष्य किसी मंत्र तंत्र से किसी मनुष्यको पागल बना देता है व किसी पागलका अपमान करता है अथवा जो ऐसी ही ऐसी अन्य किसी प्रकारकी मायाचारी करता है वह मनुष्य मरकर अगले जन्ममें अवश्य ही पागल होता है।

बन्दीगृहमें पड़नेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।
जीवाः स्वयं बन्दिगृहे पतन्ति ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि ये जीव किस किस पापकार्यके करनेसे अपने आप बंदीगृहमें जा पड़ते हैं?

उत्तर– कारागृहे यैरपराधमुक्ता,
जीवा बलाद् बन्दिगृहे बनादौ।
उक्त्वानृतं वा विपदेऽहि बद्धाः,
स्वयं व्यथादौ खलु ते पतन्ति ।।८४।।

अर्थ—जिन मनुष्योंने अपराधरहित जीवों को भी आपत्तिमें डालनेके लिये झूठ बोलकर तथा बलपूर्वक बंदीगृहमें डाल दिया है अथवा किसी वनमें ले जाकर बंदीगृहमें डाल दिया है ऐसे जीव अगले

जन्ममें जाकर अनेक विपत्तियोंको सहन करने के लिये अपने आप बंदीगृहमें जा पहुँचते हैं।

भावार्थ—निरपराध जीवोंको दुःख देना व उनको झूठ बोलकर व झूठा दोष लगाकर बंदीगृहमें डाल देना, मिथ्या कलंक लगाकर देश निकाला दे देना, किसी निर्जन वनमें छोड़ देना महापाप कहलाता है, क्योंकि ऐसा करनेसे उस जीवको महादुःख होता है। इसलिये जो जीव ऐसा पाप करते हैं उन मनुष्योंको अगले जन्ममें किसी न किसी बहानेसे बंदीगृहमें अवश्य जाना पडता है। वहाँपर उन्हें अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं तथा वहाँसे निकल कर अन्य दुर्गतियोंके दुःख भोगने पड़ते हैं। यही समझकर निरपराध जीवोंको कभी सताना नहीं चाहिये और न उनको कभी मारना चाहिये।

उत्पन्न होते ही मरजानेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।
स्वजन्मकाले म्रियते हि जीवः ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस किस पापकार्यके करनेसे जन्म लेते समय ही मर जाता है ?

उत्तर– यैर्जन्मकाले हि परे च जीवाः,
सुमारिता वा खलु छेदिताश्च ।
कृतो वियोगो जनबान्धवानां,
ते जन्मकाले मनुजा म्रियन्ते ।।८५।।

अर्थ—जो मनुष्य अन्य जीवोंको उत्पन्न होते ही मार देते है व छेदन-भेदन कर देते हैं अथवा किसी भी जीवको उसके माता पिता से व भाई बंधुओंसे अलग कर देते है, ऐसे जीव अगले जन्ममें जाकर जन्म होते ही मर जाते हैं।

भावार्थ—जन्म होते ही किसी जीवको मार देना बहुत बड़ा पाप

हैं, क्योंकि उस समय उसकी अवस्था अत्यंत शोचनीय, बलहीन और परवश होती है। उस समय वह कुछ नहीं कर सकता यहाँतक कि रो भी नहीं सकता। ऐसी अवस्थामें किसी भी दूसरे के बच्चेको मार देनेके समान अन्य कोई पाप नहीं हैं मार देना व छेदन भेदन कर देना एक ही बात है। इसी प्रकार उत्पन्न होते ही किसी बालकको उसके माता-पितासे अलग कर देना व भाई-बंधुओंसे अलग कर देना भी बड़ा पाप है, क्योंकि जिन लोगोंसे वह बालक अलग कर दिया जाता है उनको महादु:ख होता है। इसी प्रकार किसी बालकके मार देनेपर भी उसके माता-पिता व कुटुंबियोंको बहुत दु:ख होता है। इसी महापापके कारण वह मनुष्य मरकर उत्पन्न होते ही मार दिया जाता है अथवा स्वयं मरजाता है। यही समझकर भव्यजीवोंको कभी किसी बालकको न मारना चाहिए और न उसके मातापितासे उसको अलग करना चाहिये।

निंदनीय होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।
भवन्ति जीवा भुवि निन्दनीयः॥

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पापके करनेसे इस संसारमें निंदनीय अर्थात् निंदा करने योग्य उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर– धर्मस्य देवस्य गुरोश्च निन्दां,
वाऽधार्मिकाणां च कृतः प्रसंगः।
यैर्भक्षितं चान्यधनं ह्यभक्ष्यं,
भवन्ति को ते कस्माद्, ॥८६॥

अर्थ—जो मनुष्य देव, धर्म व गुरुकी निंदा करते हैं, अथवा जो अधार्मिक पुरुषोंकी संगति करते हैं, अथवा जो दूसरोंका धन भक्षण किया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर परलोकमें समस्त जीवोंके द्वारा निंदनीय होते हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य इस संसारमें निंदनीय होता है उसे सब लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। कोई उसका विश्वास नहीं करता और सब लोग उसका अपमान करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसा निंदनीय मनुष्य होना महापापका फल है। ऐसा महापाप देव, शास्त्र, गुरुकी निंदा करनेसे होता है। देव, शास्त्र, गुरु परम वीतराग हैं, सर्वथा वीतरागताका उपदेश देते है, कभी किसीसे कुछ चाहते नहीं, सदाकाल अपने आत्माके कल्याणमें व अन्य भव्यजीवोंके कल्याण करनेमें लगे रहते हैं। ऐसे परमपूज्य देव, शास्त्र, गुरुका तिरस्कार करना महापाप का कारण है और ऐसे ही पाप करनेसे यह जीव निंदनीय वा घृणास्पद होता है। इसके सिवाय अधर्मात्मा व पापी जीवोंकी संगति करनेसे भी अनेक प्रकारके पाप उत्पन्न होते रहते हैं। प्राय: धर्महीन मनुष्योंकी संगतिसे ही देव, शास्त्र, गुरुकी निंदा की जाती है। अथवा ऐसे पापियोंकी संगतिसे ही अभक्ष्य भक्षण और पर धन हरण आदि महापाप किए जाते हैं तथा इन्हीं पापोंके कारण यह जीव परलोकमें जाकर अत्यंत निंदनीय होता है। इसलिए भव्यजीवोंको पापियोंकी संगति कभी नहीं करनी चाहिए।

अपमृत्यु होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
प्राप्नोति जीवः सहसापमृत्युम्॥

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस किस पापके करनेसे इस जीवको अकस्मात् अपमृत्यु हो जाती है?

उत्तर– दत्वान्यजीवाय विषं च तुष्येत्,
विषाद्विलोक्यैव परस्य मृत्युम्।
प्रक्षिप्य वह्नौ ह्यसिना च हत्वा,
तस्यापमृत्युः सहसा भवेत्कौ॥८७॥

अर्थ—जो पुरुष किसी जीवको विष देकर संतुष्ट होता है,

अथवा विषके देनेसे होनेवाली किसी की मृत्युको देखकर संतुष्ट होता है, अथवा जो किसी जीवको अग्निमें फेंककर व किसीको तलवारसे मारकर प्रसन्न होता है ऐसा मनुष्य अकस्मात् होनेवाली अपमृत्युसे मरता है।

भावार्थ– किसीको विष देकर मारना व अग्निमें फेंककर मार देना अथवा तलवार बंदूकसे मार देना या अन्य किसी प्रकारसे जीवोंको मार देना महापाप माना जाता है। ऐसा महापाप करनेवाला मनुष्य अपमृत्युसे मरता है और मरकर नरकादिक दुर्गतियोंमें पहुँच कर चिरकालतक दुःख भोगता रहता है। अपमृत्यु भी पापकर्मके उदयसे ही होती है। तथा पापका फल देनेके लिये ही होती है, यही समझ कर भव्य जीवोंकी सदाकाल पापसे डरते रहना चाहिये।

धन, घर आदिके जल जानेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
प्रदह्यते नु ह्यनलैर्गृहादिः।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापकार्यके करनेसे इस जीवका घर-धन आदि जल जाता है?

उत्तर– विध्वंसने चान्यधनादिकानां,
येन प्रयत्नो दहने कृतश्च।
दग्धं परेषां सधनं गृहादिः,
प्रदह्यते तस्य धनं गृहादिः ।।८८।।

अर्थ—जो मनुष्य दूसरोंके धन-धान्यादिकोंके नाश करनेका प्रयत्न करते रहते हैं, व दूसरोंके घर-धन आदिके जलानेका प्रयत्न किया करते हैं अथवा जिन्होंने दूसरोंका धन व घर जला दिया है ऐसे मनुष्योंका धन व घर अग्निसे अवश्य जल जाता है।

भावार्थ– दूसरोंके घरमें अग्नि लगा देना, धन नष्ट कर देना.

रहने का स्थान नष्ट कर देना, उनकी जीविका नष्ट कर देना अथवा और भी ऐसे ही पाप करना महापापका कारण है। ऐसे पापोंके करनेसे पापकर्मोंका बंध होता है और उस कर्मके उदयसे उसका घर-धन आदि सब जल जाता है या नष्ट हो जाता है। इसलिये भव्य जीवोंको कभी ऐसा चिंतवन नहीं करना चाहिये।

स्त्री-पुत्रादिक के वियोगका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
भार्यादिबन्धोश्च भवेद् वियोगः।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि स्त्री-पुत्र, भाई-बंधु आदि इष्ट जनोंका वियोग किस-किस पापकार्यके करनेसे होता है?

उत्तर— यैश्चान्यभार्यादिवियोगकार्ये,
दत्तानुमोदश्च कृतः प्रयत्नः।
स्वकार्यसिध्यै हि परापमान-
स्तेषां वियोगः स्वजनैः समं स्यात्।।८९।।

अर्थ—जिन जीवोंने पहले जन्ममें अन्य जीवोंकी स्त्री, पुत्र, भाई आदि कुटुंबी लोगोंके वियोग करने में प्रयत्न किया है, अनुमोदना की है अथवा अपने कार्यकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अपमान किया है ऐसे लोगोंको अगले जन्ममें जाकर अपने कुटुंबी लोगोंका वियोग सहन करना ही पड़ता है।

भावार्थ—किसी की स्त्री का वियोग करना किसीके पुत्रका वियोग करना व किसी के भाई का वियोग करना पापका ही कारण है। तथा जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है। यही कारण है कि जो दूसरोंके बच्चोंका व स्त्री-पुत्रादिकोंका वियोग करता है परलोकमें जाकर उसके पुत्र, स्त्री आदिका वियोग अवश्य होता है। यही समझ कर किसीके कुटुंबका वियोग कभी नहीं करना चाहिये।

धन नाश होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।
धनस्य नाशो भवतीह नृणाम् ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि मनुष्योंके धनका नाश किस पापकार्यके करनेसे होता है ?

उत्तर— कृतो धनादेर्हरणे प्रयत्नो,
द्वारेण राज्ञः किल कारितो यैः ।
चौरादिद्वारेण परस्य हानिः,
धनादिनाशो भवतीह तेषाम् ।।९०।।

अर्थ—जो पुरुष दूसरोंके धनको हरण करनेका प्रयत्न करता है है अथवा जो राजा आदिके द्वारा दूसरोंके धनको हरण करनेका प्रयत्न कराता है अथवा जो चोर, जुआरी आदिकी सहायतासे दूसरोंको हानि पहुँचाता है उस पुरुषके धन आदिका नाश अवश्य होता है।

भावार्थ—अनेक लोग ऐसे होते हैं जो दूसरोंकी हानि पहुँचानेमें अत्यंत प्रसन्न होते हैं। यदि वे स्वयं हानि नहीं पहुँचा सकते, तो फिर किसी चोरकी सहायतासे से हानि पहुँचा देते हैं अर्थात् चोरी करवा देते हैं, लुटवा देते हैं अथवा राजा व राजकर्मचारियोंके द्वारा हानि पहुँचा देते हैं, परस्पर लड़ाकर हानि पहुँचा देते हैं अथवा अन्य कितने ही कारणोंसे हानि पहुँचा देते हैं ऐसे जीवोंके परिणाम सदा अशुभ रहते हैं और उन परिणामोंके निमित्तसे बँधे हुए कर्मोंके उदयसे किसी न किसी प्रकारसे उनके धनका भी सर्वथा नाश हो जाता है। चाहे वह धनका नाश चोरीसे ही व राज्यकी ओरसे हो व व्यापारके घाटेसे हो या अन्य आकस्मिक कारणोंसे हो, परंतु अवश्य हो जाता है। यही समझकर बुद्धिमान जीवोंको दूसरोंकी हानि करनेका चिंतवन कभी नहीं करना चाहिये।

कंठमाला होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
ग्रन्थिश्च कण्ठे भवतीह जन्तोः।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पापकर्मके करनेसे इस जीवके गलेमें गाँठे व कंठमाला होजाती है?

उत्तर— पीडान्यकण्ठे खलु येन दत्ता,
वा दापिता द्वेषवशाद्धि निन्दा।
कौ ग्रन्थिजीवस्य कृता कुचेष्टा,
ग्रन्थिर्हि कण्ठे भवतीह तस्य।।९१।।

अर्थ—जो मनुष्य अन्य जीवोंके कंठमें दुःख पहुँचाया करते हैं, अथवा किसी द्वेषके कारण दूसरोंके द्वारा पीड़ा पहुँचाया करते हैं अथवा किसीकी निंदा किया करते हैं, अथवा किसी जीवके गलेमें होनेवाली गाँठकी कुचेष्टा किया करते हैं ऐसे जीवोंके कंठमें अवश्य ही गाँठ उत्पन्न हो जाती है।

भावार्थ—कंठमें गाँठका उत्पन्न हो जाना कंठमाला कहलाती है। यह कंठमाला कष्टसाध्य वा असाध्य रोग कहलाता है। तथा वर्षों तक दुःख देता रहता है, यह रोग पापकर्मके उदयसे ही होता है। वह पापकर्म दूसरों को दुःख देनेसे ही बँधता है जो लोग दूसरोंके कंठमें छेदन-भेदन कर दुःख पहुँचाया करते हैं, जो स्वयं तो दुःख नहीं पहुँचाते वे दूसरोंके द्वारा पहुँचाया करते हैं व झूठी निंदा किया करते हैं, अथवा जिस किसी जीवके कंठमें गाँठ उठी है, उसकी हँसी किया करते हैं या दुःख पहुँचाने की नियतसे उसी गाँठको छिन्न-भिन्न किया करते हैं अथवा अन्य कितने ही उपायोंसे दुःख पहुँचाने की चेष्टा किया करते हैं ऐसे पुरुषोंके गले में ही कंठमाला होती है और उससे वे महा दुःखी हुआ करते हैं। यही समझकर किसी रोगीको कभी दुःख नहीं देना चाहिये। रोगीकी सदा सहायता करते रहना चाहिये।

ऊँटकी पर्याय प्राप्त करनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मर्त्यः किलोष्ट्रो भवतीह मृत्वा।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपा कर यह बतलाइये कि किस-किस पापके करनेसे यह मनुष्य मरकर ऊँट होता है?

उत्तर— नमेन्न देवं न गुरुं न शास्त्रं,
वाऽधो महीं यो न विलोक्य गच्छेत्।
उदण्डवृत्तिश्च धनेन मत्तो,
मृत्वा किलौष्ट्रः स भवेदभाग्यः।।९२।।

अर्थ — जो मनुष्य अरहंतदेवको और वीतराग निर्ग्रन्थगुरुको नमस्कार नहीं करता है अथवा जो ऊँची-नीची भूमिको देखकर नहीं चलता तथा सदा काल उद्दंडवृत्तिको धारण करता रहता है और धनके मदसे उन्मत्त रहता है ऐसा मनुष्य मरकर परलोकमें भाग्यहीन ऊँट होता है।

भावार्थ—ऊँटकी पर्याय एक निकृष्ट पर्याय है। उसकी चाल सवारी आदि सब निकृष्ट कहलाती है। ऐसी निकृष्ट और उद्धत पशुकी पर्याय निकृष्ट और उद्धत काम करनेसे ही प्राप्त होती है। जो मनुष्य मदोन्मत्त व उद्धत होकर, देव, शास्त्र, गुरु आदि किसीको नमस्कार नहीं करता, अथवा जो ऊँची-नीची भूमिको देखकर नहीं चलता, अपनी उन्मत्तताके कारण बिना देखे चलता है अथवा जो सदा काल उद्दंडवृत्तिको धारण करता रहता है और अपने धनके मदसे उन्मत्त होकर किसीको कुछ नहीं गिनता ऐसा उद्धत और उन्मत्त मनुष्य मरकर ऊँट ही होता है।

हाथीकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
जीवो गजः को भवतीह मृत्वा।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पापके करनेसे मरकर हाथीकी पर्यायमें पहुँचता है?

उत्तर— व्रतोपवासं न तपो जपं वा,
सद्धर्मदेवादिगुरोर्न सेवाम्।
कृत्वाऽकरोत्केवलदेहपुष्टं,
मृत्वा मनुष्योऽपि गजो भवेत्सः ।।९३।।

अर्थ—जो मनुष्य न तो कभी व्रत उपवास तपश्चरण करता है, करता है, न जप करता है और न देव, धर्म, गुरुकी सेवा करता है। इस प्रकार धार्मिक कार्योंको न करता हुआ जो केवल शरीरको पुष्ट किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर हाथी ही होता है।

भावार्थ—जिस प्रकार हाथीकी पर्याय केवल शोभाके लिए है किसी कामके लिए नहीं है तथा उसके खानेका खर्च भी बहुत अधिक है। ऐसी पर्याय उन्हीं जीवोंको प्राप्त होती है जो मनुष्य पर्याय पाकर भी व्रत, उपवास, जप, तप आदि कुछ नहीं करते है, न कभी श्रेष्ठधर्मको धारण करते हैं और न कभी देव, शास्त्र, गुरुकी सेवा करते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य एक भी धार्मिकक्रियाको न करते हुए केवल शरीरको पुष्ट करनेके लिए भोजन किया करते हैं अथवा शरीर के ही पालन पोषण करनेमें रात-दिन लगे रहते हैं ऐसे पुरुष मरकर हाथी ही होते हैं। अतएव मनुष्य जन्म पाकरके व्रत, उपवास, जप, तप आदि धार्मिक कार्योंका करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक मनुष्यको अवश्य करना चाहिये।

जोंककी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा मनुष्यश्च भवेद् जलौकः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पापके करनेसे जोंककी पर्याय प्राप्त करता है?

उत्तर— सुखप्रदान् दुःखहरान् परेषां,
त्यक्त्वा गुणान् ये भवदान् प्रदोषान् ।
गृह्णन्ति कुर्वन्ति सदापमानं,
मृत्वा जलौका भुवि ते भवन्ति ।।९४।।

अर्थ—जो मनुष्य प्रत्येक जीवको सुख देनेवाले तथा दुःखोंको दूर करनेवाले दूसरोंके श्रेष्ठ गुणों को छोड़कर केवल जन्म-मरणरूप संसारको बढ़ाने वाले दोषोंको ही ग्रहण किया करते हैं तथा जो सदाकाल श्रेष्ठ गुणोंका व सज्जनोंका अपमान किया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर इस संसारमें जोंककी पर्याय प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—जोंककी पर्याय अत्यंत निंदनीय पर्याय है यदि जोंकको दूध देनेवाले किसी थन पर भी लगा दी जाय तो भी वह रुधिर ग्रहण किया करती है। इसी प्रकार जो मनुष्य उत्तमसे उत्तम गुणवानोंके समीप रहते हुए भी उनके उत्तम गुणोंको ग्रहण नहीं करतेकिन्तु उनके दोषोंको ही ग्रहण किया करते हैं अथवा जो उत्तम गुणियोंमें भी मिथ्या दोष लगा देते हैं ऐसे मनुष्य मरकर जोंक ही होते हैं। जो इस पर्यायमें दूध जैसे उत्तम पदार्थको छोड़कर रुधिर ही ग्रहण करते हैं।

उलूक वा उल्लूकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।
मृत्वा मनुष्यो भुवि कौशिकः स्यात् ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पापके करनेसे मरकर उल्लूकी पर्याय प्राप्त करता है।

उत्तर— कुर्वन्ति देवस्य न दर्शनं ये,
पिबन्ति साधोर्वचनामृतं न ।
दूरेऽतिदूरे गुरुतो भ्रमन्ति,
भवन्ति मृत्वा खलु कौशिकास्ते ।।९५।।

अर्थ—जो मनुष्य न तो कभी भगवान् अरहंत देवके दर्शन करता है न कभी वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंके वचन रूपी अमृतका पान करता है तथा जो वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंसे दूर-दूर रहते हैं उनके समीप तक नहीं जाते ऐसे मनुष्य मरकर उल्लूकी पर्याय प्राप्त करते हैं।

भावार्थ — जिसप्रकार उल्लू दिनमें किसीके दर्शन नहीं कर सकता, आँखें बंद कर छिप जाता है उसी प्रकार जो मनुष्य पर्याय प्राप्त करके भी भगवान् अरहंत देवके और वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंके दर्शन कभी नहीं करता, और न उन गुरुओंके मोक्षमार्गको निरूपण करनेवाले अमृतमय वचनों को सुनता है तथा तीव्रमिथ्यात्वके कारण जो गुरुओंके समीप तक नहीं जाता है ऐसा मनुष्य मरकर उल्लूकी पर्याय प्राप्त करता है।

डांस मच्छरोंकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा मनुष्याश्च भवन्ति दंशाः।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पापके करनेसे यह मनुष्य मरकर डांस व मच्छरोंकी पर्याय प्राप्त करता है।

उत्तर– गुरोः पुरो ये स्तवनं नतिं वा,
कुर्वन्ति पश्चात् खलु तत्प्रणिन्दाम्।
सदापमानं च पुरः परेषां,
मृत्वा नरास्ते च भवन्ति दंशाः।।९६।।

अर्थ — जो मनुष्य वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओं के सामने उनकी स्तुति करते हैं व उनको नमस्कार करते हैं किन्तु पीछे उनकी निंदा किया करते हैं तथा अन्य लोगोंके सामने उन्हीं मुनियोंका अपमान किया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर डांस व मच्छरकी ही पर्याय प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—मच्छर जिस प्रकार कानपर आकर गीत सुनाया करता है और फिर समय पाकर पीछेसे काट लिया करता है उसी प्रकार जो मनुष्य वीतराग मुनियोंके सामने तो उनकी स्तुति किया करते हैं व उनको नमस्कार भी करते हैं परंतु उनके पीछे उनकी निंदा किया करते हैं व उनमें मिथ्या कलंक लगाया करते हैं अथवा उनके लिए अन्य कितने ही प्रकारके दुर्वचन कहा करते हैं। इसी प्रकारके जो मनुष्य प्रायः सबका अपमान किया करते हैं, सबको हानि पहुँचाया करते हैं व छिप-छिपकर हानि पहुँचाते हैं ऐसे मनुष्य मरकर डांस मच्छर ही होते हैं।

सर्पकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।
मृत्वा मनुष्याश्च भवन्ति सर्पाः ।।

अर्थ—हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पापके करनेसे सर्पकी पर्याय प्राप्त करते हैं?

उत्तर– धर्मस्वरूपं च गुरूपदेशं,
श्रुत्वापि बुद्ध्वा सकलं पदार्थम्।
वैरं न मिथ्यात्वविषं त्यजन्ति,
मृत्वा जनास्ते च भवन्ति सर्पाः ।।९७।।

अर्थ — जो मनुष्य धर्मका स्वरूप और गुरुका उपदेश सुनकर समस्त पदार्थोंका स्वरूप समझकर भी अपने वैर विरोधका त्याग नहीं करते हैं अथवा अपने मिथ्यात्वरूपी विषका त्याग नहीं करते ऐसे मनुष्य मरकर सर्प की पर्याय पाते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार सर्प जन्मजन्मांतर तक अपना वैर नहीं छोड़ता तथा मंत्रवादियोंके द्वारा समझाने व सब प्रकारसे संतुष्ट कर देने पर भी अपना वैर नहीं छोड़ता तथा सुखी रखनेपर भी काटना नहीं

छोड़ता। उसीप्रकार जो मनुष्य गुरुके उपदेशसे समस्त तत्त्वोंका, और अपने आत्माका स्वरूप समझ लेता है तथा वैर और विरोध व कषायोंका स्वरूप समझ लेने पर भी जो मनुष्य अपना वैर विरोध नहीं छोड़ता व मिथ्यात्वरूपी विषका त्याग नहीं करता, आत्माका स्वरूप समझकर भी जो आत्मामें लीन नहीं होता व सम्यग्दर्शन का यथार्थ स्वरूप जानकर भी उसको ग्रहण नहीं करता ऐसा मनुष्य मरकर सर्पका शरीर धारण करते है।

बिच्छूकी पर्याय धारण करनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न-- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
स्युर्वृश्चिका कौ मनुजाश्च मृत्वा।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पापके करनेसे मरकर बिच्छू होता है?

उत्तर-- स्वख्यातिहेतोः स्वजनान् परान् वा,
वाग्वज्रतश्चेतसि ताडयन्ति।
दंशन्ति ये नेत्रविकारदन्तै-
स्ते वृश्चिकाः स्युर्मनुजाश्च मृत्वा।।९८।।

अर्थ—जो मनुष्य अपनी प्रसिद्धिके लिए अपने कुटुंबी लोगोंके व अन्य लोगोंके हृदयमें अपने वचनरूपी वज्रकी चोटसे ताड़ना करते हैं अथवा जो दांतोंसे व नेत्रोंके विकारोंसे मनुष्योंको काटते हैं ऐसे मनुष्य मरकर बिच्छू होते हैं।

भावार्थ—बिच्छू जिस प्रकार अपने डंककी चोटे मारता है उसी प्रकार जो पुरुष वज्रके समान चुभनेवाले कठोर वचनोंकी चोट मारते हैं व दांतोंसे काट लेते हैं अथवा नेत्रोंके विकारकी चोट मारते हैं अथवा जो और भी ऐसे ही ऐसे काम करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर बिच्छू होते हैं। बिच्छू एक निकृष्ट जीव है वह जहाँ जाता है वहींसे भगाया जाता

है व मारा जाता है। इसी प्रकार कठोरवचन कहनेवाला भी पीटा जाता है व मारा जाता है। यही समझकर किसी भी भव्यजीवको कठोर वचन कभी नहीं कहने चाहिये।

चटककी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा नरः स्याच्चटको ह्यभाग्यः।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापके करनेसे यह मनुष्य मरकर चटक व चिड़ा होता है?

उत्तर– धनार्जनं ज्ञानविवर्द्धनार्थं,
दानार्चनार्थं न करोति किन्तु।
पुत्राय वा केवल कुक्षिहेतो–
र्मृत्वा स मर्त्यश्चटको भवेत्को।।९९।।

अर्थ—जो मनुष्य अपने धनका संचय कर न तो उससे ज्ञानकी वृद्धि करता है और न दान, पूजा आदि श्रेष्ठकार्योंमें खर्च करता है। अथवा उस धनको केवल पेट भरनेमें खर्च करता है अथवा अपनी संतान पालन करनेमें खर्च करता है ऐसा मनुष्य मरकर चिड़ा ही होता है।

भावार्थ—धन पाकरके उस धनको दानमें खर्च करना, पूजामें खर्च करना, जिनालय बनवाना, जिनप्रतिमा बनवाना, धार्मिक शिक्षा देना आदि श्रेष्ठ कार्योंमें ही खर्च करना चाहिये, यह मनुष्यका प्रथम कर्तव्य है। धनका प्रयोजन केवल पेट भर लेना नहीं है, क्योंकि पेट तो कौआ आदि नीच जानवर भी भर लेते हैं। मनुष्य जन्म पाकरके परलोक सुधारना मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। इतना समझते हुए भी जो मनुष्य प्राप्त हुए धनसे केवल अपना पेट भरते हैं अथवा केवल अपनी संतान के भरण पोषणमें ही अपना धन खर्च कर डालते हैं ऐसे मनुष्य मरकर चिड़ा ही होते हैं। क्योंकि चिड़ा भी केवल अपना पेट भरतां है

और यथाशक्ति संतानको पाल लेता है। यही समझकर धनी पुरुषको सदाकाल अपना धन धर्मकार्यमें खर्च करते रहना चाहिये।

तोतेकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा मनुष्योऽपि शुको भवेत्कौ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस पापके करनेसे तोतेकी पर्याय प्राप्त करता है?

उत्तर— ज्ञानादिगर्वं भुवि केवलं यः,
करोति किंचित्सुखदं न कार्यम्।
मिष्टं सदा जल्पति यत्र तत्र,
मृत्वा शुकः स्यान्स च भाग्यहीनः ।।१००।।

अर्थ—जो मनुष्य इस संसारमें सदाकाल ज्ञान, धन आदिका अभिमान करता रहता है और अन्य जीवोंको सुख देनेवाला कार्य कभी नहीं करता तथा जो इधर-उधर घूमता हुआ केवल मीठे वचन सुना देता है ऐसा मनुष्य मरकर भाग्यहीन तोतेकी पर्याय प्राप्त करता है।

भावार्थ—तोता केवल मीठा बोलता है इसके सिवाय वह अन्य किसी काममें नहीं आता। इसीप्रकार जो मनुष्य इस संसारमें केवल धन व ज्ञानके अभिमानमें चूर रहता है जो अन्य जीवोंको सुख देनेवाला परोपकार व दानादिकका कार्य किंचिन्मात्र भी नहीं करता। केवल मीठे वचन कहता हुआ इधर-उधर घूमता रहता है ऐसा मनुष्य मरकर तोते की ही पर्याय प्राप्त करता है। यही समझ कर भव्यजीवोंको अपने ज्ञान व धनका आदिका अभिमान कभी नहीं करना चाहिये तथा केवल मीठे वचन कहकर ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये, किंतु उन मीठे वचनोंके साथ-साथ अपने आत्माका तथा अन्य जीवोंका कल्याण भी करना चाहिये। अपने ज्ञानसे जिनधर्मकी प्रभावना करनी चाहिये और धनको दानमें खर्च कर भव्यजीवोंको सहायता देनी चाहिये।

वृक्षकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।
मृत्वा मनुष्यो भवतीह वृक्षः ।।

अर्थ—हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पापके करनेसे वृक्षकी पर्याय प्राप्त करता है?

उत्तर– स्वर्मोक्षदं शान्तिकरं सदा यः,
जिनं सुधर्मं च गुरुं विगर्वात् ।
न वन्दते बोधकरं च शास्त्रं,
मृत्वा स मर्त्यो भवतीह वृक्षः ।।१०१।।

अर्थ—इस संसारमें देव, शास्त्र, गुरु और सद्धर्म ही स्वर्ग-मोक्ष देनेवाले हैं और आत्मामें शांति उत्पन्न करनेवाले हैं। जो मनुष्य अपने मिथ्या अभिमानसे ऐसे भगवान् जिनेन्द्रदेवको, उन जिनेन्द्रदेवके कहे हुए श्रेष्ठ धर्मको, आत्मज्ञान प्रकट करानेवाले जिनप्रणीत शास्त्रोंको और उनकी आज्ञानुसार चलनेवाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंकी वंदना नहीं करता है वह मनुष्य मरकर वृक्ष ही होता है।

भावार्थ—वृक्ष सदा खड़ा ही रहता है वह किसीके सामने भी नम्र नहीं होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य इतना अभिमानी है कि भगवान् जिनेन्द्रदेवके सामने जाकर भी कभीनम्र नहीं होता है वह पाप करता है, क्योंकि भगवान् जिनेन्द्रदेव समस्त आत्माओंका कल्याण करने वाले, समस्त जीवोंको अभयदान देनेवाले, समस्त जीवोंको सुख देनेवाले, अहिंसा धर्मका उपदेश देनेवाले और स्वर्ग मोक्षके साक्षात् कारण हैं। ऐसे भगवान् जिनेन्द्रदेवको भी नमस्कार न करना उनके सामने जाकर भी वृक्षके समान खड़े रहना महापाप है, क्योंकि इन्द्रादिक देव भी भगवान् जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करते हैं फिर भला मनुष्यकी तो बात ही क्या

है। अर्थात् जो मनुष्य होकर भी जिनेन्द्रदेवको नमस्कार नहीं करता व उनके कहे हुए शास्त्र व धर्मको नमस्कार नहीं करता अथवा निर्ग्रंथ गुरुओंको नमस्कार नहीं करता ऐसा मनुष्य मरकर अपने गाढ़ अभिमानके कारण वृक्ष ही होता है। यही समझकर मनुष्योंको अभिमान कभी नहीं करना चाहिये।

मयूरकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मर्त्योऽपि मृत्वा च शिखी भवेत्कौ।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पापके करनेसे मयूरकी पर्याय प्राप्त करता है?

उत्तर– स्वात्मानुभूतेः स्वरसं न पीत्वा,
हठात्स्वयं पाययति परान् यः।
त्यक्त्वा स्वकृत्यं यतते परार्थं,
स स्याच्छिखी कौ मनुजोऽपि मृत्वा।।१०२।।

अर्थ—जो मनुष्य अपने आत्माके अनुभवसे उत्पन्न हुए शुद्ध आत्माके रसको स्वयं नहीं पीता है किंतु हठपूर्वक दूसरोंको पिलानेका प्रयत्न करता है। इसी प्रकार जो अपने आत्मकर्तव्यको छोड़कर दूसरोंका उपकार करनेके लिए प्रयत्न करता है वह मनुष्य मरकर मयूर ही होता है।

भावार्थ—मयूर स्वयं महापाप उत्पन्न करता रहता है, वह प्रतिदिन अनेक कीड़ोंको मारकर खा जाता है तथापि वह केवल देखने में सुंदर लगता है और शब्द मीठा बोलता है। इसी प्रकार जो मनुष्य अपने आत्माका कल्याण तो कभी करता नहीं, किन्तु स्वयं अनेक प्रकारके पाप किया करता है और फिर भी दूसरोंका कल्याण करनेके

लिए लंबे चौड़े उपदेश देता हूआ सदा परोपकार करनेका नाटक किया करता है ऐसा मनुष्य मरकर मयूरकी पर्याय प्राप्त करता है। यही समझकर सबसे पहले अपने आत्माका कल्याण करना चाहिये अपने आत्माका कल्याण कर लेनेपर दूसरेके कल्याण करनेका प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि अपने आत्माका कल्याण कर लेनेपर ही दूसरोंका कल्याण किया जा सकता है।

गृद्धकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा मनुष्यो भवतीह गृद्धः।।

अर्थ—हे स्वामिन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पापके करनेसे यह मनुष्य मरकर गृद्धकी पर्याय प्राप्त करता है।

उत्तर– कृत्वा स्वयं नैव धनार्जनादिं,
यः केवलं बंधु गृहे भुनक्ति।
गच्छेत्सदा यत्र लभेत वाऽन्नं,
मर्त्यः स मृत्वा भवतीह गृद्धः।।१०३।।

अर्थ—जो मनुष्य स्वयं कभी धनोपार्जन नहीं करता, केवल कुटुंबमें जाकर भोजन कर लेता है अथवा जहाँपर अन्न मिल जाता है वहीं पर चला जाता है, ऐसा बेकार मनुष्य मरकर गृद्धकी पर्याय प्राप्त करता है।

भावार्थ—जिस प्रकार गृद्ध माँस भक्षण करता है और वह भी मरे हुए पशुओंका ही माँस भक्षण करता है तथा जहाँ कहीं माँस पड़ा दिखाई देता है वहीं पहुँच जाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य कभी कुछ कमाता नहीं, न कमानेका कभी प्रयत्न करता है, भाई-बंधुओंके यहाँ जैसा कुछ मिल जाता है खा लेता है। यदि घरमें कुछ खानेको न मिला

तो फिर जहाँ भोजन मिलता है वहीं जा पड़ता है और भक्ष्य-अभक्ष्य जो कुछ मिल जाता है वही खा लेता है। इस प्रकार भक्ष्य-अभक्ष्यका कुछ विचार नहीं करता, निकृष्ट भोजन कर लेता है ऐसा मनुष्य मरकर अवश्य ही गिद्धकी पर्याय प्राप्त करता है।

बंदरकी पर्याय प्राप्त करनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।
मर्त्योऽपि मृत्वा च कपिर्भवेत्को ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पापके करनेसे बंदरकी पर्याय धारण करता है ?

उत्तर– देशेऽन्यदेशेऽन्यगृहेऽपि गच्छे-
न्निष्कारणं यश्च वनस्पतीन् वा।
छिनत्ति धर्मायतनं भिनत्ति।
मृत्वा स मर्त्यश्च भवेत्कपिः कौ ।। १०४ ।।

अर्थ—जो मनुष्य बिना कारणके ही देश-विदेश में घूमता फिरता है, बिना कारणके ही अनेक वनस्पतियोंको तोड़ता फिरता है व जिनालय आदि धर्मायतनोंको तोड़ता है, ऐसा मनुष्य मरकर बन्दरकी पर्याय प्राप्त करता है।

भावार्थ—जिस प्रकार बंदर देश-विदेशके समस्त स्थानोंमें घर-घर बिना किसी प्रयोजनके घूमता रहता है, तथा अनेक वनस्पतियोंको, अनेक वृक्षोंको, अनेक फलोंको, अनेक पुष्पोंको तोड़ डालता है व अनेक घरोंमें, मंदिरोंमें पहुँचकर हानि पहुँचाया करता है व उनकी तोड़-फोड़ करता है ऐसा मनुष्य मरकर बंदर की पर्याय में उत्पन्न होता है। यही समझकर भव्य जीवोंको ऐसे पापोंसे सदा काल बचते रहना चाहिये।

साधर्मियोंके साथ विवाद करनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च करोति जीवः ।
वृथा विवादं सह धार्मिकैश्च ।।

अर्थ—हे स्वामिन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पापके करनेसे धर्मात्माओंके साथ वाद-विवाद करता रहता है ?

उत्तर— देवस्य धर्मस्य गुरोः पुरा यैः,
कृतोऽपमानश्च वृथा विवादः ।
कुर्वन्ति संस्कारवशात्प्रकोपे,
साधर्मिकैस्ते विवदन्ति लोके ।।१०५।।

अर्थ—जो पुरुष पूर्व जन्ममें देव, धर्म, गुरुका अपमान करते हैं अथवा पूर्व जन्मके संस्कारोंके निमित्तसे गुरुओंपर क्रोध करते हैं, उनके साथ विवाद करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर अन्य जन्म में जाकर वहाँ धर्ममें व धर्मात्माओंके साथ वाद-विवाद किया करते हैं।

भावार्थ—धर्ममें व धर्मात्माओंके साथ विवाद करना, धर्ममें किसी प्रकारकी शंका रखना सम्यग्दर्शन को नष्ट करना है और मिथ्यात्वको बढ़ाना है। गुरुके साथ तो कभी वाद-विवाद करना ही नहीं चाहिए,क्योंकि गुरुकी तो आज्ञा ही मान्य होती है। गुरु वीतराग होते हैं और समस्त आशाओंसे रहित निर्ग्रंथ होते हैं। वे जो कुछ कहते हैं आत्मकल्याणके लिए ही कहते हैं। ऐसे निस्पृह गुरुओंके साथ विवाद करना पापका कारण है। ऐसा पाप वही मनुष्य करता है जो पहले भवमें देव, धर्म, गुरुका अपमान करता है, उन्हें पूज्य नहीं मानता, उनकी निंदा करता है, धर्म की हँसी उड़ाता है, धर्मात्माओंके साथ विवाद करता है, धर्मात्माओंको नीचा दिखाता है,

व अन्य कितने ही ऐसे ही काम किया करता है। ऐसा मनुष्य मरकर गुरुओंके व धर्मात्माओंके साथ झगड़नेवाला या वाद-विवाद करने वाला होता है।

राजाको भी रंक होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।
राजापि मृत्वा भवतीह रंकः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापके करनेसे राजा भी मरकर रंक हो जाता है?

उत्तर- धर्मादिशून्यो विषये निमग्नो,
द्वेषी प्रजानां पशुवद्विहारी ।
मांसाशनो यो मदिराप्रपायी,
मृत्वा स राजा भवतीह रङ्कः ।।१०६।।

अर्थ—जो राजा धर्म कर्मसे सर्वथा रहित होता है, इन्द्रियोंके विषयोंमें लीन रहता है, प्रजासे द्वेष करता है, पशुओंके समान विहार करता है, माँस भक्षण करता है और मदिरा पान करता है, ऐसा राजा मरकर इसी संसारमें अत्यंत दरिद्र रंक होता है।

भावार्थ—राजाओंको धर्मात्मा होना अत्यावश्यक है, क्योंकि राजाओंके धर्मात्मा होनेसे समस्त प्रजा धर्मात्मा हो जाती है। यदि राजा पापी होता है तो समस्त प्रजा पाप करने लग जाती है। प्रजा सदाकाल राजाका अनुकरण करती रहती है। राजा और प्रजा दोनोंके पाप करनेसे राज्य नष्ट हो जाता है तथा दोनों के पुण्य करनेसे राज्यकी वृद्धि होती है। इसलिये जो राजा धर्मकार्योंसे वंचित रहता है कभी धर्मकार्य नहीं करता वह राजा मरकर परलोकमें अत्यंत दरिद्री रंक होता है। इसी प्रकार जो राजा सदाकाल विषयोंमें लीन रहता है, वह भी मरकर रंक

ही होता है, क्योंकि सदाकाल विषयोंमें लीन रहने वाला राजा न तो धर्मकर्म कर सकता है न प्रजाका पालन कर सकता है और न ही धर्मात्माओंकी रक्षा कर सकता है। तथा उसकी देखादेखी उसकी प्रजा भी ऐसी ही हो जाती है। इसलिये राजाओंको धर्मकार्य करते हुए न्यायपूर्वक इन्द्रियोंको तृप्त करना चाहिये। इसी प्रकार जो राजा प्रजासे द्वेष करता है, प्रजाका पुत्रके समान पालन नहीं करता व पशुओंके समान सदाकाल बिना प्रयोजनके भी इधर-उधर घूमता है अथवा जो मद्यपान, मांसभक्षण आदि निकृष्ट पदार्थोंका सेवन करता है ऐसा राजा मरकर परलोकमें निकृष्ट नीच रंक होता है। यही समझकर राजाओको ऊपर लिखे निकृष्ट कार्योंसे सदा बचते रहना चाहिये।

कुदेव, कुशास्त्र व कुगुरुकी प्रशंसा करनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— कस्माद्ध पापाच्च करोति जीवः ।
कुदेवधर्मादिगुरुप्रशंसाम् ।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पापके करनेसे कुदेव, कुधर्म व कुगुरुकी प्रशंसा किया करता है?

उत्तर— कुदेवशास्त्रस्य गुरोः पुरा यैः,
श्रद्धा कृता वा विनयादिभक्तिः ।
कुर्वन्ति संस्कारवशात्त एव,
परत्र लोकेपि च तत्प्रशंसाम् ।।१०७।।

अर्थ—जिन लोगोंने पहले जन्ममें कुदेव, कुशास्त्र व कुगुरु की श्रद्धा विनय और भक्ति की है ऐसे जीव मरकर अपने संस्कारोंके निमित्तसे परलोकमें भी जाकर कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओंकी ही प्रशंसा किया करते हैं।

भावार्थ—मिथ्यात्व का संस्कार जन्म-जन्मांतर तक जाता है। जो मनुष्य इस जन्ममें गाढमिथ्यात्वमें लीन रहता है वह मनुष्य परलोकमें जाकर भी उसी मिथ्यात्वमें लीन बना रहता है। मिथ्यात्वकर्म करनेसे जो दर्शनमोहनीयकर्मका बंध होता है उसकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तरि कोड़ा-कोड़ी सागर तककी रहती है अर्थात् सत्तरि कोड़ा-कोड़ी सागर तक वह एक समयमें बँधा हुआ कर्म फल देता रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक समयमें बँधा हुआ कर्म अपनी स्थिति और अनुभागके अनुसार फल दिया करता है। अतः उसीके अनुसार वह मिथ्यात्व सेवन किया करता है। यही कारण है कि जो पुरुष पूर्व जन्ममें कुदेवादिकका श्रद्धान उनकी विनय और भक्ति करता है वह पुरुष अगले जन्म में भी उन्हीं कुदेवादिकोंका श्रद्धान, उन्हीं की विनय, भक्ति और प्रशंसा करता है। यही समझकर तथा पाकर भव्यजीवोंको यथाकाल अपने मिथ्यात्वका त्याग कर शास्त्रोक्तविधिके अनुसार सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लेना चाहिये। मिथ्यात्वके संस्कार से ही बहुतसे विद्वान शास्त्रोंको पढ़कर भी उनके विपरीत चलते हैं, अपने तीव्र मिथ्यात्वके उदयसे शास्त्रोक्त कर्तव्योंको मिथ्या बतलाते हैं पंचामृताभिषेकका निषेध करते हैं, व पुष्पपूजन, फलपूजन, दीपपूजन, धूपपूजन का निषेध करते हैं, पात्रदानका निषेध करते हैं, यहाँतक कि आरतीका भी निषेध करते हैं। ऐसे लोग परलोकमें भी जाकर शास्त्रोंका यथार्थ श्रद्धान नहीं कर सकते। इसके सिवाय जो विधवाविवाह, विजातीय विवाह आदि दुष्कर्मोंका प्रतिपादन करते हैं उन्हें तो तीव्र मिथ्यादृष्टि कहना ही चाहिए, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

घर गृहस्थीसे रहित होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे।
मृत्वा नरः स्याद् गृहदारहीनः ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य मरकर किस-किस पापके करनेसे घर गृहस्थीसे रहित होता है?

उत्तर– छित्वा गृहादिं मधुमक्षिकाणां,
वा पक्षिकाणां च रसं पिबन्ति।
लोभात्परेषां च कलेवरं ये,
भवन्ति को ते गृहदारहीनाः ।।१०८।।

अर्थ—जो पुरुष मधु-मक्खियोंके छत्ते तोड़ डालते हैं और उनके शहदको खा जाते हैं अथवा बया आदि अनेक पक्षियोंके घोंसले तोड़ देते हैं अथवा तीव्र लोभके कारण उन पक्षियोंके माँस खा जाते हैं ऐसे मनुष्य मरकर घर, स्त्री आदि सबसे रहित अकेले ही होते हैं।

भावार्थ—किसी भी पशु, पक्षीका घर बिगाड़ देना, उसको आश्रय हीन बना देना महापाप है। मधु-मक्खियोंका छत्ता तोड़नेमें तो अनेक मक्खियोंकी हिंसा होती है और अनेक मक्खियाँ बिना घरबार के आश्रय रहित हो जाती हैं। तथा शहदका स्पर्श करने मात्रसे उसमें रहनेवाले अनंत जीव मर जाते हैं। इसी प्रकार किसी पशु, पक्षीको मार देना भी उसके कुटुंब को दुःखी करना है। इसलिए जो मनुष्य इस जन्ममें दूसरोंका घरबार तोड़ता है वह मनुष्य मरकर अगले जन्ममें घर गृहस्थीसे रहित अकेला ही रहता है।

कीड़े मकोड़ेकी पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
मृत्वा नरः स्यात्खलु कीटकः को।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पापके करनेसे यह जीव मरकर कीड़े-मकोड़ोंमें उत्पन्न होता है ?

उत्तर– रक्षा समित्या लघुप्राणिनां वा,
कृता न दृष्टा गुरुदेवमुद्रा।

दीना न तुष्टा धनगर्वितैर्ये-
र्भवन्ति दुष्टा भुवि कीटकास्ते ।।१०९।।

अर्थ—जो पुरुष समितियोंका पालन कर छोटे-छोटे प्राणियोंकी रक्षा नहीं करते हैं, देव-शास्त्र-गुरुके दर्शन करते हैं और धनके मदसे मदोन्मत्त होकर जो किसी भी दीन दरिद्र को संतुष्ट नहीं करते ऐसे मनुष्य मरकर इसी संसारमें दुष्ट छोटे-छोटे कीड़े होते हैं।

भावार्थ—छोटे-छोटे कीड़े थोड़ासा कारण मिलनेपर योंही मर जाते हैं, कोई पैरके तले दबकर मर जाता है कोई लीद गोबर में दबकर मर जाता है, कोई मलमूत्रमें दबकर व बहकर मर जाता है और कोई पानीमें बह कर मर जाता है। जो मनुष्य ऐसे छोटे-छोटे जीवोंकी रक्षा नहीं करते हैं भूमिको देखकर नहीं चलते हैं व देख शोधकर पदार्थोंको न उठाते हैं, न रखते हैं, जो मलमूत्र भी देख शोधकर नहीं करते तथा अपने प्रमादके कारण इन सब कामोंमें छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ोंका घात किया करते हैं ऐसे मनुष्य मरकर अगले जन्ममें छोटे-छोटे कीड़े होते हैं जिन्हें अन्य लोग दाबदूब कर मार देते हैं। इसी प्रकार जो जीव देव, शास्त्र, गुरुके दर्शन नहीं करते, न उनका उपदेश सुनते हैं और न उनपर श्रद्धान रखते हैं तथा जो दीन दरिद्री मनुष्योंको कभी संतुष्ट नहीं करते, कभी उनको भोजन तक दानमें नहीं देते और सदाकाल धनके मदमें उन्मत्त रहते हैं ऐसे मनुष्य मरकर छोटे-छोटे कीड़े होते हैं। यही समझकर छोटे-छोटे कीड़े मकोड़ोंकी रक्षा अवश्य करते रहना चाहिये और दीन-दरिद्रियोंको कुछ न कुछ दान देकर अवश्य संतुष्ट करते रहना चाहिए।

शक्तिहीन होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— **कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।**
मृत्वा नरः स्याद्भुवि शक्तिहीनः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पापके करनेसे मरकर अत्यंत शक्तिहीन होता है।

उत्तर— स्वार्थाभिसिद्ध्यै स्वबलेन जन्तून्,
हत्वा च भीतिं खलु दर्शयित्वा।
बद्ध्वा सदा बन्दिगृहे जना ये-
मृत्वा खलास्ते च भवन्त्यशक्ताः ॥११०॥

अर्थ—जो निर्दय मनुष्य अपने स्वार्थकी सिद्धि के लिए अपने बलसे भय दिखलाकर दूसरे प्राणियोंको मार देते हैं अथवा जो उनको बाँधकर बंदीगृहमें डाल देते हैं ऐसे दुष्ट मनुष्य मरकर परलोकमें शक्तिहीन ही होते हैं।

भावार्थ—जो बलवान् पुरुष इस जन्ममें शक्तिहीन मनुष्योंको दबाया करते हैं, अपना प्रयोजन सिद्ध करनेके लिए उन्हें बंदीगृहमें डलवा देते हैं, उन्हें लूट लेते हैं, उनका घरवार छीन लेते हैं, धन-धान्य छीन लेते हैं व समय पड़नेपर उन्हें मार भी देते हैं ऐसे मनुष्य मरकर परलोकमें जाकर अत्यंत शक्तिहीन होते हैं तथा ऐसे शक्तिहीन होते हैं जिन्हें सब लोग दबा लें, अनेक प्रकारके दुःख पहुँचावे, बंदीगृहमें डलवा दें व मरवा दें। यही समझकर बलवान् पुरुषोंको कभी दीन दुखियोंको नहीं सताना चाहिए, किंतु जितनी बन सके उतनी उनकी सहायता करनी चाहिए।

श्रेष्ठ कार्य करनेपर भी निंदा होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न— निन्देव सत्कार्यकृतेऽपि कस्मात्।
कर्मोदयात्स्याद्भवतीह लोके ॥

अर्थ—हे गुरो! अब कृपाकर यह बतलाइये, कि किस-किस पापकार्यके करनेसे व किस कर्मके उदयसे श्रेष्ठकार्य करने पर भी मनुष्यकी निंदा होती है।

उत्तर— सत्कार्यकर्तुर्भुवि दीनबन्धोः,
सम्पूर्णविश्वे यततः प्रशान्त्यै ।
निंदा कृता येन नरोत्तमस्य,
स्यादेव सत्कार्यकृतेऽपि तस्य ।।१११।।

अर्थ—जो पुरुष इस संसारमें सदाकाल श्रेष्ठकार्य करते रहते हैं, दीन दरिद्रियोंको सदाकाल सहायता देते रहते हैं और जो समस्त संसारमें शांति स्थापित करनेके लिये प्रयत्न किया करते हैं ऐसे उत्तम पुरुषोंकी भी जो लोग निंदा किया करते हैं पुरुष यदि सत्कार्य करते रहें तो भी उनकी निंदा ही होती है।

भावार्थ—श्रेष्ठ कार्य करनेपर भी निंदा का होना पापकर्म के उदयका ही कार्य माना जाता है। जो लोग उत्तम गुणवान् मनुष्योंकी, सत्कार्य करनेवालोंकी, धार्मिक विद्वानोंकी व धर्मकार्योंकी निंदा किया करते हैं, जो शास्त्रोक्त वचनोंको मिथ्या ठहरानेका प्रयत्न करते हैं, शास्त्रोक्त वचनोंके प्रतिकूल चलते हैं, शास्त्रोक्त वचनोंमें दोष लगाते हैं, देव-शास्त्रोंको नीच अस्पृश्य मनुष्यों से स्पर्श कराते हैं अथवा जो अन्य भी ऐसे ही धर्म विरुद्ध, नीतिविरुद्ध कार्य करते हैं वे मनुष्य भी ऐसे ही ऐसे धर्म विरुद्ध, नीतिविरुद्ध कार्य करते हैं ऐसे मनुष्य परलोकमें जाकर यदि श्रेष्ठ कार्य भी करते हैं तो भी किसी न किसी प्रकारसे उनकी निंदा होती है। अतएव धर्मविरुद्ध व नीतिविरुद्ध कार्य कभी नहीं करना चाहिये।

सत्कार्य करनेपर भी धनादिक की हानि होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च भवेद्धनादेः ।
सदा हि सत्कार्यकृतेऽपि हानिः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि श्रेष्ठ कार्योंके करनेपर भी इस मनुष्यके धनकी हानि किस कारणसे होती है।

उत्तर— दानादिपूजां न जपं तपो हि,
कृत्वा न धर्मं भुवि केवलं यः।
धनार्जने स्यान्निरतश्च तस्य,
हानिः सुसत्कार्यकृते धनादेः ।।११२।।

अर्थ—जो पुरुष दान, पूजा, जप, तप व अन्य धार्मिक कार्योंको कभी नहीं करता है केवल धनसंचय करनेमें सदाकाल तल्लीन रहता है ऐसा पुरुष परलोकमें जाकर यदि श्रेष्ठकार्य भी करता है तो भी उसके धनादिककी हानि होती ही है।

भावार्थ—धनसंचय करनेके साथ इस मनुष्यको धर्मकार्य भी अवश्य करते रहना चाहिए। भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा, मुनियोंकी वैयावृत्य और स्वाध्याय करना आदि प्रत्येक दिनके करने योग्य धर्मकार्य हैं। इन कार्योंमें प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ द्रव्य अवश्य खर्च करना चाहिये। कमाये हुए धनमेंसे चौथाई भाग या दशवां भाग धर्मकार्यमें अवश्य खर्च कर देना चाहिए। इन कार्यों के सिवाय नीर्थयात्रा, गुरुदर्शन, गुरुसेवा आदि भी धर्मकार्य हैं इनमें भी यथाशक्ति खर्च करना प्रत्येक गृहस्थका कर्तव्य है। धन कमानेमें पापकर्मका बंध होता ही है। यदि उस धनको किसी भी धर्मकार्यमें न लगाया जाय तो फिर पाप ही पाप बना रहता है अर्थात् उस धनको धर्मकार्यमें लगानेसे जो पुण्यकी प्राप्ति होनी चाहिए वह नहीं होती। यही कारण है कि अगले जन्ममें जाकर उस पापकर्मके उदयसे श्रेष्ठकार्योंके करनेपर भी उसके धनादिककी हानि बराबर होती रहती है। यही समझकर धर्मकार्यमें आलस कभी नहीं करना चाहिये।

अनावृष्टि अर्थात् वर्षा न होनेका कारण दिखलाते हैं—

प्रश्न– **कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो ! मे ।**
काले हि काले न भवेत्सुवृष्टिः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापके करनेसे समय-समय पर अच्छी वर्षा नहीं होती ?

उत्तर– **न धार्मिका वा मुनयो न यत्र,**
न देवपूजा न च पात्रदानम् ।
दुष्टा जना यत्र वसन्ति तत्र,
वृष्टिर्न शान्तिश्च भवेत्कदापि ।। ११३ ।।

अर्थ—जिस देशमें न तो धार्मिक पुरुष रहते हैं, न मुनि जन रहते हैं, जहाँ पर न देव पूजा होती है और न पात्रदान होता है तथा जहाँपर दुष्ट अधार्मिक लोग ही निवास करते हैं ऐसे देशमें वृष्टि और शांति कभी नहीं होती है ।

भावार्थ—जिस देशमें धर्मात्मा और पुण्यवान् जीव आकर जन्म लेते हैं, जहाँपर प्रतिदिन देवपूजा होती रहती है, विधिपूर्वक अभिषेक होता रहता है, नैमित्तिक विधिविधान होते रहते हैं, व प्रतिष्ठादिक कार्य होते रहते हैं, जहाँपर वीतराग निर्ग्रंथ मुनिराज भी आकर निवास करते हैं, जहाँपर मुनियोंको प्रतिदिन आहारदान दिया जाता है, उनका उपदेश सुना जाता है, उनकी सेवा की जाती है, जहाँपर समय-समयपर रथोत्सव आदिके द्वारा धर्मप्रभावना होती है अथवा जहाँपर समय-समयपर श्रावकोंको आहारदानादिक देकर समदत्तिका प्रचार किया जाता है, ऐसे देशोंमें सदाकाल समयानुसार वर्षा हुआ करती है परंतु जहाँपर ये ऊपर लिखे कार्य नहीं होते और जहाँपर दुष्ट लोग ही निवास करते हैं ऐसे देशमें न तो समयानुसार वृष्टि होती है और न कभी शांति ही रहती है ।

पुण्यकार्य करनेवालेके साथ वैर विरोध करनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च वद प्रभो! मे।
सुपुण्यकर्तुश्च वरैर्विरोधः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पापके करनेसे यह जीव पुण्यवान् मनुष्योंके साथ व पुण्यकार्य करनेवाले मनुष्योंके साथ वैरविरोध करता है?

उत्तर— पूर्वं मिथो वैरविरोधकर्तुः,
सङ्गः कृतो येन खलादिसेवा।
तस्यैव संस्कारवशात्समं सः,
करोति वैरं शुभकृत्यकर्तुः ।। ११४ ।।

अर्थ—जो मनुष्य पहले जन्ममें वैर विरोध करनेवालों की संगति करते हैं व दुष्ट लोगोंकी सेवा करते हैं ऐसे मनुष्य परलोकमें जाकर पहले जन्मके संस्कारके निमित्तसे पुण्यकार्य करने वालों के साथ भी वैर विरोध किया करते हैं।

भावार्थ—किसीके साथ वैर विरोध करना पापका कारण है। फिर भला पुण्यकार्य करनेवालेके साथ वैरविरोध करना तो और भी अधिक पापका कारण है। जो पुरुष विना कारण वैर विरोध करनेवालों की संगति किया करते हैं, उनके देखा-देखी सज्जनोंके साथ वैर विरोध किया करते हैं व दुष्ट लोगोंकी संगति करते हैं, उनकी सेवा करते हैं, अथवा श्रेष्ठधर्मका विरोध किया करते हैं ऐसे मनुष्य परलोकमें भी अपने वैर विरोधके संस्कारको साथ ले जाते हैं। फिर वहां उस संस्कारके निमित्तसे पुण्यकार्य करनेवालोंके साथ भी वैरविरोध किया करते हैं। यही समझकर दुष्ट लोगोंकी और वैरविरोध करनेवालोंकी संगति भी कभी नहीं करनी चाहिए।

विपरीत बुद्धि हो जानेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पापाच्च भवेन्नराणां ।
विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पापके करनेसे मनुष्योंकी बुद्धि विनाश होनेके समय विपरीत रूप परिणत हो जाती है ?

उत्तर— कालोत्थबुद्धेः सुखशान्तिदात्र्या-
नाशाय यत्नो हि कृतश्च येन ।
तस्यैव हानिश्च सदापमानो,
विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ।। ११५ ।।

अर्थ—पुण्यवान् और बुद्धिमान् पुरुषोंकी बुद्धि सुख और शांति उत्पन्न करनेवाली होती है और समयानुसार उत्पन्न हो जाती है, परंतु जो पुरुष उस श्रेष्ठबुद्धिको भी नाश करनेके लिये प्रयत्न करता है, उस मनुष्यकी सदा हानि होती रहती है, सदा अपमान होता रहता है और सदा विनाश होनेके समय उसकी बुद्धि अवश्य ही विपरीतरूप परिणत हो जाती है।

भावार्थ—किसीकी श्रेष्ठ बुद्धिका नाश करना उसके आत्मा की निर्मलताका घात करना है, क्योंकि बुद्धि व ज्ञान ही आत्मा का एक ऐसा प्रगट होनेवाला गुण है जो आत्माका चिह्न माना जाता है। ज्ञानसे ही आत्माका अस्तित्व मानना पड़ता है। ऐसे ज्ञानका व ऐसी श्रेष्ठबुद्धिका नाश कर देना उस आत्माकी उच्चता, निर्मलता व उत्तमताका नाश कर देना है और इस प्रकार आत्माकी निर्मलताका नाश कर देना महापापका कारण है। इसी पापके उदयसे जब यह आत्मा परलोकमें जाकर उत्पन्न होता है तब स्थान-स्थान पर उसकी हानि होती है और उसका नाश होनेके लिए उसकी बुद्धि विपरीत व भ्रष्ट हो जाती है। जिससे कि वह अनेक अन्याय और अनर्थ करता

हुआ नरक निगोदका पात्र हो जाता है। यही समझकर किसीकी बुद्धिको भ्रष्ट करनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए। यदि किसीकी बुद्धि विपरीत हो गई हो तो समझा बुझाकर उसको बदलनेका प्रयत्न करना चाहिये तथा उसे मोक्षमार्गमें लगानेका प्रयत्न करना चाहिए।

इस अध्यायके पठन-पाठन का अभिप्राय दिखलाते हैं—

उत्तर– ज्ञात्वेति निन्द्य विषमव्यथादं,
त्यक्त्वापि कुर्वन्त्वशुभोपयोगम्।
शुभोपयोगेऽक्षसुखादिमूले ,
वृत्तिं च शुद्धे हि यतस्व गन्तुम्।। ११६ ।।

अर्थ—इन सब विषयोंको अच्छे प्रकारसे पठन-पाठन कर भव्य जीवोंको अत्यंत निंदनीय और अत्यंत दुःख देनेवाले अशुभोपयोगका त्याग कर देना चाहिये तथा इन्द्रियजन्य सुखोंके मूल कारणभूत शुभोपयोगमें अपना मन लगाना चाहिये और अंतमें शुद्धोपयोग प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

भावार्थ—इस अध्यायमें जो कुछ वर्णन किया है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि पापकर्म करनेसे अशुभोपयोग होता है, तथा अशुभपयोग होनेसे फिर पापकर्मोंका बंध होता है। इस प्रकार एक बारके अशुभोपयोगसे भी पापोंकी परंपरा बराबर चलती रहती है और उन पापोंके कारण इस जीवको नरक-निगोदादिकके महादुःख भोगने पड़ते हैं। इसलिये भव्यजीवोंको सबसे पहले इस अशुभोपयोगका त्याग करना चाहिये। समस्त दुःखोंका मूल कारण यह अशुभोपयोग ही है। इसका त्याग किये बिना आत्माका कल्याण कभी नहीं हो सकता। तथा आत्माका कल्याण करना प्रत्येक जीवके लिये परमावश्यक है। अतएव अशुभोपयोगका त्याग कर शुभोपयोग धारण करना चाहिए और शुद्धोपयोग प्राप्त करनेके लिए सदाकाल प्रयत्न करते रहना चाहिए, क्योंकि मोक्षकी प्राप्ति शुद्धोपयोगसे ही होती है।

समस्त अध्यायका सार बतलाते हैं-

मतिः स्याद् यादृशी यस्य तस्य स्यात्तादृशी गतिः ।
यदर्थे यस्य भावोऽस्ति प्रायस्तल्लभते हि सः ।।११७।।

अर्थ—जिस मनुष्यकी जैसी बुद्धि होती है उस मनुष्यकी गति भी वैसी ही होती है। तथा जिस मनुष्यका भाव जिस पदार्थके लिए होता है उस मनुष्यको वह पदार्थ अवश्य प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—संसारमें जितने पुण्य व पाप हैं वे सब अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार होते हैं। यदि बुद्धि भ्रष्ट होती है व पापरूप होती है तो उस जीवसे सदाकाल पाप होते रहते हैं, यदि जिस किसीकी बुद्धि सरल और यथार्थ होती है वह मनुष्य पापोंसे बचता हुआ सदाकाल पुण्यकार्य ही करता रहता है। इसीलिए आचार्य महाराजने कहा है कि जिसकी जैसी बुद्धि होती है उसको वैसी ही गति प्राप्त होती है। वहाँपर गतिशब्दका अर्थ पुण्य-पापरूप है। अथवा पुण्यसे स्वर्गादिक गति प्राप्त होती है और पापसे नरकादिक गति प्राप्त होती है। अथवा जिस किसी मनुष्य के भाव जिस पदार्थके लिए होता है प्रायः वह पदार्थ प्रयत्न करनेपर उसको मिल जाता है। जो मनुष्य मोक्ष की इच्छा रखकर मोक्षके लिए प्रयत्न करता है उसको दस पाँच भवमें मोक्षकी प्राप्ति हो ही जाती है। जब प्रयत्न करनेसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है तब फिर संसारी पदार्थोंकी तो बात ही क्या है ? अर्थात् प्रयत्न करनेपर संसारी पदार्थ भी प्राप्त हो ही जाते हैं। यही समझकर भव्यजीवोंको सदाकाल मोक्षके लिए ही प्रयत्न करते रहना चाहिए।

भावोंकी दुष्टता और चित्तके विकारोंका कारण बतलाते हैं-

पूर्वसंस्कारतो भावे दुष्टानां सङ्गदोषतः ।
दुष्टता विकृतिश्चित्ते दुःखदा जायते नृणाम् ।। ११८ ।।

अर्थ—मनुष्योंके भावोंमें जो दुःख देनेवाली दुष्टता आती है वह

पूर्वजन्मके संस्कारोंके निमित्तसे आती है तथा मनुष्योंको दुःख देनेवाले जो विकार उत्पन्न होते हैं वे दुष्टजीवोंके संगतिके दोषसे उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ—पहले जन्ममें इस मनुष्यके जैसे संस्कार होते हैं अगले भवमें जाकर उसके परिणाम वैसे ही हो जाते हैं। जिसके परिणाम मोक्षमार्गमें लग जाते हैं तथा उन परिणामोंके निमित्तसे जो मोक्षमार्गके लिए प्रयत्न करता रहता है उस संस्कारके निमित्तसे वह अगले जन्ममें भी मोक्षमार्गमें लगा रहता है तथा जो व्यसनोंमें व किसी अन्य कुमार्गमें लग जाता है वह उन संस्कारोंके निमित्तसे अगले जन्ममें भी कुमार्ग व व्यसनोंमें ही लगा रहता है। इससे सिद्ध होता है कि परिणामोंके होनेसे पहले जन्मके संस्कार ही कारण पड़ते हैं। कमठका जीव व्यसनमें पड़ गया था इसलिये उसका वह संस्कार कितने ही जन्म तक बना रहा था तथा उसके भाईके जीव किसी व्यसनमें न पड़कर मोक्षमार्गमें लग गया था, इसलिये उसने अंतमें जाकर मोक्षकी प्राप्ति कर ही ली थी। यही समझकर भव्यजीवोंको अपने परिणाम और कर्तव्य सदा श्रेष्ठ पुण्यरूप कार्योंमें व मोक्षमार्ग में ही लगाना चाहिये। अन्य व्यसन व कुमार्गसे सदा बचते रहना चाहिये, क्योंकि व्यसन व कुमार्गमें पड़नेसे दुष्ट पुरुषोंकी ही संगति करनी पड़ती है। तथा दुष्टपुरुषोंकी संगतिसे सदाकाल हृदयमें विकार उत्पन्न होते हैं। उन विकारोंसे पाप उत्पन्न होते हैं और उन पापोंसे नरकादिक दुर्गतियाँ प्राप्त होती हैं। इसलिये उन नरकादिक दुर्गतियोंसे बचनेके लिये दुष्टोंकी संगति सर्वथा छोड़ देनी चाहिये। आत्म कल्याण का यही सबसे उत्तम मार्ग है।

इस अध्यायका उपसंहार करते हैं—

तदनुसारतो ग्रन्थे वर्णितं ह्यशुभं फलम्।
कस्यापि निन्दनार्थं न न तिरस्कारहेतवे ॥११९॥

सर्वप्राणिहितार्थं हि शुद्धचिद्रूपमूर्तिना।
धीमता स्वात्मतुष्टेन कुंथुसागरसूरिणा ।। १२० ।।

अर्थ—शुद्ध चैतन्यकी मूर्ति, अत्यंत बुद्धिमान् और अपने आत्मामें संतुष्ट रहनेवाले आचार्य श्री कुंथुसागर स्वामीने ऊपर कहे हुए कथनके अनुसार अशुभोपयोगका अशुभ फल वर्णन किया है। यह अशुभोपयोगका अशुभ फल न तो किसीकी निंदा करनेके लिए लिखा गया है, और न किसीका तिरस्कार करनेके लिए लिखा गया है, किंतु समस्त प्राणियोंका हित करनेके लिए लिखा गया है।

भावार्थ—इस ग्रंथका पठन-पाठन व इसका स्वाध्याय कर भव्यजीव अपने अशुभयोगोंका त्याग कर दें और शुभोपयोग धारण कर मोक्षमार्गमें लग जायें इसी हेतुसे यह ग्रंथ लिखा है।

इति आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरविरचिते भावत्रयफलप्रदर्शी नाम ग्रंथे अशुभोपयोगफलवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।

इस प्रकार आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागर विरचित भावत्रयफलप्रदर्शी नाम के ग्रंथकी 'धर्मरत्न' पं० लालाराम शास्त्री विरचित हिंदी भाषा टीका में अशुभोपयोगके फलको वर्णन करने वाला यह पहला अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

शुभोपयोगका फल

सुखप्रदं दुःखहरं किलेष्टं,
नत्वा मुदा पञ्चगुरुं यथावत्।
शुभोपयोगस्य फलस्वरूपं,
सर्वात्मशान्त्यै कथयामि भक्त्या ।। १२१।।

अर्थ—अब मैं समस्त जीवोंको सुख देनेवाले तथा सबके दुःखोंको दूर करनेवाले ऐसे अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीको विधिपूर्वक भक्ति के साथ नमस्कार करता हूँ। फिर समस्त जीवोंको शांति प्राप्त करानेके लिए शुभोपयोगके फलका निरूपण करता हूँ।

सुपुत्रोंकी प्राप्तिका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च सुपुत्रलाभाः ।
भवन्ति नृणां वद देव! लोके ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्य-कार्यके करनेसे इस लोकेमें मनुष्योंको एपुत्रोंकी प्राप्ति होती है?

उत्तर– कुमार्गलग्नान् हि परस्य पुत्रान्,
युक्त्या विबोद्धयैव पुरा सुमार्गे।
सेवादिकार्ये ह्ययुनक् सुसाधो–
र्मातुः स भव्यो लभते सुपुत्रान् ।। १२२ ।।

अर्थ—जो मनुष्य पहले जन्ममें कुमार्गमें चलनेवाले दूसरेके पुत्रोंको युक्तिपूर्वक समझाकर सुमार्गमें लगा देता है तथा सज्जनोंकी व माता-पिताकी सेवामें लगा देता है ऐसा भव्यजीव दूसरे जन्ममें जाकर श्रेष्ठपुत्रोंको प्राप्त करता है।

भावार्थ—दूसरोंकी संतानको सुशिक्षा देना, उनको धर्म मार्गमें लगाना, उनकी आत्माको कल्याणमें लगा देना, पुण्यका कार्य है। जो पुत्र बालकपनमें धर्मशिक्षा ग्रहण कर लेते हैं वे फिर धर्ममार्गमें च्युत नहीं होते। यही कारण है कि आचार्योंने बालकोंके लिये सबसे पहले धर्मशास्त्रोंके पढ़नेका आदेश दिया है। जो पुरुष अपने व दूसरोंके पुत्रोंको सबसे पहले धर्मशिक्षा देता है, उनको कुमार्गमें जानेसे रोकता है और सुमार्गमें लगाता है ऐसे भव्यजीवको अगले जन्ममें श्रेष्ठ और सुयोग्य पुत्रोंकी प्राप्ति होती है।

सुयोग्य और धार्मिक पतिके प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
धर्मानुकूलं लभते पतिं स्त्री:।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्य कार्य के करनेसे स्त्रियोंको धर्मानुकूल पति प्राप्त होता है?

उत्तर– दानादिधर्मे सततं निमग्नं,
पुराभवे या पुरुषं विलोक्य।
तुष्येद् दयार्द्राखिल दीननाथं,
श्रेष्ठं पतिं सा लभते गुणज्ञम्।। १२३ ।।

अर्थ—जो दयालु स्त्री पहले भवमें देवपूजा, पात्रदान आदि धर्मकार्यमें निमग्न रहनेवाले पुरुषोंको देखकर संतुष्ट होती है वह स्त्री अगले जन्ममें अनेक दीनोंकी रक्षा करनेवाले, गुणी और श्रेष्ठ ऐसे उत्तम पतिको प्राप्त होती है।

भावार्थ—जिसके हृदयमें धर्मप्रेम होता है वही जीव धर्मात्माओंको देखकर प्रसन्न होता है। धर्मात्माओंको देखकर प्रसन्न होना वात्सल्यगुण है और वह सम्यग्यदर्शनका एक अंग है। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव ही धर्मात्माओंको देखकर प्रसन्न हो सकता है। जो स्त्री

ऐसे सम्यग्दर्शनको धारण करती है, वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके दर्शन कर अत्यंत प्रसन्न होती है, जो देवपूजा व पात्रदान करना अपना कर्तव्य समझती है और धर्मकी रक्षा करनेके लिये धर्मात्माओंकी सहायता करती रहती है, उनको देखकर उनके धर्मप्रेमसे प्रसन्न होती है ऐसी स्त्री परलोकमें जाकर अनेक गुणोंसे सुशोभित धर्मात्मा श्रेष्ठपति पाती है।

सुपुत्री प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माच्च पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
लाभः सुतायाः भवति ह्यमुत्रे।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्यकर्मके करनेसे परलोकमें जाकर श्रेष्ठ पुत्री प्राप्त होती है?

उत्तर– दानार्चनादौ च सदा निमग्नां,
पुत्रीं सुशीलां च परस्य दृष्ट्वा।
योऽप्रीणयच्छिक्षणदत्तचित्तां,
सीतासमानां लभते स पुत्रीम्।। १२४।।

अर्थ—जो पुरुष दान, पूजा आदि श्रेष्ठ कार्योंमे तल्लीन रहने वाली, सुशील और पढ़ने लिखनेमें चित्त लगानेवाला दूसरोंकी पुत्री को देखकर प्रसन्न होता है वह पुरुष परलोकमें जाकर सीताके समान सुपुत्री प्राप्त करता है।

भावार्थ—जिस प्रकार राजा जनकके सीता पुत्री हुई थी जो सीता अत्यंत पतिव्रता थी, पतिकी भक्ति करनेवाली थी और जिसका नाम आजतक प्रसिद्ध है ऐसी पुत्री भी बड़े भाग्यसे उत्पन्न होती है। जो पुत्री इस जन्ममें प्रतिदिन भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करती है, दान देती है, संयम पालन करती है, व्रत उपवास करती है, तथा धार्मिकग्रंथोंका स्वाध्याय करती रहती है जो पुत्री कुत्सित नाटक, उपन्यास, काव्य, कथा-कहानी आदिकी पुस्तकोंको भी कभी नहीं

पढ़ती है सदाकाल पुण्यवान् मोक्षगामी महापुरुषोंकी कथा या अन्य धर्मशास्त्रोंको पढ़ती रहती है तथा अन्य अनेक धर्मकार्य भी किया करती है ऐसी पुत्री भी परलोकमें जाकर सीताके समान श्रेष्ठ पुत्री होती है तथा जो पुरुष ऐसी सुपुत्रियोंको देखकर प्रसन्न हुआ करते हैं वे पुरुष भी परलोकमें ऐसी सुपुत्रियोंको प्राप्त करते हैं।

श्रेष्ठ पत्नी प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
नरः सुभार्यां लभते मनोज्ञाम्।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्यकार्य के करनेसे इस मनुष्यको श्रेष्ठ पत्नी प्राप्त होती है?

उत्तर– कृत्वा पुरा शीलवतिप्रशंसां,
दानार्चनादौ सुखदे सुलग्नाम्।
दृष्ट्वा ह्यतुष्यद्विनयान्वितां स्त्रीं, ीं,
श्रेष्ठां स भव्यो लभते सुशीलाम्।। १२५।।

अर्थ—जो पुरुष पहले जन्ममें शीलवती स्त्रियोंकी प्रशंसा करके संतुष्ट होता है अथवा दानपूजा आदि सुख देनेवाले कार्योंमें सदा काल लग्न रहनेवाली और अत्यंत विनयवती स्त्रीको देखकर जो संतुष्ट होता है ऐसे भव्य पुरुषको श्रेष्ठ और सुशील स्त्री प्राप्त होती है।

भावार्थ—शीलवती स्त्रियोंकी प्रशंसा करना, उनको देखकर प्रसन्न होना, उनके शीलगुणकी प्रशंसा फैलाना आदि कार्यों के करनेसे शील पालन करनेकी दृढता होती है। यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिये कि जो मनुष्य स्वयं शीलवान होता है, वही पुरुष शीलवती स्त्रियोंकी प्रशंसा किया करता है, और वही पुरुष धर्मकार्योंमें लीन रहनेवाली और पतिकी विनय करने वाली पतिव्रता स्त्रियोंको देखकर प्रसन्न हुआ करता है। जो पुरुष स्वयं शील पालन नहीं करता वह

कुशील पुरुष तो कुशीला स्त्रियोंको देखकर प्रसन्न होता है तथा वह कुशीलपुरुष शीलवती स्त्रियोंसे द्वेष रखता है, कुशीलपुरुष सदाकाल कुशीलको बढ़ानेका प्रत्यन किया करता है इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि शीलवान् पुरुष ही शीलवती स्त्रियोंकी प्रशंसा करता है धर्म पालन करनेवाली पतिव्रता स्त्रियोंको देखकर प्रसन्न होता है और ऐसे भव्य पुरुष को ही परलोकमें जाकर पतिव्रता श्रेष्ठपत्नी प्राप्त होती है।

यशस्वी होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माच्च पुण्याच्च वद प्रभो ! मे।
सुकीर्तियुक्तो भवतीह जीवः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव इस संसारमे यशस्वी होता है।

उत्तर– तीर्थंकराणां गुणकीर्तनाद्वा,
सुधार्मिकाणां गुरुसेवया वा।
सन्मानसत्कारविधेर्विशेषात्,
जीवो यशस्वी भवतीह विश्वे ।। १२६ ।।

अर्थ— जो पुरुष तीर्थंकरोंके गुणवर्णन करता है, धर्मात्मा पुरुषोंका विशेष आदर सत्कार करता है और वीतराग निर्ग्रंथ गुरुकी सेवा करता है ऐसा पुरुष इस संसारभरमें यशस्वी हो जाता है।

भावार्थ—संसारमें यशस्वी होना, व कीर्तिमान् होना बड़े पुण्यकर्मके उदयसे हुआ करता है। यशस्वी होने योग्य पुण्यकर्म तीर्थंकरपरमदेवके गुणवर्णन करनेसे, उनकी स्तुति करनेसे, उनकी पूजा करनेसे बंधको प्राप्त होता है। जहाँ तीर्थंकर परमदेव जन्म लेते हैं वहाँपर उनके गर्भमें आनेसे

छह महीने पहलेसे ही इंद्रकी आज्ञासे कुबेर प्रतिदिन तीनों समय रत्नोंकी वर्षा किया करता है तथा उसी समयसे देव-देवियाँ आकर माता पिताकी सेवा किया करती हैं। जन्म लेते ही इन्द्र अपनी सब विभूतिके साथ आता है और भगवान्‌को मेरु पर्वतपर ले जाकर क्षीरसमुद्रके जलसे उनका अभिषेक करता है। यह कितने बड़े पुण्यकर्मकी महिमा है। जो लौकांतिक देव अपने स्थानसे कभी बाहर नहीं आते वे भी तीर्थंकर परमदेवके विरक्त होनेपर आकर भगवान्‌की स्तुति करते हैं। तथा केवलज्ञानके समय स्वयं इन्द्र आकर समवसरण की रचना कराता है साथही प्रातिहार्य आदिकी विभूति प्रगट होती है। यह सब उन तीर्थंकरपरमदेवके अपार पुण्यकी महिमा है। ऐसे तीर्थंकर परमदेवकी भक्ति-स्तुति करनेवाला पुरुष अवश्य ही यशस्वी होता है। इसी प्रकार वीतराग निर्ग्रंथ गुरु भी महातपस्वी होते हैं, इन्द्र आदि देव भी उनकी सेवा किया करते हैं। उन गुरुओंकी सेवा करना, उनकी स्तुति करना, उनकी वैयावृत्य करना आदि सब कीर्ति फैलनेका कारण है। तथा धर्मात्मा पुरुषोंका आदर सत्कार करना, उनकी सेवा भक्ति करना आदि भी यश बढ़ानेवाला है। जो पुरुष इन सब कार्योंको करता है, श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करता है तथा धर्मप्रभावना करता है उस पुरुषका यश समस्त संसारमें फैल जाता है। तथा उनका वह यश चिरकाल तक बना रहता है।

सुख देनेवाले कुटुंब की प्राप्तिका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
सुखप्रदं ना लभते कुटुम्बम्॥

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे इस जीवको सुख देनेवाला कुटुंब प्राप्त होता है?

उत्तर- यो यस्य कस्यापि कुटुम्बिनः कौ,
कृत्वा मिथो वैरविरोधशांतिम्।

दत्वा धनादिं सुखिनं च तुष्येत्,
प्राप्नोति योग्यं सुखदं कुटुम्बम् ।। १२७ ।।

अर्थ—जो पुरुष किसी भी कुटुंबके परस्पर होनेवाले वैर-विरोधको शांत कर देता है व किसी दुःखी कुटुंबको धनादिक देकर संतुष्ट करता है अथवा किसी सुखी कुटुंबको देखकर संतुष्ट होता है ऐसा पुरुष परलोकमें जाकर योग्य और सुख देनेवाले कुटुंबको प्राप्त होता है।

भावार्थ—योग्य और सुख देनेवाले कुटुंबके प्राप्त होनेसे यह जीव सुखी रहता है। यदि संतान व भाईबंधु अथवा स्त्री आदि कोई भी अपने कुटुंबमें अयोग्य होता है तो उसके निमित्तसे सब घर व कुटुंब दुखी रहता है। दुखी होनेपर प्रायः धार्मिक क्रियाएँ भी छूट जाती हैं। यदि वही कुटुंब योग्य होता है तो घरभरको सुख मिलता है और सुखी होनेसे धार्मिक क्रियाएँ भी बिना किसी विघ्नके पूर्ण हो जाती हैं। इसलिये योग्य और सुख देनेवाले कुटुंबका मिलना भी पुण्यकर्मसे प्राप्त होता है। जो पुरुष दूसरोंको योग्य बनाता रहता है, उनके परस्परके बैर विरोधको शांत करता रहता है, धार्मिक शिक्षा देता रहता है, धर्मात्मा पुरुषोंको धन वस्त्र आदि देकर सुखी बनाता है, तथा ऐसे सुखी धर्मात्माओंको देखकर संतुष्ट होता है, जो धर्मात्मा पुरुषोंकी सब प्रकारसे सहायता करता रहता है, ऐसे पुरुषको परलोकमें जाकर अवश्य ही सुयोग्य कुटुंब प्राप्त होता है।

संयमी होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।
सुसंयमी को भवतीह जीवः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस

पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव इस संसारमें आकर संयमको धारण करता है?

उत्तर– यो वागतो देवगतेश्च मातुः,
पितुः कृता भक्तिवशात्सुसेवा।
सत्सङ्गतिर्येन शिवप्रदा हि,
स संयमी स्याद् गुणदोषवेदी।। १२८ ।।

अर्थ—जो जीव देवगतिसे आता है, भक्ति पूर्वक माता-पिताकी सेवा करता है, और मोक्ष देनेवाले धर्मात्मा सज्जनोंकी संगति करता है ऐसा गुण और दोषोंको जाननेवाला पुरुष अवश्य ही संयम धारण कर संयमी होता है।

भावार्थ—संयम धारण करना मोक्षका कारण है, और इसीलिए ऐसा यह संयम बहुत बड़े पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त होता है। पांचों इंद्रिय और मनको वश करना इंद्रिय संयम है तथा छहों कायके जीवोंकी रक्षा करना प्राणिसंयम है। यह संयम सज्जातिमें उत्पन्न होनेवाले उत्तम मनुष्योंको ही प्राप्त होता है, और इसीलिए यह बहुत अधिक पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त होता है। जो जीव पहले जन्ममें भगवान् अरहंतदेवकी भक्ति करते हैं, उनकी पूजा करते हैं, वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंको दान देते हैं, श्रावक धर्मको पालन कर मुनिव्रत धारण करते हैं और फिर तपश्चरण कर देवगतिको प्राप्त होते हैं ऐसे जीव स्वर्गसे आकर उत्तम मनुष्य हो संयम धारण कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। इसके सिवाय मातापिताकी सेवा करना, वीतराग गुरुओंकी सेवा करना, धर्मात्माओंके साथ रहना और सदाकाल धर्मकार्य करते रहना भी देवगतिके कारण हैं तथा इस प्रकार देवगति प्राप्त करनेवाले जीव भी उत्तम मनुष्य होकर संयम धारण कर लेते हैं।

शोकरहित सुखी होने का कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।
शोकेन मुक्तश्च सदा सुखी स्यात् ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्य करने से यह जीव शोक रहित सुखी होता है ?

उत्तर– बिम्बप्रतिष्ठां गुरुदेवसेवां,
विलोक्य तुष्येज्जिनधर्मवृद्धिम् ।
धर्मोत्सवं धार्मिकजीवलोकान् ।
स शोकमुक्तश्च सदा सुखी स्यात् ।। १२९ ।।

अर्थ—जो धर्मात्मा मनुष्य बिम्बप्रतिष्ठाको देखकर प्रसन्न होता है; देव-धर्म-गुरुकी पूजा, भक्ति, सेवा आदिको देखकर प्रसन्न होता है, जिनधर्मकी वृद्धि और अनेक धर्मोत्सवोंको देखकर तथा धर्मात्मा लोगोंको देखकर प्रसन्न होता है ऐसा मनुष्य परलोकमें जाकर शोकसे रहित होकर सदा काल सुखी रहता है।

भावार्थ—दुख:शोक आदिकी प्राप्ति पापकर्मके उदयसे होती है तथा पापकर्मोंका नाश धर्मकार्योंके करनेसे होता है। भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना, जिनालय बनवाना, जिनप्रतिमा बनवाना, उनकी प्रतिष्ठा करना, व दूसरोंके द्वारा कराई हुई प्रतिष्ठाओंको देखना, पात्रदान देना, गुरुसेवा करना, जिनधर्मका उपदेश देकर जिनधर्मकी वृद्धि करना, अन्यमतोंका खंडन कर अपने जिनधर्मकी प्रभावना करना, रथोत्सव करना-कराना व देखना, धर्मात्मा पुरुषोंको दान देना, उनके स्वाध्याय आदिका प्रबंध कर देना, जैनग्रंथोंको लिखाकर देना, स्वाध्यायशाला बनवाना, तीर्थयात्रा करना आदि सब धर्मकार्य हैं। इनके करनेसे पापकर्मोंका नाश होता है, तथा पुण्यकर्मोंकी प्राप्ति होती है। इसप्रकार पापकर्मोंके नाश हो जानेसे यह जीव अगले जन्ममें शोक रहित हो जाता है और उस पुण्यकर्मका उदय होने से

सदाकाल सुखी रहता है। यही समझकर भव्यजीवोंको सदाकाल अपना समय धर्मकार्योंमें ही व्यतीत करते रहना चाहिए।

यह जीव अनेक जीवोंका स्वामी किस कारण से होता है यही दिखलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
स्वामी भवेन्ना बहुजीवकानाम्।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे अनेक जीवोंका स्वामी होता है।

उत्तर- देवस्य धर्मस्य गुरोश्च सेवां,
यो धार्मिकाणां विनयं च कृत्वा।
दीनाय दत्वैव गृहान्नवस्त्रं,
तुष्येत्स मृत्वा बहुजीवकर्ता।। १३०।।

अर्थ—जो पुरुष देव-शास्त्र-गुरु और धर्म की सेवा करके संतुष्ट होता है, अथवा जो धर्मात्मा पुरुषोंका आदर-सत्कार व उनकी विनय कर संतुष्ट होता है और जो धनहीन धर्मात्माओं को घर, अन्न, वस्त्र आदि देकर संतुष्ट होता है ऐसा पुरुष मरकर अनेक जीवोंका स्वामी होता है।

भावार्थ—इस संसारमें राजा-महाराजा व बड़े-बड़े सेठ लोग ही अनेक जीवोंके स्वामी होते हैं और ऐसे महापुरुष श्रेष्ठ पुण्यकर्मसे ही होते हैं। इस संसारमें सबसे श्रेष्ठ पुण्यकर्म है भगवान जिनेन्द्रदेवकी सेवाभक्ति करना है। इसका भी कारण यह है कि भगवान् जिनेन्द्रदेव सर्वोत्कृष्ट देव हैं, इन्द्रादिक देव भी सदाकाल उनकी सेवा किया करते हैं। यद्यपि वे जिनेन्द्रदेव वीतराग हैं तथापि उनके शुद्ध आत्मा के प्रभाव से सेवाभक्ति करनेवाले पुरुषके परिणाम भी शुद्ध हो जाते है। उन शुद्ध परिणामोंके निमित्त से वह जीव श्रेष्ठ पुण्यकर्मोंका बंध

कर लेता है और उस पुण्यकर्मके उदयसे राजा-महाराजा होकर अनेक जीवोंका स्वामी होता है। अथवा जो पुरुष धर्मात्मा पुरुषोंको अनेक प्रकार के दान देता है वह भी परलोकमें जाकर अनेक जीवों का स्वामी होता है। यही समझकर प्रत्येक भव्यजीवको प्रतिदिन भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिये और मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका आदि समस्त भव्यजीवोंको यथोचित दान देना चाहिए। इस संसारमें पात्रोंको दान देना ही भूरि संपत्तिका कारण है।

नीरोग शरीर प्राप्त होने का कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– **कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे।**
नीरोगदेहं लभते मनुष्यः।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि इस मनुष्यको किस-किस कारणसे नीरोग शरीर प्राप्त होता है।

उत्तर– **सरोगिपात्राय किलौषधान्नं,**
भक्त्या प्रदत्तं विमलासनादि।
सरोगिनः साधुजनस्य येन,
सेवा कृता स्यात्स सुखी ह्यरोगी।। १३१ ।।

अर्थ—जो मनुष्य मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारों प्रकारके रोगी पात्रोंको भक्तिपूर्वक औषध-अन्न आदि देता है व निर्मल पवित्र आसन देता है अथवा जो रोगी मुनियोंकी सेवा सुश्रूषा करता है वह जीव अगले भवमें जाकर नीरोग और सुखी होता है।

भावार्थ—रोगी जीवोंको औषधिदान देना, उनको नीरोग बनाना है। जो रोगी नीरोग हो जाता है वह जन्मभर सुखी रहता है। यदि कोई साधु, अर्यिका, श्रावक रोग युक्त हो तो उनको औषधि देकर नीरोग करना विशेष पुण्यका कारण होता है। इसका भी कारण यह है

कि रत्नत्रयको धारण करनेवाला चारों प्रकारका संघ नीरोग होनेपर रत्नत्रयकी वृद्धि करता है और अपने आत्माका कल्याण करता है। यदि वह रोगी ही बना रहता तो वह रत्नत्रय वृद्धि करनेसे व आत्मकल्याण करनेसे वंचित रह जाता है। औषधि प्राप्त हो जाने से वह नीरोग होकर फिर आत्मकल्याणमें लग जाता है। अतएव औषधि देनेवाला भी उस आत्मकल्याणमें सहायक बन जाता है और इस प्रकार वह विशेष पुण्यका भागी हो जाता है। उस विशेष पुण्यसे ही वह अगले जन्ममें नीरोग और सुखी रहता है। इसी प्रकार रोगी मुनियोंकी या अन्य व्रतियोंकी सेवा सुश्रूषा करना भी उनके आत्मकल्याणमें सहायता देना है। इसीलिए वह भी विशेष पुण्यका भागी होकर अगले जन्ममें वह भी सुखी और निरोग रहता है। अतएव समर्थ पुरुषोंको रोगियोंके लिए औषधि देनेका प्रबंध अवश्य करते रहना चाहिए। साथमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वह औषधि शुद्ध और पवित्र हो, मद्य, मांस व आसव-अरिष्ट आदिसे बनी न हो। इसका भी कारण यह है कि मद्य व मांस आदि से बनी हुई औषधि देनेसे अत्यंत पापका भागी होना पड़ता है, और वह पाप पुण्यको भी पापरूपमें परिणत कर देता है। अतएव शुद्ध और पवित्र औषधि देना ही सर्वथा उचित है और पुण्यका कार्य है।

नीतिमान् और बलवान् होने का कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।
नीत्या बलिष्ठो भवतीह जीवः ।।

अर्थ—हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे नीतिमान् और बलवान् होता है ?

उत्तर- रक्षा कृता येन च दीनजन्तो-
र्वाऽशक्तजन्तोश्च सुखाय यत्नः ।

क्षुधातृषार्त्ताय जलान्नदानं,
बलेन नीत्यापि बली भवेत्सः ।। १३२ ।।

अर्थ— जो मनुष्य दीन-दुखी जीवोंकी रक्षा करता है, असमर्थ जीवोंको सुख पहुँचानेका प्रयत्न करता है व भूखे-प्यासे जीवोंको अन्न-जल देता रहता है, ऐसा जीव परभवमें जाकर शरीरसे भी बलवान् होता है और नीतिके पालन करनेमें भी बलवान् होता है।

भावार्थ—इस संसारमें छोटे-मोटे जितने प्राणी हैं उन सबकी रक्षा करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। तथा जो जीव अत्यंत दीन व दुःखी हैं उनकी रक्षा करना तो प्रत्येक मनुष्यका विशेष और आवश्यक कर्तव्य हो जाता है। इसीप्रकार असमर्थ जीवोंको सुख पहुँचाना व भूखे जीवोंको शुद्ध जल देना भी पुण्यका कार्य है। भूखे प्यासे जीवोंको अन्न-जल देनेसे धनादिककी वृद्धि होती है। तथा निर्बलोंकी सहायता करनेसे बलकी प्राप्ति होती है। यही कारण है कि दीन दुखी जीवोंकी रक्षा करनेसे, उनको सुख पहुँचानेसे व अन्न जलका दान देनेसे इस जीव को शारीरिक शक्ति भी प्राप्त होती है और नैतिक शक्ति भी प्राप्त होती है।

समताभाव प्राप्त होनेका कारण बताते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।
स्याद्देव ! जीवः समतास्वभावी ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव समतारूप परिणामोंको प्राप्त करलेता है।

उत्तर– श्राद्धोत्तमादेर्विनयं च कृत्वा,
यः शान्तमुद्रां जिनदेवसाधोः ।
विलोक्य तुष्येत्सुजनात्सधर्मा,
स्यात्कौ स मृत्वा समतास्वभावी ।। १३३ ।।

अर्थ—जो धर्मात्मा पुरुष उत्तम श्रावकोंकी विनय कर संतुष्ट होता है अथवा जिनदेव और वीतराग गुरुकी शांतमुद्रा देखकर प्रसन्न होता है व सज्जन पुरुषोंको देखकर प्रसन्न होता है ऐसा पुरुष मरकर इसी पृथ्वीपर समतारूप परिणामोंको धारण करनेवाला होता है।

भावार्थ—सुख दुःख दोनोंमें समान परिणाम रखना, सोना-मिट्टी दोनोंको समान मानना, इष्टसंयोग वा इष्टवियोगमें समान परिणाम धारण करना व अनिष्टसंयोग व अनिष्टवियोगमें समान परिणाम धारण करना समता कहलाती हैं। इसप्रकार समतारूप परिणामोंको धारण करना बड़े पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त होता है। इसका भी कारण यह है कि जहाँपर समतारूप परिणाम होते हैं वहाँपर लोभ रागद्वेष आदि सब नष्ट हो जाते हैं तथा इन सब विकारोंके नष्ट होनेसे पापरूप कर्मोंका बंध नहीं होता है। इसलिए समतारूप परिणामोंको धारण करना पुण्यकर्म के उदयसे होता है और पुण्यकर्मोंका ही बंध करता है। ऐसा यह समता परिणाम मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविकाओंकी विनय करने से, रत्नत्रयको धारण करनेसे, देव-गुरुकी शांतमुद्राका दर्शन करनेसे और रत्नत्रयको धारण करनेवालोंकी संगति करनेसे ही प्राप्त होता है। यही समझ कर रत्नत्रयको धारण करना प्रत्येक भव्यजीवका कर्तव्य है।

धर्मात्मा होने का कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
सुधार्मिकः को भवतीह जीवः॥

अर्थ— हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव धर्मात्मा हो जाता है?

उत्तर– धर्मोत्सवं धर्मरतान् जनान् यो–,
दयान्वितान् वा व्रतशीलपूतान्।

विलोक्य तुष्येत्स्वगुरुं कृपाब्धिं,
स धार्मिको ना प्रभवेदमुत्र ।। १३४ ।।

अर्थ—जो पुरुष किसी धर्मोत्सवको देखकर प्रसन्न होता है, जो अत्यन्त दयालु पुरुषोंको देखकर प्रसन्न होता है, व शीलव्रतोंको पालन कर पवित्र होनेवाले पुरुषोंको देखकर प्रसन्न होता है, अथवा कृपाके सागर ऐसे वीतराग निर्ग्रंथ परमगुरुको देखकर जो अत्यन्त प्रसन्न होता है ऐसा मनुष्य परलोकमें जाकर भी धर्मात्मा ही होता है।

भावार्थ—जो जीव इस लोकमें रहकर सदाकाल धर्मकार्य करता रहता है व धर्ममें लीन रहता है वह परलोकमें भी जाकर धर्मात्मा ही होता है। धर्मकार्य करनेसे आत्मा भी धर्मरूप ही हो जाती है और इसीलिए वह अगले जन्ममें भी धर्मात्मा होता है। धर्मकी प्रभावना करनेवाले अनेक प्रकारके उत्सव देखना व करना-कराना, जिनालय बनवाना, जिनप्रतिमा बनवाना, प्रतिष्ठामें आये हुए अनेक धर्मात्माओंको देखकर प्रसन्न होना, दयालु व्रतियोंको देखकर प्रसन्न होना, उनकी सेवा सुश्रूषा करना, देव-गुरुओंके दर्शन कर प्रसन्न होना, उनकी पूजा करना, गुरुओंकी वैयावृत्त्य करना, तीर्थयात्रा करना आदि सब धर्मकार्य हैं। इनमें लीन रहनेवाला पुरुष अगले जन्ममें भी अवश्य ही धर्मात्मा होता है।

निर्भय होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
सुनिर्भयो चान्यभवे भवेन्ना ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे परलोकमें जाकर निर्भय हो जाता है?

उत्तर– दीनाय येनान्नजलाभयादि,
कुभूपदुष्टादिनजनैर्हताय ।
दत्वा कृता दुःखिजनस्य रक्षा,
स निर्भयो ना प्रभवेदमुत्र ।। १३५ ।।

अर्थ—जो पुरुष किसी दुष्ट राजा व अन्य दुष्ट क्रोधी आदि जीवोंके द्वारा सताये हुए दीन दुःखियोंको अन्न-जल अभय आदि देकर उन दुखी जीवोंकी रक्षा करता है वह मनुष्य परलोकमें जाकर अवश्य ही निर्भय होता है।

भावार्थ—किसी भी दुष्टके द्वारा सताया हुआ मनुष्य सदाकाल भयभीत रहता है। जो भयभीत रहता है वह कभी सुखी नहीं हो सकता। प्रायः दुष्ट लोग व दुष्ट राजा लोग दीन-दुखियोंको ही सताया करते हैं। ऐसे दीन दुखियोंको जो आश्वासन दिया करते हैं, उनकी रक्षा करते हैं, उनको अन्न-जल दिया करते हैं व उनको अपनी शरणमें लेकर अभयदान दिया करते हैं, अथवा अपने-अपने कर्मके उदयसे दुखी हुए अन्य जीवोंकी भी रक्षा किया करते हैं, उनके दुःख दूर करते हैं और उनको सब प्रकारसे निर्भय बना देते हैं ऐसे मनुष्य परलोकमें जाकर भी निर्भय होते हैं।

उदार होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्मिन सुकार्ये हि कृते विशेषे ।
चित्तं ह्युदारं च भवेन्नराणाम् ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किन-किन शुभ कार्योंके करनेसे मनुष्योंका हृदय उदार हो जाता है?

उत्तर– सत्पात्रदानादनुमोदनाद्वा,
मिथ्यादृशां वा शिवमार्गदानात् ।

दत्त्वान्नदानं हृदि हर्षयोगाद्,
भवेन्नराणां हृदयं सुदारम् ।। १३६ ।।

अर्थ—जो मनुष्य वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंको आहार दान देता है, व उसकी अनुमोदना करता है, अथवा जो मिथ्यादृष्टि जीवोंको मोक्ष मार्गमें लगाता है तथा गुरुजनों को आहारदान देकर अपने हृदयमें हर्ष मानता है, ऐसा मनुष्य परलोकमें जाकर उदार हृदयवाला होता है।

भावार्थ—दान तो अनेक मनुष्य दिया करते हैं,परन्तु वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंको दान देनेवाले बड़े पुण्यकर्मके उदयसे ही होते हैं। इसका भी कारण यह है कि वीतराग निर्ग्रंथ मुनि न तो कुछ परिग्रह ही रखते हैं और न कभी किसीसे किसी भी पदार्थकी याचना करते हैं। रत्नत्रयको व विशेषकर सम्यक्चारित्र को पूर्णरीतिसे प्राप्त करनेके लिये वे आहार अवश्य लिया करते हैं। सम्यक्चारित्रकी पूर्णता बिना शरीरके नहीं हो सकती तथा बिना आहारके शरीर नहीं टिक सकता। अतएव दिन में एकबार व दो, चार, दश उपवास करनेके अनंतर श्रावकोंके आहारके समय आहारके लिये मौन धारण कर श्रावकोंकी बस्तीमें जाते हैं। तथा जिस मार्गसे व जहाँतक सर्वसाधारण लोग आते जाते हैं वहीं तक जाते हैं। यदि किसी श्रावकने उनका प्रतिग्रह कर लिया तो उसके यहां आहार लेलेते हैं अन्यथा फिर अपने तपश्चरणके स्थान पर चले जाते हैं। ऐसी निरीहवृत्तिको धारण करनेवाले मुनियोंको आहार देनेके परिणाम देव-शास्त्र व गुरुपर अटल श्रद्धान रखनेवाले जीवोंके ही होते हैं। तथा ऐसे ही जीव उस आहारदान की अनुमोदना कर सकते हैं। व ऐसे आहारदानको देकर प्रसन्न हो सकते हैं। ऐसे मनुष्य अपनी आयु पूर्ण कर भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं व देव होते हैं तथा वहाँसे आकर अत्यंत उदार हृदयको धारण करनेवाले महादानी होते हैं और अंतमें समस्त विभूतिका त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर तपश्चरणसे मोक्ष प्राप्त करलेते हैं।

वक्ता होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ना।
धीमान् भवेद्वान्यभवे सुवक्ता॥

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किन-किन पुण्यकार्योंके करनेसे यह जीव परलोकमें जाकर बुद्धिमान् वक्ता होता है?

उत्तर– विद्याप्रदानं विदुषां च सेवा,
येन प्रशंसा निजबोधकर्तुः।
विद्यार्थिने वा जिनशास्त्रदानं,
कृतं स वक्तान्यभवे भवेद्धि॥ १२७॥

अर्थ—जो मनुष्य इस जन्ममें अनेक विद्यार्थियोंको विद्या दान देता है, जो विद्वानोंकी सेवा करता है, अपने को आत्मज्ञान करानेवाले गुरुओंकी प्रशंसा करता है, और जो विद्यार्थियोंको पढ़नेके लिए जैनशास्त्रोंको देता है ऐसा पुरुष परलोकमें जाकर यथार्थ बोलनेवाला वक्ता होता है।

भावार्थ—विद्याका दान देनेसे आत्मामें विद्याका संस्कार होता है, जो पुरुष स्वयं विद्याका दान नहीं दे सकता उसको विद्याके पढ़नेमे सहायता देनी चाहिये। तीव्रबुद्धि विद्यार्थियोंके लिए पढ़नेके सब साधन इकट्ठे कर देने चाहिये। तथा विद्वानोंकी सेवा करते रहना चाहिये। अपने गुरुकी प्रशंसा करते रहना चाहिये। जिन ग्रंथोंको लिख-लिखाकर दान देना चाहिये। साथ ही यह ध्यानमें रखना चाहिये कि जैन शास्त्रोंका पठन-पाठन करना ही विद्याध्ययन करना है, क्योंकि आत्माका कल्याण जैनशास्त्रोंके पठन-पाठनसे ही होता है। अन्य शास्त्रोंके पठन-पाठन करनेसे आत्माका कल्याण कभी नहीं होता, किन्तु अन्य शास्त्रोंके पठन-पाठनसे यह जीव संसारमार्गमें लग जाता है। इसलिये

जो पुरुष जैन शास्त्रोंके पठन-पाठनमें सहायता पहुँचाता है, जैनशास्त्रोंके विद्वानोंकी सेवा सुश्रूषा करता है, व जैन शास्त्रोंको पढ़ाता-सुनाता है वह पुरुष परलोकमें जाकर अवश्य ही उत्तम वक्ता होता है।

स्वतंत्र होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- **कस्मिन् सुपुण्ये च कृते विशेषे।**
जीवः स्वतंत्रोपि सुखी भवेत्कौ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव स्वतंत्र और सुखी होता है।

उत्तर- **कुटुम्बहीनाय तदात्मशान्तये,**
बोधं धनादिं सुखदं च दत्वा।
वस्त्रान्नहीनाय तदेव तुष्ये-
ज्जीवः स्वतंत्रः स भवेदमुत्र।। १३८।।

अर्थ—जो मनुष्य कुटुंबरहित मनुष्योंकी आत्माओंको शांत करनेके लिये उनको समझाता है, उनके लिए सुखके साधन धन-धान्य आदि पदार्थोंको देता है तथा अन्न वस्त्ररहित मनुष्योंको अन्न वस्त्र देकर अत्यंत संतुष्ट होता है ऐसा मनुष्य परलोकमें जाकर अवश्य ही स्वतंत्र और सुखी होता है।

भावार्थ—आश्रयहीन जीवोंको आश्रय देना, दुखी जीवोंका दुःख दूरकर उनको सुख पहुँचाना, भूखे-प्यासोंको अन्न-जल देना, वस्त्र रहित संसारी जीवों को वस्त्र देना, मिथ्या ज्ञानियोंको सम्यग्ज्ञान प्रदान करना, अधर्ममें लगे हुए जीवोंको धर्ममें लगाना, व अन्य भी ऐसे कार्य पुण्य बढ़ाने वाले हैं। ऐसे पुण्यकार्य करनेसे यह जीव परलोक में जाकर किसी के अधीन नहीं रहता, स्वतंत्र होकर सुखी होता है तथा अंतमें समस्त कर्मोंको नष्ट कर परम सिद्धपरमेष्ठी बन जाता है।

सुंदर शरीरकी प्राप्तिका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।
ना सुन्दराङ्गो भवतीह मृत्वा ।।

अर्थ—हे देव ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पुण्यकार्यके करने से परलोकमें जाकर सुन्दर शरीर धारण करता है ?

उत्तर— स्यात्सर्वजीवः शुभदेहधारी,
येषां सदिच्छा गुरुदेवभक्तिः ।
दृष्ट्वान्यदेहं भुवि रोगहीनं,
तुष्ये त्स मृत्वा भुवि सुन्दराङ्गः ।।१३६।।

अर्थ—इस संसारमें समस्त जीव सुंदर शरीरको धारण करने वाले हों ऐसी श्रेष्ठ इच्छा जिनको सदाकाल बनी रहती है, जो सदाकाल भगवान् जिनेन्द्रदेव व वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंकी भक्ति किया करते हैं और जो दूसरोंके नीरोग शरीरको देखकर संतुष्ट होते हैं ऐसे मनुष्य मरकर परलोकमें उत्तम सुन्दर शरीरको धारण करते हैं।

भावार्थ—उत्तम और सुंदर शरीरका प्राप्त होना भी बड़े भारी पुण्यकर्मके उदयसे होता है। जो पुरुष भगवान् जिनेंद्रदेव की भक्ति करता है, उनकी पूजा करता है, उनका ध्यान करता है तथा उनके कहे हुए शास्त्रोंकी आज्ञानुसार अपनी प्रवृत्ति रखता है, वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंकी भक्ति करता है, उनकी सेवा सुश्रूषा करता है, तथा जो पुरुष सदाकाल समस्त जीव के सुखी होनेकी भावना रखता है ऐसा जीव श्रेष्ठ पुण्यकर्मके उदयसे परलोकमें जाकर सुन्दर व मनोहर शरीरको धारण करता है।

आदर-सत्कार प्राप्त करनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
सन्माननीयोऽन्यभवेज्जनोऽयम्॥

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे दूसरे जन्ममें भी जाकर मान्य व आदर-सत्कार करने योग्य होता है?

उत्तर– येनात्मभक्त्या गुरुदेवसेवा,
स्नेहप्रवृत्तिश्च मिथः कृता हि।
तद्वाक् प्रमाणं मनसा कृतं वै,
सन्माननीयोऽन्यभवे भवेत्सः॥ १४०॥

अर्थ–जो पुरुष अपने आत्मभक्तिसे भगवान् जिनेन्द्रदेव और वीतराग निर्ग्रंथ गुरुकी सेवा करता है तथा उन्हीं देव-शास्त्र-गुरुओंके वचनोंको मन-वचन-कायसे प्रमाण मानता है, समस्त जीवोंमें परस्पर प्रेममय प्रवृत्ति रखता है ऐसा पुरुष परलोकमें जाकर श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा माननीय पुरुष होता है।

भावार्थ—सज्जन पुरुष भी जिसको माने, जिसका विनय करे उसको माननीय कहते हैं। जो पुरुष पूज्य पुरुषोंकी पूजा किया करता है, वीतराग सर्वज्ञ देवके वचनोंको प्रमाण मानकर उन्हींके अनुसार अपनी प्रवृत्ति करता है। जो देव-शास्त्र-गुरुकी आज्ञा उल्लघंन कभी नहीं करता और न कभी किसीको नीचा दिखानेका प्रयत्न करता है। अथवा जो पुरुष वैर विरोध करानेका कभी भी प्रयत्न नहीं करता, जा सदा काल सबके साथ अनुरागरूप प्रवृत्ति रखता है। ऐसा पुरुष मरकर परलोकमें भी वैभवशाली माननीय पुरुष होता है, जिसे सब लोग मानते हैं, सब लोग जिसका विश्वास करते हैं और सब लोग जिसको बड़ा मानते हैं।

ज्ञानी व्रती होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।
ज्ञानी व्रती स्यान्मनुजोऽन्यलोके ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करने से यह जीव परलोकमें भी जाकर ज्ञानी और व्रती मनुष्य होता है ?

उत्तर– येन क्रियायुक्तनरप्रशंसाऽ–
नाचारवृत्तेश्च कृता प्रणिन्दा ।
फलं व्यथादं व्यसनस्य बुध्वा !
ज्ञानी व्रती स्यादिति भाग्यभाक् सः ।। १४१ ।।

अर्थ—जो पुरुष सातों व्यसनोंको अत्यंत दुःख देनेवाले समझ कर अनाचार प्रवृत्तियोंकी निंदा करता है, व्रत-उपवास व जिनपूजा, पात्रदान आदि क्रियायुक्त पुरुषोंकी प्रशंसा किया करता है ऐसा भाग्यशाली पुरुष परलोकमें भी जाकर ज्ञानी और व्रती पुरुष होता है।

भावार्थ—जुआ, चोरी, शिकार, वेश्यासेवन, परस्त्रीसेवन, मांस-मद्यसेवन आदि सब व्यसन कहलाते हैं। ये व्यसन सब दुःख देनेवाले है। इन व्यसनोंके सेवन करनेसे इस लोकमें भी दुःख मिलता है और परलोकमें भी नरकादिकके दुःख भोगने पड़ते हैं। यही समझ कर जो पुरुष इन समस्त व्यसनोंका त्याग कर अपनी अनाचार रूप प्रवृत्तिका सर्वथा त्याग कर देता है और जो सदाकाल शास्त्रोक्त क्रियाकांडका पालन किया करता है अर्थात् जो प्रतिदिन भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा किया करता है, मुनियोंको दान दिया करता है, व्रत-उपवास किया करता है, पर्वके दिनोंमें विशेष उत्सव किया करता है, रथोत्सव आदिके द्वारा धर्मकी प्रभावना किया करता है शास्त्रोंका स्वाध्याय किया करता है और जो सदाकाल धर्मात्मा पुरुषोंकी

सेवा किया करता है ऐसा पुरुष परलोकमें भी जाकर ज्ञानी और व्रती पुरुष होता है, तथा भाग्यशाली होता है।

भाई-बंधुओंमें प्रेम होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
प्रीतिर्भवेद् बंधुजने मिथः कौ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव अपने भाई-बंधुओंका प्रेमपात्र बन जाता है।

उत्तर– श्रीदां सुशांतिं भुवि कारयित्वा,
बंधोर्मिथः स्नेहकरीं प्रवृत्तिम्।
विलोक्य तुष्येत्प्रियबांधवानां,
स्नेहो मिथः स्यादिति तस्य कृत्यात्।। १४२।।

अर्थ—जो पुरुष इस संसारमें लक्ष्मीको बढ़ानेवाली शांति स्थापन कर देता है, जो भाई-भाई में परस्पर स्नेह बढ़ानेवाली प्रवृत्तिको बढ़ाता रहता है और परस्पर प्रेमसे रहनेंवाले भाई-बंधुओंको देखकर संतुष्ट हुआ करता है वह पुरुष इन श्रेष्ठ कार्योंसे अपने भाई-बंधुओंसे परस्पर स्नेहको धारण करनेवाला होता है।

भावार्थ—भाई-बंधुओंमें परस्पर प्रेमके साथ रहना सौभाग्य की बात है। यह सौभाग्य उसीको प्राप्त होता है जो पहले जन्ममें किसीके लिये कभी कोई उपद्रव नहीं करता। जो सबके साथ शांति का बर्ताव रखता है, अन्य लोगोंमें भी शांति स्थापन कराता है, भाई-भाई में प्रेम कराता है, धर्मात्माओंको देखकर प्रसन्न होता है, धर्मात्माओंकी सेवा करता है और धर्मात्माओंके अनुरागसे प्रसन्नता प्रगट करता है। ऐसा पुरुष परलोकमें भी जाकर सबका प्रेमपात्र होता है और सबके साथ प्रेमसे रहता है।

बिछुड़े हुए पुत्रकी प्राप्तिका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- वियोगिपुत्रस्य भवेत्सुलाभः ।
कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे पुत्रका वियोग होने पर भी परदेश चले जाने पर भी उसकी प्राप्ति हो जाती है ?

उत्तर- दत्ता धृतिः पुत्रवियोगिने यै-
स्तत्पुत्रलाभाय कृतः प्रयत्नः ।
संयोगवार्ता हि कृता न चान्या-
ऽस्माद् योग्यकृत्यादिति पुत्रलाभः ।। १४३ ।।

अर्थ—किसी भी पुरुषके पुत्रका वियोग होने पर अर्थात् किसी भी कारणसे उसके बाहर वा परदेश चले जानेपर जो उसके लिए धैर्य बंधाता है, उसकी खोज करनेके लिए प्रयत्न करता है और जो सदाकाल उसके मिल जानेकी ही बात कहता है, उसके विपरीत बात कभी नहीं कहता ऐसा पुरुष अपने इन योग्य कार्य करनेके कारण अपने बिछड़े हुए पुत्रको भी प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—कभी-कभी किसीका पुत्र अप्रसन्न होकर घरसे निकल जाता है, परदेश चला जाता है, अथवा उसे कोई बहकाकर ले जाता है वा चुराकर ले जाता है, अथवा साथसे छूट जाता है अथवा और किसी प्रकारसे बिछुड़ जाता है। ऐसी अवस्थामें उसके माता-पिता व भाई-बंधुओंको धैर्य देना चाहिये, उसको खोज करनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए, यदि वह पुत्र मिल जाने पर भी न आता हो तो उसको समझा बुझाकर ले आना चाहिये और इस प्रकार उसके माता-पिता व भाई बंधुओंको संतुष्ट करना चाहिये जो मनुष्य इस प्रकारका प्रयत्न करते हैं ऐसे पुरुषोंके पुत्रादिकोंका वा भाई-बंधुओंका वियोग कभी होता

ही नहीं है। यदि किसी कारणसे हो भी जाय तो वह बिछुड़ा हुआ भाई वा पुत्र अपने आप आजाता है। ऐसे पुरुषोंको इष्ट वियोगका दुःख कभी नहीं होता है।

पिता-पुत्रके स्नेहका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! स्यात्।
स्नेहः सुपुत्रस्य मिथः पितुश्च ।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे पितापुत्रमें परस्पर स्नेह रहता है।

उत्तर- पितुः सुपुत्रस्य मिथः प्रमोदं,
दृष्ट्वेति तुष्येद्विनयोपचारम्।
विनाश्य वैरं ह्यकरोत्प्रशांतिं,
स्नेहो द्वयोः स्यात्सुकृतेः प्रतापात् ।। १४४ ।।

अर्थ—जो पुरुष पिता-पुत्रके परस्परके प्रमोदको देखकर संतुष्ट होता है, उनके विनय और उपचारको देखकर प्रसन्न होता है अथवा किसी पिता-पुत्रके परस्परके विरोधको मिटाकर जो शांति स्थापन कर देता है ऐसा पुरुष अपने पुण्यकार्योंके प्रतापसे पिता-पुत्र दोनोंके साथ प्रेम धारण करता है।

भावार्थ—पिता-पुत्र दोनोंके साथ अनुराग पूर्वक बर्ताव रखना, पिताकी सेवा सुश्रूषा करना उनकी आज्ञाका पालन करना, अपने कर्तव्यका पालन कर पिताको प्रसन्न रखना तथा पुत्रका लालन पालन करना, उसको अनुचित कार्योंसे रोकना पढ़ाना, लिखाना, व्यापार आदि सिखाना तथा उसको धार्मिक बनाना आदि समस्त क्रियाएं कुटुंबके सुखके साधन हैं। जो घरका स्वामी अपने कुटुंबके साथ इस प्रकारका बर्ताव रखता है वह स्वामी तथा उसका वह कुटुंब सदाकाल सुखी रहता है। ऐसा सुख बड़े भाग्यसे मिलता है। जो जीव पहले

जन्ममें कौटुम्बिक प्रेमको देखकर प्रसन्न होता है, किसी भी कुटुंबमें वैर विरोध नहीं होने देता, होनेपर बहुत शीघ्र उसे मिटा देता है और जो सेवा, सुश्रूषा, परोपकार आदिके द्वारा सबका प्रिय भाजन बना रहता है ऐसा जीव मरकर परलोकमें भी अपने समस्त कुटुंबके साथ प्रेमभावसे रहता है।

गर्भमें सुपुत्र आनेके चिन्ह बतलाते हैं-

प्रश्न- **कथं सुपुत्रस्य स्थितिः प्रगम्या।**
कृत्वा कृपां मे वद मातृगर्भे।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि माताके गर्भमें सुपुत्रके आनेपर क्या क्या-चिन्ह प्रगट हो जाते हैं?

उत्तर- **गर्भे सुपुत्रागमनात्प्रसादः,**
मातुः पितुर्वा विमलो विचारः।
दानार्चनादौ च सदा प्रवृत्तिः,
ज्ञेयं सुकृत्याद्धि सुपुत्रजन्म।। १४५।।

अर्थ—यदि माताके गर्भमें कोई सुपुत्र आजाता है तो माता पिताका हृदय प्रसन्न हो जाता है, उनके विचार निर्मल हो जाते हैं और दान, पूजा आदि शुभकार्योंमें प्रवृत्ति हो जाती है। यदि ये सब कार्य होने लगें तो समझ लेना चाहिए कि इस गर्भसे सुपुत्रका जन्म होगा।

भावार्थ—माताके गर्भमें जैसा पुत्र होता है माता-पिताके विचार भी वैसे ही हो जाते हैं। यदि वह बालक शूर-वीर होता है तो माता-पिताके विचार किसी भी युद्धमें विजय प्राप्त करनेके होजाते हैं। यदि वह गर्भका बालक धर्मात्मा होता है तो माता-पिताके विचार धर्मरूप परिणत हो जाते हैं, जिनपूजा, पात्रदान तीर्थयात्रा आदि करनेके विचार हो जाते हैं, धर्मोत्सव वा रथोत्सव आदिके करने कराने वा देखनेके भाव हो जाते हैं। ऐसे परिणामोंसे उस गर्भके बालकका सुपुत्रपना जान लिया जाता है।

इच्छानुसार पदार्थोंकी प्राप्तिका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– पुण्योदयाद्वांछितदं सुवस्तु।
कस्मात्प्रभो! मे लभते वदात्मा।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस पुण्य कर्मके उदयसे इस जीवको इच्छानुसार पदार्थोंकी प्राप्ति होती है?

उत्तर– भव्यायसङ्घाय चतुर्विधाय!
येन प्रदत्तं विमलौषधान्नम्।
सर्वात्मसौख्याय कृताभिलाषा,
दिव्यं नरः कौ लभते सुवस्तु।। १४६।।

अर्थ–जो पुरुष भव्य पुरुषोंके लिये वा मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारों प्रकारके संघके लिये पवित्र औषधि, पवित्र आहार जल प्रदान करता है अथवा जो समस्त जीवोंको सुखी बनानेकी अभिलाषा करता रहता है ऐसा पुरुष इसी संसारमें इच्छानुसार पदार्थोंको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—पात्रदान देनेसे धन-धान्यकी वृद्धि होती है, जो पुरुष प्रतिदिन पात्रदान देता है, वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंको आहार देता है व औषध व शास्त्र देता है व मुनियोंके लिये वसतिकाएं बनवा देता हैं ऐसा पुरुष मरकर भोगभूमिमें ही उत्पन्न होता है। वहांपर उसे कल्पवृक्षोंके द्वारा इच्छानुसार पदार्थोंकी प्राप्ति होती रहती है। तदनंतर वहांकी आयु पूर्णकर वह देव होता है और वहां भी इच्छानुसार भोगोपभोगों की सामग्री प्राप्त कर सुखका अनुभव करता रहता है। इसलिए यदि इच्छानुसार सुख सामग्री प्राप्त करना है तो प्रत्येक भव्य जीवको पात्रदान देनेका नियम लेना चाहिये यदि ऐसा योग अपने यहां न हो तो जहां कहीं वीतराग निर्ग्रंथ मुनि हों वहां पात्रदानका लाभ लेना चाहिये। इसमें चूकना मनुष्य जन्मको खो देना है।

देव पर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।
स्वर्गे च जीवो भवतीह देवः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्य कार्यके करनेसे यह जीव स्वर्गमें जाकर देव होता है ?

उत्तर– व्रतोपवासेन तपोजपाभ्यां,
देवादिसेवाकरणेन भक्त्या ।
सत्तीर्थयात्रार्चनदानतः स्यात्,
शुभोपयोगैर्दिविजो भवेत्सः ।। १४७ ।।

अर्थ–जो मनुष्य अनेक व्रत-उपवास-तपश्चरण-जप व ध्यान करता है, भक्तिपूर्वक देव-शास्त्र-गुरुकी सेवा पूजा करता है, तीर्थयात्रा करता है, प्रतिदिन देवपूजा करता है और प्रतिदिन पात्रदान देता है वह भव्य मनुष्य अपने इन अनेक पुण्य कार्योंसे स्वर्गमें जाकर देव होता है ।

भावार्थ—देवपर्याय इस संसारमें सुखमय पर्याय है । वहां पर जन्म लेते ही थोड़ी देरमें युवावस्थाको प्राप्त हो जाता है । साथ ही वहां अवधिज्ञान होता है, वहांपर कल्पवृक्ष होते हैं जो इच्छानुसार समस्त सामग्री देते हैं । अनेक वर्षोंबाद भूखकी इच्छा होती है और उसी समय उनके गलेसे अमृत झड़ पड़ता है जिससे वे परम तृप्त हो जाते हैं । देवोंको कभी बुढ़ापा नहीं आता और न कभी कोई दुःख ही होता है । ऐसी यह देवोंकी सुखमय पर्याय तपश्चरण वा ध्यान करनेसे प्राप्त होती है अथवा पूर्ण अणुव्रत वा महाव्रत धारण करनेसे होती है, वा समतापूर्वक अनेक उपवास करनेसे प्राप्त होती है । अथवा मुनिराज आचार्य समंतभद्रके समान जिनेंद्रदेवकी भक्ति करनेसे प्राप्त होती है ।

इस प्रकार अनेक पापकर्मोंको नष्ट कर महापुण्य कार्योंके करनेसे यह देवपर्याय प्राप्त होती है।

मनुष्यपर्याय प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्मिन् सुकार्ये च कृते विशेषे।
मृत्वा भवेन्ना नरजन्मधारी।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस विशेष पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव मनुष्य पर्यायको धारण करता है?

उत्तर- दानार्चनादार्जवधर्मयोगात्,
क्रोधादिनाशात्समतारसाद्वा।
मृत्वा मनुष्यो भवतीह विश्वे,
प्रियश्च सर्वस्य सुखप्रदो हि।। १४८ ।।

अर्थ—जो मनुष्य सदा दान देता रहता है, भगवान् जिनेंद्रदेवकी पूजा करता रहता है, अपने परिणामोंको छल कपटसे रहित सरल बनाये रखता है और जो क्रोधको नाशकर समतारसमें लीन रहता है, ऐसा मनुष्य मरकर इसी रसमें सबको प्रिय और सबको सुख देनेवाला उत्तम मनुष्य होता है।

भावार्थ—स्वाभाविक कोमल परिणामोंका होना मनुष्य पर्यायका कारण है जिसके परिणाम स्वभावसे ही कोमल व सरल होते हैं वह क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायोंसे दूर रहता है, तथा कषायोंसे दूर रहनेके कारण समतापरिणामोंको धारण करता है और समता धारण करनेसे दान, पूजा, जप, तप आदि आत्माके कल्याण करनेवाले कार्योंमें ही लगा रहता है। इन सब पुण्य कार्योंके करनेसे वह फिर उत्तम मनुष्य होता है अथवा देवपर्यायका सुख भोगकर उत्तम मनुष्य होता है और फिर ध्यान तपश्चरणके द्वारा कर्मोंको नष्ट कर मोक्षप्रद प्राप्त कर लेता है।

भोगभूमिमें मनुष्य जन्म प्राप्त करनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- **कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।**
ना जन्म गृह्णाति सुभोगभूम्याम् ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह मनुष्य भोगभूमिमें उत्तम मनुष्य होता है ।

उत्तर- **स्वसौख्यभोक्त्रे मुनयेऽन्नदानं,**
दत्तं प्रदातुं च कृताभिलाषा ।
येन प्रशंसा मुनिदानदातुः,
स जायते वेति सुभोगभूम्याम् ।। १४९ ।।

अर्थ—जो मनुष्य अपने आत्मसुखमें लीन रहनेवाले मुनियोंके लिये आहारदान देता है व देनेके लिये अभिलाषा करता है अथवा जो देनेवालोंकी प्रशंसा करता है वह मनुष्य आयु पूर्ण होनेपर भोगभूमिमें उत्पन्न होता है ।

भावार्थ—रत्नत्रयको पालन करनेवाले वा अपने शुद्ध आत्मामें लीन रहनेवाले मुनि मोक्षके साक्षात् पात्र हैं। वे मुनि उत्तमपात्र कहलाते हैं। उन मुनियोंको जो आहार दान देता है वह उन मुनियोंकी मोक्ष प्राप्तिमें सहायक होता है और स्वयं मोक्ष पहुँचनेके लिये पूरा साधन बना लेता है। ऐसा मनुष्य आयुके पूर्ण होते ही भोगभूमिमे मनुष्य पर्याय धारण कर उत्पन्न होता है, वहाँसे स्वर्गमें देव होता है और फिर एक दो मनुष्य पर्याय धारण कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। जो मनुष्य आर्यिका-ऐलक-क्षुल्लक-क्षुल्लिका एवं शीलव्रत पालन करने वाले व्रती श्रावक-श्राविकाओं को आहार वस्त्र आदि देता है वह मध्यम भोगभूमिमें मनुष्य पर्याय धारण कर उत्पन्न होता है। जो अव्रती सम्यग्दृष्टियोंको आहार, वस्त्र आदि यथायोग्य दान देता है वह

जघन्य भोगभूमिमें मनुष्य होता है। इसी प्रकार मिथ्या तपश्चरण करनेवाले भेषी साधुओंको जो दान देता है वह कुभोगभूमिमें उत्पन्न होता है। अपात्रोंको दान देना व्यर्थ समझा जाता है। जो पुरुष दान देने की इच्छा करता है व दान देनेवालेकी प्रशंसा करता है वह भी उसी फल को प्राप्त होता है।

आर्यखंडमें उत्पन्न होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
शुभार्यखंडे हि भवेन्नृजन्म।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव आर्यखण्डमें मनुष्य जन्म धारण करता है?

उत्तर– जनान् कुवासे वसतः प्रगृह्य,
योऽस्थापयत्सौख्यकरे सुवासे।
दत्वान्नवस्त्रं सुखदं प्रतुष्येत्,
स्यादार्यखण्डे खलु तन्नृजन्म।। १५० ।।

अर्थ—अत्यंत निकृष्ट स्थानोंमें निवास करनेवाले अनेक जीवोंको उठाकर जो सुख देनेवाले उत्तम स्थानों में बसा देता है और फिर उनको सुख देने वाले अन्न वस्त्र देकर संतुष्ट होता है वह मनुष्य मरकर आर्यखण्डमें उत्तम मनुष्य होता है।

भावार्थ—आर्यखंड एक उत्तम स्थान है। उसमें मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति रहती है। यहाँ तीर्थंकर व अनेक मुनिराज विहार करते रहते हैं, अर्जिकाएं व श्रावक, श्राविकाएँ रत्नत्रयका पालन करती रहती हैं। यही सब आर्यखण्डकी विशेषता है। ऐसे धर्मस्थानमें जन्म लेना वास्तवमें पुण्यका ही कार्य है और पुण्यका ही साधन है जो मनुष्य निकृष्ट स्थानोंमें बसे हुए लोगोंका उद्धार करते हैं उन्हें अच्छे स्थानोंमें

बसाते हैं ऐसे मनुष्य मरकर आर्य खण्डमें जन्म लेते हैं तथा वहाँ पर धर्मसाधन कर यथासाध्य रत्नत्रय का पालन करते है और ध्यान तपश्चरणके द्वारा कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

अल्पभोजी होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
स्वल्पान्नभोजी भवतीह भव्यः॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव बहुत थोड़ा अन्न भक्षण करने वाला होता है?

उत्तर- स्वराज्यकर्त्रे मुनयेऽन्नदानं,
दत्वेति दीनाय गृहादिवस्तु।
स्वल्पं च भुक्त्वाऽनशनेन तुष्येत्,
स्वल्पान्नभोजी स भवेदमुत्र॥ १५१॥

अर्थ—जो मनुष्य अपने शुद्ध आत्मामें लीन रहनेवाले मुनियोंको आहारदान देकर संतुष्ट होता है वा दीनदरिद्रियोंको अन्न, वस्त्र, घर आदि देकर संतुष्ट होता है। अथवा जो थोड़ासा ही भोजन कर संतुष्ट होता है। ऐसा मनुष्य परलोकमें जाकर अल्प भोजन करनेवाला होता है।

भावार्थ—बहुत अधिक भोजन करना दरिद्रता का चिह्न है और थोड़ा भोजन करना भाग्यशाली होनेका चिह्न है। सबसे थोड़ा भोजन देवपर्यायमें होता है। वहाँपर सैकड़ों हजारों वर्षोंके बीत जानेपर क्षुधाकी वेदना होती है और उसी समय उनके गलेसे अमृत झर पड़ता है जिससे उनकी तृप्ति होजाती है। इसीप्रकार भोगभूमिमें भी बहुत थोड़ा आहार है। उत्तम भोगभूमिमें तीन दिन बाद आँवलेके समान थोड़ा आहार लेते हैं। मध्यम भोगभूमिमें दो दिन बाद और जघन्य भूमि

में एक दिन बाद कुछ अधिक आहार लेते हैं। कर्मभूमिमें चौथे कालमें प्रतिदिन एक बार आहार लेते हैं। पांचवें कालमें प्रतिदिन दो बार आहार लेते हैं और छठे कालमें प्रतिदिन कई बार आहार लेते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि पुण्यवान् मनुष्य कम आहार लेते हैं। जो मनुष्य दान देते रहते हैं तथा जो विशेष कर मुनियोंको दान देते हैं व अनेक व्रत उपवास करते हैं तथा जो सुख-दुःख दोनोंमें संतोष धारण करते हैं ऐसे मनुष्य अपनी आयु पूर्ण होनेपर परलोकमें बहुत थोड़ा अन्न ग्रहण करनेवाले उत्तम पुरुष होते हैं।

व्यवहारचतुर होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
भवेच्च भव्यो व्यवहारदक्षः॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह मनुष्य अपने व्यवहारकार्योंमें चतुर होता है।

उत्तर– विद्याकलादौ चतुरान् विलोक्य,
विवेकिनो ज्ञानिजनस्य शंसाम्।
कृत्वेति तुष्येन्मुनिवर्गसेवां,
भवेत्स मृत्वा व्यवहारदक्षः॥ १५२॥

अर्थ—जो मनुष्य विद्या, कला आदिमें चतुर मनुष्योंको देखकर संतुष्ट होता है व विवेकी और ज्ञानी पुरुषोंकी प्रशंसा किया करता है अथवा जो मुनियोंकी सेवा किया करता है ऐसा मनुष्य परलोकमें जाकर व्यवहारके सब कार्योंमें निपुण होता है।

भावार्थ—व्यवहारचतुर होना बुद्धिमानोंका काम है। जो मनुष्य बुद्धिमानोंको वा कलाकारोंको देखकर, ज्ञानी और विचार शील मनुष्योंको देखकर प्रसन्न होता है वा उनकी प्रशंसा करता है अथवा जो मुनियोंकी और संघकी सेवा करता

है, धर्मको धारण करता है, व व्रत उपवास करता है ऐसा मनुष्य परलोकमें जाकर व्यवहारके समस्त कार्योंमें चतुर होता है, वह अपने व्यवहारमें कभी नहीं चूकता।

कवि होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
सुकाव्यकर्ता हि भवत् कविः कौ ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह मनुष्य किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे उत्तम काव्यको करनेवाला श्रेष्ठकवि होता है?

उत्तर- निर्दोषदेवादिकथाप्रशंसा,
सुकाव्यकर्तुर्गुणकीर्तनादिः।
परंपराधर्मगुरोः कृता यै-
र्भवन्ति मृत्वा कवयोवरास्ते ।। १५३ ।।

अर्थ—जो मनुष्य वीतराग सर्वज्ञदेवकी कथा कहता है, उनकी स्तुति करता है, उनके चरित्रोंको कहनेवाले उत्तम कवियोंके गुणों वर्णन व उनकी प्रशंसा किया करता है, अथवा परम्परासे चले आये धर्मगुरुओंके गुण वर्णन किया करता है वह जीव परलोकमें जाकर उत्तमकवि होता है।

भावार्थ—उत्तमकवि वही कहलाता है जो धर्मकथाओंका निरुपण करता है। जो तीर्थंकर परमदेवके पवित्र चारित्रको अथवा अन्य मोक्षगामी पुरुषोंके पवित्र चरित्रको अपने उत्तम काव्यके द्वारा निरूपण करता रहता है। अथवा पुण्यपापका फल दिखलाने तथा पापका त्याग व पुण्यकी वृद्धि करनेके लिए अन्य पुरुषोंकी कथाएं भी कहता है। ऐसे उत्तम विचारवाले कवियोंको उत्तमकवि कहते हैं। जो पुरुष देवपूजा,

गुरुपूजा, शास्त्रपूजा करते हैं व उनकी कथाओंको कहकर अपनी आत्माको पवित्र करते हैं, आचार्य जिनसेन-समंतभद्र आदि उत्तम कवियोंकी प्रशंसा किया करते हैं व उनकी कथाओं को कहकर लोगों को सुनाया करते हैं, अन्य भी अपने धर्मगुरुओंकी कथाओंको सुनाया करते हैं ऐसे पुरुष उत्तम कवियोके समान परमपूज्य पुरुषोंके पवित्र चारित्रका निरूपण करते हुए अपने आत्माका कल्याण करते रहते हैं। ऐसे महाकवि दो चार भवमें ही मोक्षकी प्राप्ति कर लेते हैं।

दीर्घायु पाकर भी सुखी रहनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
दीर्घायुरेवापि सुखी सदा स्यात्।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह मनुष्य दीर्घ आयु पाकर भी सदा सुखी रहता है?

उत्तर- व्याघ्रीमुखाद्रक्षित एव जीवो,
विमोचितो बन्दिगृहात्सुबद्धः।
येन प्रदत्तं विमलौषधान्नं,
दीर्घायुरेवापि सुखी सदा स्यात्।। १५४।।

अर्थ—जो जीव किसी बाघ व सिंहसे किसी जीवको बचा लेता है व बंदीगृहमें बंधे हुए प्राणियोंको जो छुड़ा लेता है अथवा जो रोगी व दुःखी जीवोंको निर्मल औषधि व अन्न प्रदान किया करता है ऐसा जीव परलोकमें जाकर दीर्घायु प्राप्त करता है और सुखी भी रहता है।

भावार्थ—दीर्घायु प्राप्त होनेसे वृद्धावस्थामें अनेक प्रकारके दुःख उत्पन्न हो जाते हैं। इन्द्रियाँ सर्व शिथिल हो जाती हैं, कानोंसे सुनाई नहीं पड़ता, नेत्रोंसे दिखाई नहीं पड़ता और स्मरण शक्ति सब

नष्ट हो जाती है। ऐसी अवस्थामें महादुःख होता है। परंतु जो पुरुष जीवोंकी रक्षा करते हैं, प्रत्येक प्राणीको सुख पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं, रोगीजीवोंको औषधियाँ प्रदान करते हैं, भूखोंको अन्न जल देते हैं और समस्त जीवोंके साथ मित्रता का व्यवहार किया करते हैं ऐसे पुरुष परलोकमें जाकर दीर्घ आयु पाकर भी सुखी रहते हैं। वृद्धावस्थामें भी उनकी इन्द्रियाँ काम करती हैं और धन कुटुंब आदि सब प्रकारका सुख उनको प्राप्त होता है।

पूर्ण अंग-उपांग प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! स्या।
दङ्गैरुपाङ्गैः परिपूर्णदेही।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव अपने शरीरके अंग उपांगोंको पूर्णरूपसे प्राप्त करता है।

उत्तर–अङ्गाद्युपाङ्गस्यपरस्य येन,
रक्षा कृता स्वात्मसमा सदा च।
पराङ्गपुष्टचैच कृतः प्रयत्नो,
भवेत्स मृत्वा परिपूर्णदेही।। १५५।।

अर्थ–जो पुरुष सदाकाल अपने समान अन्य जीवोंके अंग उपांगोंकी रक्षा करता है और दूसरों के अंग उपांगोंको पुष्ट करनेके लिये जो सदाकाल प्रयत्न करता है ऐसा जीव परलोकमें जाकर अपने शरीरके समस्त अंग और उपांगोंसे सुशोभित होता है।

भावार्थ–जो दूसरोंको दुःख देता है वह स्वयं दुःखी होता है, जो दूसरोंके अंग उपांगोंको काटता है वह स्वयं अंग उपांगहीन होता है तथा जो दूसरोंके अंग उपांगोंकी रक्षा करता है, दूसरोंके अंग उपांगोंके रोगको दूर करता है, दूसरोंका लालन पालन

करता है व उनको पुष्ट बनाता है वह पुरुष परलोकमें जाकर अपने अंगउपांगोंको पूर्णरूपसे प्राप्त करता है, तथा उसके सब अंग उपांग पुष्ट होते हैं।

श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होनेका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे।
श्रेष्ठे कुले जन्म भवेज्जनानाम्।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेता है।

उत्तर- परप्रशंसापि निजात्मनिन्दा,
दीनस्य हीनस्य कृता च सेवा।
विश्वप्रशान्त्यै प्रियसत्यभाषा,
स्यात्तस्य वा श्रेष्ठकुले सुजन्म।। १५६ ।।

अर्थ–जो पुरुष दूसरोंकी प्रशंसा करता है और अपनी निंदा करता है, दीन-हीन पुरुषोंकी सेवा करता है और समस्त संसारमें शांति स्थापित करने के लिये जो प्रिय तथा सत्य वचन बोलता है वह जीव परलोकमें श्रेष्ठकुलमें जन्म लेता है। लेता है।

भावार्थ—श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेना मोक्षका साधन है और इसीलिये यह प्रशंसनीय माना जाता है। जो लोग मोक्षमार्गमें लगे हुए जीवोंकी प्रशंसा करते हैं, साधुओंकी स्तुति व वैयावृत्य करते हैं, श्रावक श्राविकाओंकी प्रशंसा करते हैं, उनको यथाशक्ति दान दिया करते हैं तथा अपनी निंदा किया करते हैं, स्वयं मोक्षमार्गमें चलनेका प्रयत्न करते हैं दीन-हीन मनुष्योंको दान देते हैं, उनकी सहायता करते हैं, संसारभरमें शांति स्थापनकी इच्छा किया करते हैं और जो सदाकाल प्रिय और सत्य वचन कहा करते हैं ऐसे पुरुष परलोकमें जाकर उत्तम कुलमें उत्पन्न होते हैं।

स्थिर जीविका प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।
आजीविकां वा लभते स्थिरां को ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे स्थिर जीविकाको प्राप्त कर लेता हैं।

उत्तर– आजीविकायां विनियोज्य दीनान्,
स्थानस्थितेभ्यः पशुपक्षिकेभ्यः ।
दत्त्वान्नपानं हृदि यश्च तुष्ये–,
दाजीविकां शांतिकरां लभेत ।। १५७ ।।

अर्थ–जो पुरुष दीन-हीन पुरुषोंको आजीविकामें लगा देता है, अपने-अपने स्थानमें ठहरे हुए पशुपक्षियोंको अन्न-जल देकर संतुष्ट होता है ऐसा पुरुष शांतरीतिसे चलनेवाली और सदाकाल रहनेवाली आजीविकाको प्राप्त होता है।

भावार्थ—यह जीव निराकुल होने पर सुखी होता है, तथा निराकुल होनेपर ही धर्मकार्यमें लग सकता है। बिना आजीविकाके यह जीव प्रतिक्षण व्याकुल बना रहता है। अतएव स्थिरजीविका का होना निराकुलताका कारण है। जो जीव दूसरोंकी जीवोंकी की आजीविका लगाते रहते हैं, भूखों प्यासोंको अन्न जल दिया करते हैं, भूखे पशुओंको चारा दिया करते हैं, भूखे पक्षियोंको दाना डालते हैं अथवा और भी अनेक प्रकारसे जो अन्यजीवोंको निराकुल और सुखी बनाया करते हैं वे जीव परलोकमें जाकर स्थिरजीविका प्राप्त करते हैं और सदाकाल निराकुल होकर सुखी होते हैं।

नीचकुलमें उत्पन्न होनेपर भी धन राज्य आदि प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पुण्याच्च कुलेऽपि नीचे।
जना लभन्ते धनराज्यसत्ताम्।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस कार्यके करनेसे नीच कुलमें उत्पन्न होनेपर भी इस जीवको धन व राज्य मिल जाता है?

उत्तर— सेवा कृताऽज्ञानतपःस्थितानां,
येन प्रशंसा विनयः कृतश्च।
तेभ्यः प्रदत्तं विमलौषधान्नं,
मृत्वा सुखी नीचकुलेपि सः स्यात्।। १५८।।

अर्थ—जो जीव अज्ञानतापूर्वक तपश्चरण करनेवाले मिथ्या-गुरुओंकी सेवा करता है, प्रशंसा करता है, विनय करता है व उनको अन्न-जल-औषधि आदि देता है वह जीव परलोकमें जाकर नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी सुखी होता है।

भावार्थ—आत्माके यथार्थ स्वरूपको जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है, जो साधु होकर भी आत्माके यथार्थ स्वरूपको नहीं जानते, शरीरको ही आत्मा मान लेते हैं, अथवा आत्माको सर्वव्यापी मानते हैं, वा अणुमात्र मानते हैं, कोई कोई आत्मा और मनको एक मान लेते हैं व आत्माको क्षणिक मानते हैं इस प्रकार विपरीत मानते हुए वे मिथ्या तपश्चरण करते हैं। उन्हें जीवोंका ज्ञान नहीं, जीवोंके स्थानोंका ज्ञान नहीं, इसलिए वे पंचाग्नि तप तपते हैं, वा वृक्षोंपर उलटे लटकते हैं, बाल बढ़ा लेते हैं जिनसे अनेक जीवोंकी हिंसा होती है। इस प्रकार जो साधु अनेक प्रकारसे जीवोंकी हिंसा करनेवाला तपश्चरण करते हैं उनकी सेवा सुश्रूषा करनेसे पुण्य तो होता नहीं किंतु थोड़ा बहुत अशुभ कर्मोंका बंध अवश्य होता है, इसलिए वे नीच कुलमें उत्पन्न होते हैं तथा अन्नदान देनेके कारण वे उस नीच कुलमें उत्पन्न

होकर भी सुखी अवश्य होते हैं उन्हें धनादिककी व राज्यादिककी प्राप्ति हो जाती है।

सत्यताके साथ आजीविका चलनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– **कस्माद्धि पुण्याच्च जनस्य वृत्तिः।**
सत्येन सार्धं चलतीह लोके।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब यह बतलाइये कि किस-किस कारण से लोगोंकी आजीविका सत्यताके साथ चलती है।

उत्तर– **निर्व्याजतो येन सधार्मिकेभ्यो,**
दत्तं च दानं मुदितत्प्रशंसा।
कृता दरिद्रेऽपि न हीनवृत्तिः,
सत्यैः समं स्याद्भुवि तत्प्रवृत्तिः।। १५९।।

अर्थ—जो मनुष्य धर्मात्मा पुरुषोंको बिना किसी छल कपटके आहार-जल देता है, उन धर्मात्माओंकी प्रशंसा करता है अथवा दरिद्र होनेपर भी अपनी हीनवृत्ति धारण नहीं करता वह पुरुष परलोक में जाकर सत्यताके साथ अपनी आजीविका चला लेता है।

भावार्थ—हीनवृत्ति धारण करना पापका कारण है, जिस आजीविकामें विशेष हिंसा हो उसको हीनवृत्ति कहते हैं। जो पुरुष दरिद्र होनेपर भी हीनवृत्ति धारण न करता हो व अपनी पापरूप प्रवृत्ति नहीं होने देता, जो अपनी प्रवृत्ति पुण्यरूप रखनेका ही प्रयत्न करता है, पापकार्योंसे बचनेका प्रयत्न करता है, धर्मात्मा पुरुषोंको बिना किसी छल कपटके आहार दान देता है, उनकी सेवा सुश्रूषा करता है उनकी प्रशंसा करता है व अन्य भी ऐसे ही ऐसे कार्य किया करता है वह पुरुष परलोकमें जाकर निराकुलरूपसे रहता है तथा उसकी आजीविका सत्यता पूर्वक चलती रहती है।

अनेक जीवोंका एक साथ सुखी होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वदैककाले।
ह्यनेकजन्तोश्च सुखोदयः स्यात्॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे एक ही कालमें अनेक जीव सुखी होते हैं?

उत्तर– ये पंचकल्याणविधिं विलोक्य,
कृत्वा च भक्त्या जिनतीर्थयात्राम्।
दत्वान्नदानं मुनयेऽतिहृष्टा–
स्तेष्वैककाले च सुखोदयः स्यात्॥ १६०॥

अर्थ–जो पुरुष पंचकल्याणक विधिको देखकर, व तीर्थयात्रा करके प्रसन्न होते हैं अथवा जो मुनियोंको अन्नदान देकर संतुष्ट होते हैं ऐसे समस्त पुरुषोंको एक ही साथ पुण्यकर्मोंका उदय हो आता है और सब जीव एक साथ सुखी हो जाते हैं।

भावार्थ—पंचकल्याणक विधिको देखने के लिए हजारों मनुष्य इकट्ठे होते हैं। जिस समय मेरुपर्वतपर भगवान्का अभिषेक होता है उस समय हजारों मनुष्य उसको देखते हैं और एक साथ जयजयकार करते हैं। इसी प्रकार दीक्षाकल्याणक, ज्ञानकल्याणक व मोक्षकल्याणकको देखते समय हजारों मनुष्य एक साथ जयजयकार करते हैं, उन सबको एक साथ पुण्यका बंध होता है। वह पुण्यका बंध जब उदयमें आता है तब भी एक ही साथ आता है और इस प्रकार वे समस्त जीव एक साथ सुखी हो जाते हैं। इसी प्रकार सम्मेदशिखर जैसे पूज्य तीर्थस्थानोंपर प्रतिदिन सैकड़ों यात्री वंदना करनेके लिए जाते हैं और एक साथ जयजयकार करते हुए वंदना करते हैं। उन सबको पुण्यबंध होता है और वे कर्म एक साथ ही उदयमें आकर उन सबको सुखी बना देते हैं। अथवा किसी स्थानपर सैकड़ों हजारों मनुष्य किसी

मुनिराजके लिए दिए हुए आहारदानकी अनुमोदना करते हैं उन सबको एकसाथ पुण्यकर्म का बंध होता है तथा एक साथ ही उदयमें आता है। ऐसे सब जीवोंको एक साथ ही सुखकी प्राप्ति हो जाती है।

यद्यपि परिणामोंमें अन्तर होने से स्थिति अनुभागमें अंतर पड़ सकता है तथापि ऐसे समयमें अनेक जीवोंके परिणाम प्रायः समान भक्तिरूप होते हैं और ऐसे जीवोंके ही एक साथ उन कर्मोंका उदय होता है, जिससे सब जीव एकसाथ सुखी होते हैं।

अनेक जीव जो एक साथ मोक्ष जाते हैं उसका कारण बतलाते हैं-

प्रश्न- कस्माद्धि योगाच्च यदैककाले।
प्रयान्ति मोक्षं बहुजीववर्गः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस कार्यके करनेसे अनेक जीव एक साथ मोक्षमें जा विराजमान होते हैं?

उत्तर- दीक्षाप्रंशसा बहुजीवकैर्य-
र्भक्त्या कृता तीर्थकरस्य लोके।
स्वानन्दतुष्टस्य यतेः स्तुतिर्वा,
त एक काले च शिवं प्रयान्ति ।। १६१ ।।

अर्थ—जिस समय तीर्थंकरपरमदेव दीक्षा धारण करते हैं उस समय अनेक जीव भक्तिपूर्वक उस दीक्षाकी प्रशंसा करते हैं। अथवा अनेक जीव अपने शुद्ध आत्मामें लीन रहनेवाले मुनियोंकी स्तुति व प्रशंसा एक साथ मिलकर करते हैं। प्रायः ऐसे ही पुरुष एक ही साथ मोक्षमें जा विराजमान होते हैं।

भावार्थ—तीर्थंकरपरमदेव जब दीक्षा धारण करते हैं तब लौकांतिक देव आकर उन तीर्थंकर भगवान्की स्तुति करते हैं तथा

हजारो लाखों विद्याधर और हजारों लाखों भूमिगोचरी आकर उन तीर्थंकर भगवान् की स्तुति करते हैं। उनमेंसे लौकांतिक देव तो सब एकभवावतारी ही होते हैं। वहां से आकर चरम शरीरी मनुष्य होते हैं और तपश्चरण कर मोक्ष जाते हैं तथा विद्याधर और भूमि गोचरियोंमें भी अनेक जीव भव्य होते हैं और अनेक जीव निकट भव्य होते हैं। ऐसे जीवोंमें से ही कितने ही जीव एक दो भव धारण कर एकसाथ मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

किसी पशु वा किसी मनुष्यको देखकर परस्पर दोनोंमें प्रेम होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– पशुं नरं वा कमपीह दृष्ट्वा।
कस्मात् शुभात्स्याच्च मिथः प्रमोदः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस शुभ कारणसे किसी पशु वा मनुष्यको देखकर परस्पर प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

उत्तर– पिता च माता यदि वा सुपुत्रो,
भक्त्योपकारं ह्यकरोन्मिथोन्यः।
सखा भवेत्पूर्वभवस्य बन्धु-
स्तान्वीक्ष्य मोहो भवतीह जन्तोः ।। १६२ ।।

अर्थ—पिता, माता, सुपुत्र वा भाई-बन्धु आदि मिलकर जब भक्तिपूर्वक एक दूसरेका उपकार करते हैं उनमेंसे परलोकमें आकर जब किसी एक जीवको देखते हैं अथवा पूर्वभवके किसी भाई व मित्रके जीवको देखते हैं तब जीवोंको मोह उत्पन्न हो ही जाता है।

भावार्थ—जब किसी पशु वा मनुष्यको देखकर प्रेम उत्पंन्न होता है या द्वेष उत्पन्न होता है तो समझ लेना चाहिए कि इसके साथ पहले भवका कोई संबंध अवश्य है। बिना पहले भवके संबंधके देखते ही न

तो प्रेम उत्पन्न हो सकता है और न द्वेष ही उत्पन्न हो सकता है। पहले भवमें जिन जीवोंने अपना उपकार किया है अथवा जो अपने द्वारा उपकृत हुए हैं उन्हें देखकर मोह उत्पन्न हो जाता है और इसीलिए उनसे प्रेम प्रगट होने लगता है। पहले जन्मके मित्र व भाई-बंधु भी कहीं भी भिन्न-भिन्न स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं परंतु जब वे जीव परस्पर एक दूसरेको देखते हैं तब परस्पर प्रेम उत्पन्न हो ही जाता है। यही समझकर किसी जीवसे द्वेष नहीं करना चाहिए किंतु सबका उपकार करते रहना चाहिए।

दुःखमें सहायक होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– किं कारणं मेस्ति विना ही कोऽपि।
दुःखे सहायो भवतीह जीवः।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि बिना कारणके ही कोई भी जीव अपने किसी दुःखमें सहायक हो जाता है इसका क्या कारण है?

उत्तर– यस्मै प्रदत्तं वसनौषधान्नं,
यस्यैव रक्षा विपदि त्वया चेत्।
कृता विशेषा हृदि यत्प्रशंसा,
स स्यात्सहायो विषमेपि दुःखे।। १६३ ।।

अर्थ—पहले जन्ममें जिस किसीके लिये वस्त्र दिया है औषधि दी है व अन्न जल दिया है, विपत्तिमें किसी की रक्षा की है व किसी की हृदयसे विशेष प्रशंसा की है ऐसा जीव परलोकमें जाकर भी किसी आपत्तिके समयमें भी सहायक होजाता है।

भावार्थ—पहले जन्ममें जिस किसीका हम लोग उपकार करते हैं व जिस किसीको किसी आपत्तिसे बचाते हैं, किसी रोगसे बचाते हैंया उसकी इच्छानुसार पदार्थकी प्राप्ति करा देते हैं, जिस किसी को सेवा

सुश्रूषा करते हैं अथवा जिस किसी परदेशी की सहायता कर देते हैं, किसी बिछुड़े हुएको उसके स्थानपर पहुँचा देते हैं, अन्य किसी भी प्रकारसे जिस किसी का उपकार करते हैं वह जीव इस जन्ममें भी अपने ऊपर किसी प्रकारकी आपत्ति व दुःख आनेपर अकस्मात् आकर सहायक बन जाता है और उस दुःखको दूर कर देता है। यही समझकर सदाकाल दूसरेका दुःख दूर करते रहना चाहिये वा दूसरोंका उपकार करते रहना चाहिये।

प्रश्न– **कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे।**
व्ययो धनादेर्भवतीह धर्मे।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे इस जीवका धन व अन्य पदार्थ धर्मके ही काममें लगते हैं ?

उत्तर– **धनव्ययं कुर्वत एव धर्मे,**
लीनान् सुविद्याध्ययनेपि जीवान्।
प्रभावनायां प्रविलोक्य तुष्येद्,
धर्मे सदा तस्य धनव्ययः स्यात्।। १६४।।

अर्थ–जो लोग किसी भी धर्मकार्यमें वा धर्मकी प्रभावना करने में अपना धन खर्च करते हैं अथवा जो मोक्षमार्गका प्रतिपादन करनेवाले धर्मशास्त्रोंके पठन-पाठनमें तल्लीन रहते हैं ऐसे जीवोंको देखकर जो अत्यंत संतुष्ट होते हैं उन जीवोंका धन सदाकाल धर्ममें ही खर्च होता है।

भावार्थ—जिनके धार्मिक संस्कार पहले जन्मसे होते हैं, जिनको पहले जन्मसे ही धर्मप्रेम है, जो पहले जन्ममें भी धर्मकार्योंमें खर्च होते देखकर संतुष्ट होते थे, जो धर्मकी प्रभावनामें खर्च होते देखकर प्रसन्न होते थे, अथवा जो धर्म शास्त्रोंका स्वाध्याय करनेवालोंको देखकर व

धर्मशास्त्रोंका अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंको देखकर प्रसन्न होते थे, व अन्य भी अनेक धार्मिक संस्कारोंको देखकर जो अत्यंत प्रसन्न होते थे ऐसे जीव इस लोकमें भी आकर धर्म प्रेम रखते हैं, उनके संस्कार सब धार्मिक होते हैं और उनका धन और अन्य समस्त पदार्थ धर्मके ही काममें खर्च होते हैं। यही समझकर धर्मप्रेम सदा बनाये रखना चाहिये। परंपरासे यही जीवोंके लिये मोक्षका साधन है।

श्रुतज्ञानी होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– **कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।**
जीवो भवेत्को श्रुतबोधधारी॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे श्रुतज्ञानको धारण करनेवाला होता है।

उत्तर– **आज्ञापि भक्त्या परिपालिता हि,**
गुरोश्च सेवा विनयोपचारः।
येन प्रशंसापि कृतात्मशुद्धे-
र्भवेत्स भव्यः श्रुतबोधधारी॥ १६५॥

अर्थ—जो पुरुष भक्तिपूर्वक गुरुकी आज्ञाका पालन करते हैं भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करते हैं उनका विनय करते हैं व उनकी सुश्रूषा करते हैं और जो उनकी स्तुति व प्रशंसा करते हैं अथवा जो आत्माके शुद्ध स्वरूपकी प्रशंसा किया करते हैं ऐसे भव्य जीव श्रुतज्ञानको धारण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—श्रुतज्ञान श्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होता है तथा श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम गुरुभक्ति करनेसे, गुरुकी सेवा करनेसे, उनकी आज्ञाका पालन करनेसे, उनकी प्रशंसा करनेसे, भगवान् जिनेंद्रदेवके कहे हुए वचनोंका प्रचार करनेसे, जिनवाणीका पठन-पाठन करने व करानेसे,

और जिनवाणीका पठन-पाठन करनेवालोंकी सहायता करनेसे होता है। अभिप्राय यह है कि जो भव्यजीव श्रुतज्ञानकी वृद्धि करता व कराता रहता है वह जीव अगले जन्ममें अवश्य ही उत्तम श्रुतज्ञानको धारण करनेवाला होता है। यही समझकर भव्यजीवोंको सदाकाल जिनवाणीकी ही सेवा करते रहना चाहिए और उसी का अभ्यास करते रहना चाहिए।

शीलवान् होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे।
सच्छीलधारी भवतीह जीवः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव परलोकमें जाकर शीलवान् उत्पन्न होता है।

उत्तर– सुशीलवत्याः सुजनस्य सेवा,
स्वानन्दभाजः सुगुरोः सुसङ्गः।
श्रीदा कृता येन निजात्मचर्चा,
स स्यान्मनुष्यश्च सुशीलधारी ।। १६६ ।।

अर्थ–जो मनुष्य पहले जन्ममें शीलवती स्त्रियोंकी व शीलवान् सज्जन पुरुषोंकी सेवा सुश्रूषा करता है, अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन रहनेवाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंके समीप रहकर उनकी सेवा किया करता है, और अंतरंग बहिरंग लक्ष्मीको देनेवाली अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपकी चर्चा किया करता है, वह मनुष्य इस लोकमें आकर अत्यंत शीलवान् होता है।

भावार्थ—जिस जीवके शील पालन करनेकी इच्छा होती है, जो शील पालन करनेको श्रेष्ठ समझता है, और आत्माके यथार्थ स्वरूपको समझता है वह जीव शीलवान पुरुषोंकी सेवा सुश्रूषा किया करता है,

व शीलवती स्त्रियोंको उत्तम समझकर उनकी प्रशंसा किया करता है। अथवा परम शीलव्रत व परम ब्रह्मचर्यको धारण करनेवाले और अपने शुद्ध आत्मामें लीन रहनेवाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंके समीप रहकर उनकी सेवा सुश्रुषा किया करता है, तथा परम ब्रह्मचर्य शुद्ध आत्माका स्वरूप जाननेके लिए उसकी चर्चा किया करता है, उसका मनन अध्ययन और ध्यान किया करता है ऐसा पुरुष परलोकमें जाकर परम शीलवान् होता है।

सर्वप्रिय होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
भवेन्मनुष्यः सकलप्रियः कौ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव इस संसारमें सर्वप्रिय होता है।

उत्तर– स्नेहो मिथो येन कृतोऽनुरागः,
सद्धर्मदेवादिगुरौ क्षमादौ।
निजात्मनिन्दा च परप्रशंसा,
स एव भव्यः सकलप्रियश्च।। १६७।।

अर्थ—जो पुरुष धर्मात्मा भाइयों में प्रेम धारण करता है, धर्ममें अनुराग रखता है, भगवान् अरहंत देवमें व वीतराग निर्ग्रंथ गुरुमें अनुराग रखकर उनकी भक्ति करता है, उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार के धर्म में अनुराग धारण करता है, धर्मात्मा जीवोंकी प्रशंसा और अपनी निंदा किया करता है, ऐसा भव्य जीव इस संसारमें सबको प्रिय लगनेवाला होता है।

भावार्थ—जो मनुष्य धर्ममें प्रेम रखता है वही मनुष्य धर्मात्माओं में प्रेम रख सकता है तथा जो धर्ममें प्रेम रखता है वही पुरुष देव शास्त्र गुरुकी भक्ति व उनकी पूजा-

आराधना किया करता है। इस प्रकार जो पुरुष धर्मप्रिय होता है वही पुरुष अगले जन्ममें जाकर सर्वप्रिय बन जाता है। देखो! धर्ममें प्रेम रखनेके कारण व धर्मको पूर्ण रीतिसे पालन करनेके कारण तीर्थंकर परमदेव होते हैं और वे तीर्थंकर समस्त देवोंको समस्त मनुष्योंको और समस्त तिर्यंचोंको प्रिय होते हैं सामान्य केवली भी धर्म पालन करनेके कारण ही होते हैं और इसलिये वे भी सर्वप्रिय ही होते हैं। अतएव सर्वप्रिय बननेके लिये धर्मपर अनुराग रखना अत्यंत आवश्यक है।

घर घर मंगल गान होनेका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
गृहे गृहे मंगलगीतवाद्यम्।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे घर-घर मंगल गीत और वाद्य होते रहते है?

उत्तर– महोत्सवो येन जिनार्चनादि,
भक्त्या कृता तीर्थकरस्तुतिश्च।
दूरीकृतं दुःखचयं जनानां,
सन्मङ्गल स्यात्खलु तद्गृहादौ।। १६८।।

अर्थ–जो पुरुष भक्तिपूर्वक भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है, रथोत्सव-प्रतिष्ठोत्सव आदि उत्सव करता है, भगवान् तीर्थंकर परमदेवकी स्तुति किया करता है, और जो समस्त जीवोंके दुःखोंको दूर करता है, ऐसे पुरुषके घर सदा काल मंगल गीत हुआ करते हैं।

भावार्थ—जो पुरुष पहले जन्ममें बार-बार धर्मोत्सव किया करता है, कभी रथयात्राका उत्सव कराता है, कभी जिनालय बनवाकर उसका उत्सव कराता है, कभी जिनप्रतिमा बनवाकर उनकी प्रतिष्ठाका महा-उत्सव कराता है, कभी किसी व्रतका उद्यापन कराता है और कभी

किसी व्रतका उद्यापन कराकर उत्सव मनाता है। इसप्रकार जो मनुष्य सदाकाल धर्मोत्सव मनाया करता है वह पुरुष परलोकमें जाकर भी अनेक उत्सवोंका पात्र होता है। उसके घर प्रतिदिन उत्सव होता रहता है, प्रतिदिन गीत मंगल होते हैं और प्रतिदिन बाजे बजते हैं। कभी पुत्रोत्सवके गीत मंगल होते हैं, कभी पौत्रोत्सवके होते हैं, कभी धनप्राप्तिके होते हैं, कभी किसी विजयपर होते हैं। यही समझकर प्रत्येक जीवको सदाकाल धर्मोत्सव मनाते रहना चाहिये।

मिष्ट वाणी प्राप्त होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पुण्याच्च वदेति वाणी।
प्रिया भवेत्कोकिलवज्जनानाम्॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे इस मनुष्यको कोकिलके समान मिष्ट वाणी प्राप्त होती है?

उत्तर— सरस्वतीनां सततं सुसेवां,
जिनेन्द्रभक्तिं कृतवान् सुगीत्या।
सम्यक् प्रयत्नं प्रियभाषणार्थं,
तेषां भवेत्कोकिलतुल्यवाणी॥ १६९॥

अर्थ—जो पुरुष सरस्वती देवीकी सदाकाल सेवा करता है, जो मीठे-मीठे गीत गाकर भगवान् जिनेन्द्रदेवकी भक्ति करता है और जो प्रियभाषण करने के लिए भरसक प्रयत्न किया करता है उन पुरुषोंकी वाणी परलोकमें जाकर कोकिलके समान मिष्ट और प्रिय होती है।

भावार्थ—जो पुरुष पहले जन्ममें अनेक प्रकारके स्तोत्र पढ़कर, अनेक प्रकारके गीत गाकर, अनेक प्रकारकी गद्यपद्यमय कविता बनाकर व अन्य किसी भी प्रकारसे भगवान् जिनेन्द्रदेवकी भक्ति करता

है, अथवा जो भगवान् जिनेन्द्रदेवकी वाणीका पठन-पाठन करता है, लिखकर व लिखाकर जिनालयमें समर्पण करता है या चारों प्रकारके संघको समर्पण करता है अथवा गुरुको भेंट करता है, शास्त्रोंको श्रेष्ठ बंधनमें बांधकर रखता है, भव्य जीवोंके लिए उन शास्त्रोंके पठन-पाठनकी व्यवस्था कर देता है, उनके रखनेके स्थान व साधन बनवा देता है और इस प्रकार जो सरस्वती माताकी सेवा किया करता है तथा सदाकाल प्रिय मिष्ट भाषण करनेके लिए प्रयत्न किया करता है ऐसे पुरुषको परलोकमें जाकर अत्यंत मिष्ट स्वर प्राप्त होता है जिससे उसकी वाणी कोकिलके समान सबके लिये प्रिय और मिष्ट मालूम होती है। यही समझकर भव्यजीवोंको सदाकाल भगवान्की भक्ति करते रहना चाहिये और सदाकाल जिनवाणी माताकी सेवा करते रहना चाहिये।

संतोष और शांतिके लाभका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! स्यात्।
सन्तोषशान्तेश्च विशेषलाभः।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे संतोष और शांतिका विशेष लाभ होता है।

उत्तर– निर्ग्रंथसाधोश्च जिनागमस्य,
चित्ताक्षजेतुश्च विशेषसेवा।
कृता स्तुतिर्येन च तस्य सङ्गः,
सन्तोषशान्तेश्च विशेषलाभः।। १७०।।

अर्थ—जो पुरुष वीतराग निर्ग्रंथ साधुओंकी विशेष सेवा करता है, जिनवाणी की विशेष सेवा करता है, इन्द्रिय और मनको जीतनेवालोंकी विशेष सेवा करता है, अथवा जो देवशास्त्र-गुरुकी स्तुति करता रहता है ऐसे पुरुषको संतोष और शांतिका विशेष लाभ हुआ करता है।

भावार्थ—जो पुरुष संतोष और शांतिका स्वरूप समझते हैं, तथा जो आत्माके शुद्ध स्वरूपमें ही यथार्थ संतोष और शांति समझते हैं, ऐसे ही पुरुष यथार्थ संतोष और यथार्थ शांतिको धारण करनेवाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंकी सेवा किया करते हैं उनकी स्तुति किया करते हैं उनका वैयावृत्य किया करते हैं, और उनकी आज्ञाका पालन किया करते हैं। इसी प्रकार वे मनुष्य भगवान् जिनेन्द्रदेवकी भक्ति, स्तुति, पूजा आराधना किया करते हैं, जिनवाणीकी सेवा किया करते हैं, जिनवाणीके पठन-पाठनका आस्वादन किया करते हैं, और सब प्रकारसे जिनवाणी माताकी सेवा और भक्ति किया करते हैं, ऐसे ही महापुरुष उस परमसंतोष और परमशांतिका विशेषलाभ प्राप्त किया करते हैं। देव, शास्त्र, गुरुके समागम और उनकी सेवासे उनके आत्मामें परमशांति और परमसंतोष प्राप्त हो जाता है। यह उनकी शांति और संतोषका विशेष लाभ है।

पापकार्योंसे होनेवाली धनकी वृद्धिका कारण बतलाते हैं–

प्रश्न– **कस्माद्धि पुण्याच्च सदापि जन्तो–**
वृद्धिर्भवेत्पापकृते धनादेः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि कैसे पुण्यकार्यसे पापमें लगनेवाले धनकी वृद्धि होती है ?

उत्तर– **परोपकारः खलु केवलं यै–**
र्मिथ्याव्रतं वा कुतपः कृतं चेत्।
स्यादेव तेषामपि तत्प्रभावाद्,
वृद्धिः सदा पापकृते धनादेः ।। १७१ ।।
भुक्तं यथान्नं ह्युदरे च यावत्,
तिष्ठेन्न तावत्तुदति क्षुधादिः ।
पूर्वार्जितं पापमपीह यावत्,
जन्तोर्न सत्कार्यकृतोपि शांतिः ।। १७२ ।।

अर्थ—जो पहले जन्ममें केवल परोपकार किया करते हैं, मिथ्याव्रतोंका पालन करते हैं, मिथ्या तपश्चरण करते हैं ऐसे पुरुषोंके उस मिथ्यातपश्चरण आदिके प्रभावसे अनेक पाप उत्पन्न करनेके लिये धनादिककी वृद्धि होती है। जिस प्रकार जब तक भूखकी बाधा नहीं सताती तब तक भोजन किया हुआ अन्न पेटमें बना ही रहता है, उसी प्रकार जब तक जीवोंके सत्कार्य व शांति नहीं होती तब तक पूर्वोपार्जित पापकर्म बने ही रहते हैं।

भावार्थ—उपकार दो प्रकारका होता है पहला उपकार अपने आत्माका कल्याण करना और दूसरा उपकार अन्य जीवोंकीआत्मा का कल्याण करना है। जो जीव पहले अपने आत्माका कल्याण कर लेते हैं वे ही जीव.अन्य आत्माओंका कल्याण कर सकते हैं, जो जीव स्वयं अभक्ष्य भक्षण करता है वह दूसरोंके लिए अभक्ष त्याग करनेका उपदेश नहीं दे सकता। यदि किसी प्रयोजनवश देता भी है तो उस उपदेशका कोई असर नहीं होता। गृहस्थोंके हजारों उपदेशोंका जो असर होता है उससे कहीं अधिक असर मुनिराजके एक वाक्यका हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सबसे पहले अपने आत्माका कल्याण कर लेना चाहिये। अपने आत्माका कल्याण हो जानेपर अन्य जीवोंका कल्याण स्वयं होने लगता है। अतएव जो पुरुष अपने आत्माका कल्याण न करते हुए केवल दूसरोंको उपदेश दिया करते हैं उनका वह उपदेश देना व उपकार करना मिथ्या है। इसी प्रकार मिथ्या तपश्चरण करनेसे व मिथ्याव्रतोंके पालन करनेसे आत्माका कल्याण नहीं हो सकता। दिनभर उपवास करना और फिर रातमें भोजन करना पुण्यका कारण नहीं हो सकता। अतएव ऐसे तपश्चरण वा व्रतोंके पापानुबंधी पुण्यका बंध होता है। जिस पुण्य के उदयसे पापका बंध होता हो उसको पापानुबंधी पुण्य कहते हैं। ऊपर लिखे मिथ्या तपश्चरण वा मिथ्याव्रतोंसे व मिथ्या तपस्वियोंको दान देनेसे परलोकमें

जाकर धनकी प्राप्ति हो जाती है, परंतु ऐसा धन पापकार्योंमें ही लगता है, किसी व्यसनमें लगता है व किसी हिंसाके साधनमें लगता है। इस प्रकार उससे महापाप उत्पन्न होकर नरकादिकके दुःख प्राप्त होते हैं। यहाँपर इतना और समझ लेना चाहिए कि मिथ्याव्रत आदिकोंके द्वारा जो पापानुबंधी पुण्यका बंध होता है उनका उदय जब तक बना रहता है तब तक उस धनके द्वारा होनेवाले व्यसनादिकोंसे उत्पन्न हुए पाप कर्म उदयमें नहीं आते। जब उस पापानुबंधी पुण्यका उदय समाप्त हो जाता है तब उन पापोंका उदय होता है। पापी जीवोंके सुखी होनेका यही कारण है।

देव भी दास हो जाते हैं, इसका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पुण्याच्च नृणां भवेयुः।
सर्वेऽपि देवाः सुजनाश्च दासाः॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे देव भी दास हो जाते हैं, तथा सज्जन भी दास हो जाते हैं?

उत्तर— सुधार्मिका वा सुखिनश्च जीवाः,
भवन्तु भक्ताः सुगुरोर्जिनस्य।
पुरेति भावश्च बभूव येषां,
सर्वेऽपि देवाश्च भवन्ति दासाः॥ १७३॥

अर्थ—इस संसारमें समस्त जीव सुखी हों, समस्त जीव धार्मिक हों, समस्त जीव भगवान् जिनेन्द्रदेवके भक्त हों और समस्त जीव वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंके भक्त हों इस प्रकारके उत्तम भाव जिनके होते हैं वे जीव अगले जन्ममें जाकर उत्तममनुष्य होते हैं और देव लोग भी उनकी सेवा किया करते हैं।

भावार्थ—इस जीवके जैसे परिणाम होते हैं वैसे ही शुभ व

अशुभ कर्मोंका बंध हुआ करता है। जो जीव मोक्षमार्गमें लगा रहता है, तथा दूसरोंको मोक्षमार्गमें लगानेके लिए सदाकाल प्रयत्न किया करता है अथवा सब जीव अपने-अपने पापकर्मोंका त्याग कर दें और सब जीव अहिंसामय पवित्र जैनधर्मका पालन करें, समस्त जीव सुखी हों इस प्रकार जो अपने परिणामोंको सदाकाल धर्मध्यानमें लगाता रहता है वह जीव उस धर्मध्यानके प्रभावसे स्वर्गमें उत्तमदेव होता है। वहाँपर भी अनेक देव उसके दास होते हैं तथा वहाँसे आकर चक्रवर्ती आदि उत्तमपदको धारण करनेवाला मनुष्य होता है उस समयमें अनेक देव उसकी सेवा करता हैं यही समझकर भव्यजीवोंको सदाकाल अपने परिणाम शुभ व धर्मध्यानरूप ही बनाये रखना चाहिए और सदाकाल मोक्षमार्गमें लगे रहना चाहिए।

खर्च करनेपर भी धन की वृद्धि होनेका कारण उदाहरण सहित दिखलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे।
धनस्य वृद्धिर्भवति व्ययेऽपि।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे खर्च करनेपर भी धनकी वृद्धि होती रहती है।

उत्तर– सुपात्रदाने हि धनव्ययेन,
वृद्धिर्धनादेश्च भवेन्न हानिः।
निष्कासनात्कूपजलस्य वृद्धे-
र्यथान्यविद्यार्थिजनाय दानात्।। १७४।।

अर्थ—वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंको आहारदान देनेसे व औषधदान देनेसे, वसतिका बनवा देनेसे व शास्त्रदान देनेसे सदाकाल धनकी वृद्धि होती रहती है। सुपात्रोंको दान देनेसे धनकी हानि कभी नहीं होती। जैसेकि कुएसे जल निकालनेपर भी जलकी कभी कमी नहीं होती

अथवा विद्यार्थियोंको विद्या पढ़ानेसे व देनेसे बुद्धिमें किसी प्रकारकी कमी नहीं होती, किन्तु विद्यादान देनेसे बुद्धिकी वृद्धि होती है।

भावार्थ—जिस प्रकार प्रतिदिन कूएसे पानी निकाला जाता है तब भी कूए में पानी उतना ही बना रहता है, जितना निकलता है उतना ही आ जाता है। जिस प्रकार विद्या दान देनेसे विद्याकी कमी नहीं होती किंतु विद्या और बुद्धि दोनोंकी वृद्धि होती रहती है उसी प्रकार सुपात्रोंको दान देनेसे धनमें कभी कमी नहीं होती, किंतु सुपात्रदान देनेसे जो पुण्यकी वृद्धि होती है उससे धनकी वृद्धि ही होती रहती है यही समझकर सुपात्रोंके लिए सदाकाल चारों प्रकारका दान देते रहना चाहिए।

सर्वत्र कीर्ति फैलनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।
सर्वत्र कीर्तिर्भवतीह नृणाम्॥

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्य कार्यके करनेसे मनुष्योंकी कीर्ति सर्वत्र फैलती है?

उत्तर— मानापमानो भवदश्च येन,
त्यक्तः कृतः सर्वहिताय यत्नः।
तस्यैव कीर्तिः शशिनो विशुद्धा,
समस्तविश्वे प्रसरेत्प्रभेव॥ १७५॥

अर्थ—जो पुरुष संसारको बढ़ानेवाले अपने मान-अपमान का सर्वथा त्याग कर समस्त जीवोंके हितके लिये प्रयत्न करता रहता है उसकी चंद्रमाकी प्रभाके समान निर्मल कीर्ति समस्त संसारमें फैल जाती है।

भावार्थ—जिस प्रकार चंद्रमाकी निर्मल चांदनी समस्त संसारमें

फैल जाती है और लोगोंको आनंद देती है उसीप्रकार जो पुरुष जन्ममरणरूप संसारको बढ़ानेवाले मान व अपमान का सर्वथा त्याग कर देता है, और समस्त जीवोंके हितके लिये सदाकाल प्रयत्न करता रहता है। इसके सिवाय जो देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति करता है, उनकी पूजा स्तुति करता है व उनके अनुपम गुणोंका स्मरण किया करता है उस पुरुषकी निर्मल कीर्ति समस्त संसारमें फैल जाती है और सबको सुख देनेवाली होती है।

मनोज्ञशरीर प्राप्त करनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वपुर्मनोज्ञं ।
वद प्रभो ! मे लभते मनुष्यः ।।

अर्थ—हे प्रभो ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस किस पुण्यकार्यके करनेसे इस मनुष्यको मनोहरशरीरकी प्राप्ति होती है ?

उत्तर– यः शुद्धचिद्रूपसुखस्य चर्चां,
करोति चानन्दपदे प्रवृत्तिम् ।
स्वानन्दतृप्तस्य मुनेश्च सेवां,
स दिव्यदेहं लभते मनुष्यः ।। १७६ ।।

अर्थ—जो पुरुष चिदानन्दमय शुद्ध आत्माके अनंतसुख की चर्चा किया करता है, जो अपने आत्माके शुद्धस्वरूपमें व उसके अनंतसुखमें प्रवृत्ति किया करता है और जो अपने शुद्ध-आत्मामें तृप्त रहनेवाले परम मुनियोंकी सेवा किया करता है वह मनुष्य परलोकमें दिव्यशरीरको धारण करता है।

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम मुनियोंकी सेवा किया करता है, व धर्मध्यान धारण करता है, शुद्ध ध्यानमें भी लीन रहता है। अथवा जो घोर तपश्चरण करता है, दश धर्मोंका पालन करता है, गुप्ति समितियोंका पालन करता है व और भी पापोंको नाश करनेवाले कार्य

किया करता है वह मनुष्य परलोकमें जाकर दिव्यशरीरको धारण करनेवाला देव होता है और वहाँसे आकर कामदेव व कामदेवके समान मनोहर शरीर को धारण करनेवाला उत्तममनुष्य होता है।

श्रेष्ठ मनुष्योंमें भी माननीय होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च जनाः प्रभो ! ये।
सन्मान्यतां श्रेष्ठजनेऽपि यान्ति।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव श्रेष्ठपुरुषोंमें भी माननीय माना जाता है।

उत्तर– पुराभवे सर्वनृणां हिताय,
कृतः प्रयत्नो विनयोपचारः।
सतां यथायोग्य नतिक्रिया यै-
स्ते योग्यतां श्रेष्ठजनेपि यान्ति।। १७७।।

अर्थ—जो जीव पहले जन्ममें समस्त जीवोंके हितके लिए प्रयत्न किया करते हैं अथवा जो पुरुष सज्जन पुरुषोंका विनय किया करते हैं, उनकी सेवा सुश्रूषा किया करते हैं व यथायोग्य रीति से उनको नमस्कार किया करते हैं ऐसे पुरुष परलोकमें जाकर श्रेष्ठ मनुष्योंमें भी सर्वोत्तम योग्यताको धारण करते हैं।

भावार्थ—योग्य काम करनेसे योग्यता प्राप्त होती है। जो जीव समस्त जीवोंके हितके लिए प्रयत्न करते रहते हैं, दुःखी जीवोंका दुःख दूर करते हैं, रोगियोंकी सहायता करते हैं, भूखोंको अन्न जल देते हैं, व सज्जनोंकी सेवा-सुश्रूषा किया करते हैं, उनकी वैयावृत्त्य किया करते हैं व ऐसे और भी उत्तम-उत्तम धार्मिक कार्य करते हैं वे मनुष्य परलोकमें जाकर श्रेष्ठ पुरुषोंमें भी अत्यंत योग्य व सबके माननीय उत्तम मनुष्य होते हैं।

पापानुबंधी पुण्यका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि कार्याच्च जनश्च लोके ।
पापनुबन्ध्यं च करोति पुण्यम् ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस कार्यके करनेसे यह मनुष्य पापानुबंधी पुण्य उत्पन्न करता है ।

उत्तर– मन्दोदयात्कर्मण एव जीवः,
मिथ्यात्वयुक्तं च करोति पुण्यम् ।
सुखस्य लेशं भुवि दर्शयित्वा,
प्राप्नोति जीवं भुवि पापमार्गे ।। १७८ ।।

अर्थ—पापकर्मोंके मंद उदय होनेसे यह जीव मिथ्यात्वके साथ पुण्यकार्य करता है वह पुण्यकार्य परलोकमें जाकर थोड़ासा सुख दिखला देता है, परंतु फिर इस जीवको पापमार्गमें ही घसीट ले जाता है ।

भावार्थ—जो जीव मिथ्यात्वके साथ थोड़ासा पुण्यकार्य करते हैं उनके पुण्यबंध तो थोड़ा होता है, परंतु मिथ्यात्वके निमित्तसे पापकर्मोंका बंध अधिक होता है । ऐसे पुण्यको पापानुबंधी पुण्य कहते हैं । ऐसे पुण्यके उदयसे थोड़ासा सुख मिलता है, परंतु उस सुखसे व उस पुण्यके उदयसे मिले हुए धनादिकके द्वारा वह पापकर्म अधिक करने लगता है और फिर उस पापके फलरूप नरकादिकके दुःख भोगता है । इसलिये इस जीवको सबसे पहले मिथ्यात्वका त्याग करना चाहिये । समस्त दुःखोंका मूल कारण यही है ।

पुण्यानुबंधी पुण्यका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कथं कदायं भुवि भव्यजीवः ।
पुण्यानुबन्ध्यं च करोति पुण्यम् ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव कब और किस प्रकार पुण्यानुबंधी पुण्य प्राप्त करता है?

उत्तर– **भव्यो जनो दर्शनमोहनाशाद्,**
यत्किंचिदेवं हि शुभं करोति।
पुण्यानुबन्ध्यं कथितं तदेव,
तद्योगतो याति शिवं स योगी।। १७९।।

अर्थ—जो भव्यजीव दर्शनमोहनीय कर्मके नाश होनेसे जो कुछ भी पुण्यकार्य करता है उसको पुण्यानुबंधी पुण्य कहते हैं, इस पुण्यानुबंधी पुण्यके निमित्तसे यह योगी अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—इस संसारमें दर्शनमोहनीय कर्म ही समस्त पापोंका कारण है जब यह दर्शनमोहनीय कर्म सर्वथा नष्ट हो जाता है और निर्मल सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है तब यह जीव अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपको जानने और देखने लगता है तथा साथमें आत्मासे भिन्न शरीरादिक पर पदार्थोंका स्वरूप भी समझने लगता है। उन दोनोंका स्वरूप समझकर वह आत्माके शुद्ध स्वरूपको ग्रहण करने लगता है और आत्माके शुद्ध स्वरूपसे भिन्न राग द्वेष आदि समस्त विभाव परिणामोंका त्याग कर देता है, तथा धनधान्य व शरीरादिकसे भी ममत्वको त्याग देता है। ऐसी अवस्थामें उससे पापकार्य तो कभी बनता ही नहीं है, वह जो कुछ करता है वह पुण्यकार्य वा शुभकार्य ही होता है। ऐसे पुण्यकार्यसे जो पुण्यकर्मका बंध होता है उसे पुण्यानुबंधी पुण्य कहते हैं। ऐसे पुण्यकर्मके निमित्तसे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव, बलदेव आदि उत्तम पदको धारण करनेवाली उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर जैनेश्वरी दीक्षा लेता है और घोर तपश्चरण कर समस्त कर्मोंका नाश कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यही समझकर समस्त भव्यजीवोंको सबसे पहले मोहनीयकर्मका नाश कर सम्यग्दर्शन

प्राप्त कर लेना चाहिये। सम्यग्दर्शनके प्राप्त होनेसे अवश्य ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।

परस्पर शांतिका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— **कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! मे।**
मिथो जनानां भवतीह शांतिः ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे लोगोंमें परस्पर शांति बनी रहती है?

उत्तर— **गुरूपदेशामृतपानतृप्ता,**
दक्षा सदा ये स्वपरोपकारे।
तेषां जनानां शिववाञ्छकाना-
मिहान्यलोकेऽपि मिथः प्रशान्तिः ।।१८०।। ।।

अर्थ—जो पुरुष वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंके उपदेशरूपी अमृतके पीनेसे सदाकाल तृप्त रहते हैं, और जो अपने आत्माका कल्याण करनेमें तथा अन्यजीवोंके कल्याण करनेमें सदाकाल चतुर रहते हैं ऐसे मोक्षकी इच्छा करनेवाले जीवोंको इस लोकमें सबके साथ शांति रहती है और परलोकमें भी सदाकाल शांति रहती है।

भावार्थ—जो आत्माके शांत स्वभावको समझते हैं, वे ही भव्यजीव सदाकाल शांत रहते हैं। जो जीव पंचपरमेष्ठीकी भक्ति करते हैं, सदाकाल उनकी पूजा करते हैं, आचार्य-उपाध्याय-साधुओंकी आज्ञाका पालन करते है, उनके उपदेशसे अपने आत्माको तृप्त करते हैं, व्रत उपवास व ध्यान आदिके द्वारा अपने आत्माका कल्याण करते हैं तथा अन्य भव्यजीवोंको भी उसी आत्मकल्याणके मार्गमें लगाते रहते हैं। वे जीव इस लोकमें भी शांति और निराकुलताके साथ व्यतीत करते हैं और परलोकमें जाकर भी परमशांत अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं।

सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– **कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।**
सर्वार्थसिद्धिं लभते मनुष्यः ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होता है ?

उत्तर– **धर्मानुरागात्स्वपदाभिलाषात्,**
स्वस्वादिनः पञ्चगुरोः कृपाब्धेः ।
सेवाविशेषाच्छुभशुक्लयोगात्,
सर्वार्थसिद्धिं लभते मनुष्यः ।। १८१ ।।

अर्थ–जो मनुष्य सदाकाल धर्मसे अनुराग रखते हैं, अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपके प्राप्त होनेकी अभिलाषा रखते हैं, अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपका अनुभव करते रहते हैं, कृपाके सागर ऐसे पंचपरमेष्ठियोंकी विशेष सेवा किया करते हैं और धर्मध्यान तथा शुक्लध्यानको धारण किया करते हैं ऐसे जीव सर्वार्थसिद्धिमें जाकर उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ—स्वर्गमें सर्वार्थसिद्धि सबसे ऊपर और सबसे उत्तम विमान है, वहाँके देवोंका शरीर एक हाथका होता है वे अहमिन्द्र कहलाते हैं, सब समान ऋद्धिको धारण करनेवाले होते हैं। उनकी आयु तेतीस सागरकी होती है। वे अपना विमान छोड़कर कहीं नहीं जाते। वहीं पर बैठे-बैठे केवल तत्त्वकी चर्चा किया करते हैं और आयु पूर्णकर उत्तम मनुष्य होते हैं वहाँ तपश्चरण कर नियमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं। सर्वार्थसिद्धिके देव घोर तपश्चरण करनेसे होते हैं, उत्कृष्ट धर्मध्यान वा शुक्ल ध्यानसे उत्पन्नसे होते हैं, व पंच परमेष्ठीकी विशेष सेवा करनेसे होते, हैं, आत्माके शुद्धस्वरूपमें लीन होनेसे होते हैं और उत्कृष्ट धर्म धारण करनेसे होते हैं।

तीर्थंकर होनेका कारण बताते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! मे ।
प्रबध्यते तीर्थकरस्य पुण्यम् ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे तीर्थंकर होने योग्य पुण्यकर्मका बंध होता है ?

उत्तर- संसारसिन्धौ पतितान् जनान् हि,
वोध्दृत्य यत्नो भुवि यैः कृतश्च ।
शुद्धे सदा स्थापयितुं स्वधर्मे,
तैर्बध्यते तीर्थकरस्य पुण्यम् ।। १८२ ।।

अर्थ—जो सम्यग्दृष्टि पुरुष संसाररूपी महासागरमें पड़े हुए जीवोंको उठाकर अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें स्थापन करनेके लिए प्रयत्न करते रहते हैं ऐसे पुरुष तीर्थंकर होने योग्य पुण्य प्रकृतिका बंध करते हैं ।

भावार्थ—जो पुरुष शुद्ध सम्यग्दृष्टि होते हैं तथा सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन करते रहते हैं और जो समस्त जीवोंके दुःखोंको दूर करनेकी तथा सबको मोक्ष प्राप्त करा देनेकी भावना रखते हैं ऐसे जीवोंके तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है । अपने सम्यग्दर्शनको निर्मल रखना, पंच परमेष्ठियोंकी विनय करना शील और व्रतोंको अतिचार रहित पालन करना, निरंतर ज्ञानका अभ्यास करना, संसारसे भयभीत रहना, शक्तिके अनुसार तप करना शक्तिके अनुसार दान देना, साधुओंकी सेवा करना, वैयावृत्य करना, अरहंतदेवकी भक्ति करना, आचार्य परमेष्ठीकी भक्ति करना, उपाध्यायोंकी भक्ति करना, शास्त्रकी भक्ति करना, छह आवश्यकोंको कभी न छोड़ना, धर्मकी प्रभावना करना और धर्मात्माओंमें अनुराग रखना ये सोलह भावनाएँ हैं । इनका चिंतन करनेसे तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है तथा उसके उदयसे

समवसरणकी विभूति प्राप्त होती है। आठ प्रातिहार्य और चौंतीस अतिशय प्राप्त होते हैं और सब इन्द्र आकर उनकी सेवा करते हैं। यह सब विभूति केवलज्ञान उत्पन्न होने पर होती है और फिर वे अपनी पहले भवकी भावनाके अनुसार समस्त जीवोंको मोक्षमार्गका उपदेश देते हैं और अनेक जीवोंको मोक्षमार्गमें लगाकर उनका कल्याण करते हैं।

आचार्य इस अध्यायका उपसंहार करते हैं—

स्वशुद्धचिद्रूपपदाश्रितेन,
श्रीकुंथुनाम्ना वरसूरिणेति।
शुभोपयोगस्य मयाक्षसौख्य-
दातुः स्वरूपः कथितोऽक्षशान्त्यै॥ १८३॥

अर्थ—अपने आत्माके शुद्ध चैतन्य स्वरूपमें लीन रहनेवाले मुझ श्रेष्ठ आचार्य श्री कुंथुसागरने इन्द्रिय और मनको शांत व वश करनेके लिये इंद्रियोंको सुख देनेवाले शुभोपयोगका स्वरूप कहा है।

भावार्थ—इस अध्यायमें शुभोपयोगका स्वरूप कहा है। शुभोपयोगके फलसे इन्द्रियोंको सुख प्राप्त होता है व ऐहिक सामग्री प्राप्त होती है। उस इन्द्रियसुख व ऐहिकसामग्रीसे विरक्त होनेके लिये व इन्द्रिय और मनको वशमें करनेके लिये इन्द्रियोंका विजय करनेके लिये इस अध्यायका निरूपण किया है।

इति आचार्यश्रीकुंथुसागर विरचिते भावत्रय-फलप्रदर्शिनामके ग्रंथे शुभोपयोगफल वर्णनो नाम द्वितीयोऽध्यायः

इस प्रकार आचार्य श्री कुंथुसागर विरचित भावत्रयफलप्रदर्शी नामके ग्रंथ की 'धर्मरत्न' पं० लालाराम शास्त्री कृत हिन्दी भाषा टीकामें शुभोपयोग के फलको वर्णन करनेवाला यह दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

शुद्धोपयोगका वर्णन

शुद्धस्वरूपका निरूपण करते हैं—

निर्द्वन्दं निर्मदं सिद्धं शान्तं नत्वा शिवप्रदम् ।
शुद्धोपयोगरूपं हि वक्ष्ये शुद्धात्मसिद्धये ।।१८४।।
यद्विना जन्तुनो जन्म ब्रवीति दुःखदं वृथा ।
चिदानन्दालयस्यैवं स्वामी श्रीकुन्थुसागरः ।।१८५।। ।

अर्थ—जो सिद्ध भगवान् समस्त संकल्प-विकल्पोंसे रहित हैं, मद-रहित है, अत्यंत शांत हैं और मोक्षको देनेवाले हैं ऐसे सिद्धपरमेष्ठीको नमस्कार करके चिदानंदमय अपने शुद्ध आत्माका मैं स्वामी आचार्य श्रीकुंथुसागर आत्माकी शुद्धता प्राप्त करनेके लिये शुद्धोपयोगका स्वरूप निरूपण करता हूँ, क्योंकि उसके बिना जीवोंका जन्म दुःख देनेवाला और व्यर्थ समझा जाता है।

भावार्थ—आत्माका शुद्धोपयोग साक्षात् मोक्षका कारण है। यही कारण है कि शुद्धोपयोगके बिना इस जीवका जन्म लेना और विशेषकर मनुष्यपर्यायका धारण करना व्यर्थ और दुःखदायी कहलाता है। ऐसे इस शुद्धोपयोगका स्वरूप इस अध्यायमें निरूपण किया जाता है।

अनुभूतिके स्वामी होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो! ना ।
स्वात्मानुभूतेश्च पतिः प्रियः स्यात् ।।

अर्थ—हे प्रभो! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस पुण्यकार्यके करनेसे यह जीव अपने शुद्ध आत्माकी अनुभूतिका स्वामी व प्रिय हो जाता है?

उत्तर– स्वानन्दतुष्टस्य मुनेः प्रशंसा,
कृता क्षमादा निजतत्त्वचर्चा।
शिवप्रदा येन निजात्मशुद्धिः,
स्वात्मानुभूतेः स पतिः प्रियः स्यात्॥ १८६॥

अर्थ—जो जीव अपनी आत्माके शुद्ध स्वरूपमें संतुष्ट रहनेवाले मुनियोंकी प्रशंसा किया करता है, जो उत्तमक्षमाको प्राप्त करानेवाली अपनी आत्माके शुद्धस्वरूपकी चर्चा किया करता है जो मोक्ष देनेवाली अपने आत्माकी शुद्धि किया करता है ऐसा पुरुष अपने शुद्ध आत्माकी अनुभूतिका प्रियपति होता है।

भावार्थ—जो मनुष्य शुद्धात्मानुभूतिका स्वरूप समझता है और उसकी महिमाको जानता है, वही मनुष्य शुद्धात्मामें लीन रहनेवाले मुनियोंकी प्रशंसा करता है, उनकी स्तुति करता है, उनकी वैयावृत्य करता है और उनकी सेवा भक्ति करता है। इसी प्रकार वही मनुष्य अपनी आत्माके शुद्ध स्वरूपकी चर्चा करता है, उसके गुणोंको जाननेका प्रयत्न करता है, अपनी आत्माको शुद्ध करनेका व कर्मोंके नाश करनेका प्रयत्न करता है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्त होनेका प्रयत्न करने वाला पुरुष अपनी आत्माकी शुद्धानुभूतिका स्वामी होता है।

मन-वचन-कायकी सरलताका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– ब्रवीति यस्मान्मनसा यथा यः।
करोति वा चिन्तयतीह कस्मात्॥

अर्थ—यह मनुष्य जैसा मनसे चिंतवन करता है वैसा ही कहता है और वैसा ही करता है इसका क्या कारण है?

उत्तर– द्रष्टुः प्रबोद्धुः स्वपरात्मनो वा,
द्वेषस्य रागस्य विनाशकर्तुः।

सङ्गः कृतो येन निजात्मनो हि,
ब्रूयाद् यथा कौ सुकृतिं स कुर्यात् ।। १८७ ।।

अर्थ—जो पुरुष अपनी आत्माके शुद्ध स्वरूपको देखता है व जानता है और जिससे रागद्वेष दोनोंको नष्ट कर दिया है ऐसे महापुरुषोंकी जो सङ्गति करता है अथवा जो अपने शुद्ध आत्मामें लीन रहता है, ऐसा पुरुष जो मनमे चितवन करता है वही कहता है और जो कहता है वही करता है।

भावार्थ—जिसका मन, वचन, काय सरल होता है, व जिसके हृदयमें किसी प्रकारकी मायाचारी नहीं होती, किसी प्रकार का लोभ नहीं होता, किसी प्रकारका क्रोध नही होता और किसी प्रकारका मान नहीं होता, वही पुरुष जो चिंतवन करता है वही कहता है तथा वही करता है। मन, वचन, कायका सरल होना अत्यंत कठिन है, जो मनुष्य शुद्ध आत्माका स्वरूप समझता है और इसीलिए उसमें लीन रहता है, अथवा जो शुद्ध आत्मामें लीन रहनेवालोंकी संगति करता है, उनकी सेवा भक्ति करता है ऐसे पुरुषका ही मन, वचन, काय सरल होता है।

मनःपर्ययज्ञानका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्माद्धि पुण्याच्च वद प्रभो ! स्या-
ज्जीवो मनःपर्ययबोधधारी ।।

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस किस पुण्यकार्यके करनेसे इस जीवको मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है।

उत्तर— ध्यानं च धर्म्यं सुतपः प्रकुर्वन्,
यो वा चिदानन्दरसेन तृप्तः ।
रत्नत्रयी वा समशान्तिमूर्तिः,
स स्यान्मनःपर्ययबोधधारी ।। १८८ ।।

अर्थ—जो मुनि धर्मध्यानका चिंतवन करते हैं, श्रेष्ठ तपश्चरण करते हैं अथवा शुद्ध चिदानन्दके विज्ञानमय रसमें लीन रहते हैं जो रत्नत्रयको धारण करते हैं और समता तथा शान्तिकी परम मूर्ति हैं ऐसे परम मुनियोंके मन:पर्ययके ज्ञान उत्पन्न होता है।

भावार्थ—जो ज्ञान दूसरेके मनमें विचार किए हुए पदार्थोंको प्रत्यक्ष जान ले उसको मन:पर्ययज्ञान कहते हैं। यह मन:पर्ययज्ञान निर्मलसम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और निर्मल सम्यक्चारित्रको धारण करनेवाले परम मुनियोंके ही होता है। विपुलमति मन:पर्ययको धारण करनेवाले उसी भवसे मोक्षको जाते हैं तथा ऋजुमति मन:पर्ययको धारण करनेवाले उस भवसे भी जाते हैं और कभी-कभी एक दो भव धारण करके भी मोक्ष जाते हैं। जो मुनि घोर तपश्चरण करते हैं और ध्यानमें लीन रहते हैं आत्माके शुद्धस्वभावमें लीन रहते हैं अथवा परमशांति और परम समताको धारण करते हैं ऐसे मुनियोंके मन:पर्ययज्ञान होता है।

केवलज्ञान होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न– कस्माद्धि हेतोश्च वद प्रभो! मे।
जीवो भवेत्केवलबोधधारी।।

अर्थ—हे देव! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किस-किस कार्यके करनेसे केवलज्ञान प्राप्त करता है?

उत्तर– दृग्बोधचारित्रमये स्वरूपे,
तिष्ठेन्निजानन्दपदे पवित्रे।
ज्ञातापि दृष्टाखिलवस्तुनो यः,
स स्यात्कृती केवलबोधधारी।। १८९।।

अर्थ—जो सम्यग्दृष्टि भव्य मुनि परम पवित्र रत्नत्रयस्वरूप आत्मामें सदा लीन रहते हैं व अपनी आत्माके शुद्धस्वभावमें लीन रहते

हैं तथा जो समस्त पदार्थोंके ज्ञाता दृष्टा हैं ऐसे परमोत्कृष्ट मुनि अवश्य ही केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—केवलज्ञानकी प्राप्तिके लिए शुक्लध्यान कारण है। विना शुक्लध्यानके केवलज्ञान कभी नहीं होता। इसका भी कारण यह है कि मोहनीयकर्मके नष्ट होनेपर तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतरायकर्मके नष्ट होनेपर केवलज्ञान होता है तथा ये सब कर्म शुक्लध्यानसे ही नष्ट होते हैं। विना शुक्लध्यानके घातियाकर्म कभी नष्ट नहीं होते हैं। ऐसा यह शुक्लध्यान श्रेणी चढ़नेके अनंतर होता है। श्रेणी चढ़नेमें वे मुनि ध्यानस्थ ही होते हैं और शुद्ध आत्माका ध्यान करते हैं, शुद्ध आत्मामें लीन रहते हैं, अपने आत्माको अन्य समस्त पदार्थोंका ज्ञाता-दृष्टा मानते हुए सबसे भिन्न मानते हैं। ध्यानमें वे केवल आत्मामय रहते हैं अथवा रत्नत्रयमय शुद्धात्म स्वरूपमें रहते हैं। ऐसे मुनि अपने शुक्लध्यानरूपी महाअग्निके द्वारा कर्मोंको नाश करते जाते हैं और गुणस्थानोंको पार करते जाते हैं। इस प्रकार वे बारहवें गुणस्थानके अंतमे घातियाकर्मोंको नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। आयु पूर्ण होनेपर वे अघातियाकर्मोंको नाश कर डालते हैं और मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

आत्माके शुद्धस्वरूपमें अनुराग होने का कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— **कस्माद्धि हेतोश्च वद प्रभो! मे।**
प्रीतिः पवित्रे स्वपदे भवेद्धि॥

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि किस-किस किस कारणसे आत्माके पवित्र शुद्धस्वरूपमें अनुराग उत्पन्न होता है।

उत्तर— **दृग्वृत्तमोहक्षयसम्भव या,**
स्वानन्दतुष्टे सुगुरौ प्रतीतिः।

श्रद्धा स्वधर्मे भवतीह पश्चात्,
स्वानन्दसाम्राज्यपदे प्रवेशः ।। १९० ।।

अर्थ—दर्शनमोहनीय व चारित्रमोहनीय कर्मका क्षय क्षयोपशम होनेपर सबसे पहले अपने शुद्ध आत्मामें संतुष्ट रहनेवाले वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंमें विश्वास होता है अथवा भगवान् जिनेंद्रदेवके कहे हुए अहिंसामय जैनधर्ममें श्रद्धा उत्पन्न होती है। तदनंतर वह जीव चिदानंदमय आत्माके शुद्ध स्वरूपमें अनुराग कर उसमें प्रवेश करने लगता है।

भावार्थ—दर्शनमोहनीय कर्मके उपशम होनेसे व क्षयोपशम होनेसे अथवा क्षय होनेसे देव-शास्त्र-गुरुमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। भगवान् जिनेंद्रदेवके कहे हुए सप्त तत्त्वोंमें व छहों द्रव्योंमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। तदनंतर वह आत्माके यथार्थ स्वरूपको समझने लगता है तथा उसके शुद्ध स्वरूपको उपादेय व ग्रहण करने योग्य समझता हुआ उससे भिन्न शरीर, परिग्रह कुटुंब, धन आदि समस्त पदार्थोंको अपने आत्मासे सर्वथा भिन्न और इसीलिए त्याग करने योग्य हेय समझ लेता है। तदनंतर चारित्र मोहनीय कर्मके क्षयोपशमादिक होनेपर हेय पदार्थोंका त्याग कर देता है और उपादेय स्वरूप अपने शुद्ध आत्माको ग्रहण करने लगता है व उसमें प्रवेश करने लगता है। बस यहींसे उसका सम्यक्चारित्र प्रारंभ होता है और वह धीरे-धीरे पूर्ण चारित्रको धारण करता हुआ केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

स्वभावसे ही शुद्ध आत्मामें लीन होनेका कारण बतलाते हैं—

प्रश्न— कस्य प्रसादाद्धि वद प्रभो ! मे ।
स्वात्मा स्वभावात्स्वपदे प्रतिष्ठेत् ।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि यह जीव किसके प्रसादसे स्वभावसे ही अपने आत्मामें लीन रहता है।

उत्तर— **निजान्यवेदी च दयार्द्रचित्तो,**
यः पूर्वतो वा सुसमाधिनिष्ठः।
चारित्रमोहादिविशेषनाशात्,
स्वात्मा स्वभावात्स्वपदे प्रतिष्ठेत्॥ १९१॥

अर्थ—जो आत्मा अपनी आत्माके स्वरूपको जानता है, अन्य जीवोंके स्वरूपको व पुद्गलादिक अन्य समस्त पदार्थोंके स्वरूपको जानता है, जिसका हृदय सदाकाल दयासे परिपूर्ण रहता है और जो पूर्व जन्मसे ही समाधि व ध्यानमें लीन रहता है ऐसा आत्मा चारित्र-मोहनीय आदि कर्मोंके विशेष नाश होनेसे स्वभावसे ही अपने आत्माके शुद्धस्वरूपमें लीन हो जाता है।

भावार्थ—आत्माको अपने ही शुद्धस्वरूपमें लीन होनेके लिये सम्यग्दर्शनकी आवश्यकता है। विना सम्यग्दर्शनके न तो सम्यग्ज्ञान होता है, न आत्माका यथार्थस्वरूप जाना जाता है और न अन्य पदार्थोंका यथार्थस्वरूप जाना जाता है। बिना सम्यग्दर्शनके जीवोंकी दयाका पालन भी नहीं होता और न समाधिमरण व शुभध्यान होता है। जब सम्यग्दर्शनपूर्वक ये ऊपर लिखे हुए सब साधन मिल जाते हैं और उस समय चारित्रमोहनीयकर्मका विशेष क्षय हो जाता है तब यह आत्मा स्वभावसे ही अपने आत्मामें लीन हो जाता है। यह मोहनीयकर्म ही आत्माको अपने स्वभावमें स्थिर नहीं होने देता, जब दर्शनमोहनीय और फिर क्रमशः चारित्रमोहनीय कर्म नष्ट होता जाता है तब यह आत्मा अपनी आत्मामें स्थिर होकर आत्माके यथार्थ स्वभावको प्राप्त कर लेता है और फिर शीघ्र ही कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

शुद्धअशुद्धनिश्चयनयसे सप्त तत्त्वोंका निरूपण करते हुए अपनी शुद्ध आत्माको समस्त तत्त्वोंसे भिन्न दिखलाते हैं—

चिन्मात्रमूर्तिः परमार्थदृष्ट्या,
रागादिकर्ता व्यवहारदृष्ट्या ।
ज्ञात्वेति पूर्वोक्तचिदात्मचिह्नं,
चिन्मात्रमूर्तिर्भवतान्ममात्मा ।। १९२ ।।

अर्थ—यदि शुद्धनिश्चयनयसे देखा जाय तो यह आत्मा अत्यंत शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, किन्तु व्यवहारदृष्टिसे (अशुद्ध निश्चयनयसे) तो राग-द्वेष आदि विभाव परिणामोंका कर्ता है। इसप्रकार शुद्धनिश्चयनयसे तथा अशुद्ध निश्चयनयसे चैतन्यस्वरूप आत्माके चिह्न बतलाये हैं इनको जानकर मेरा यह आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप बना रहे।

भावार्थ—यह आत्मा अनादिकालसे कर्मोंके आधीन होकर अनेक प्रकारके शरीर धारण करता है। कर्मके वश होकर ही नरकमें जाता है, स्वर्गमें जाता है, तिर्यंच होता है व मनुष्य होता है। इसप्रकार कर्मोंके आधीन होकर ही यह चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता है। वहाँपर यह अपने शरीरके द्वारा कुछ न कुछ क्रियायें करता ही रहता है। कभी घट बनाता है, कभी वस्त्र बनाता है, कभी भोजन बनाता है, कभी यात्रा करता है, कभी किसीको मारता है, कभी बोझा ढोता है, व अन्य अनेक कार्य किया करता है। यद्यपि ये सब क्रियायें शरीरके द्वारा होती हैं तथापि इनका करनेवाला जीव ही माना जाता है और व्यवहारदृष्टिसे माना जाता है। इसलिए व्यवहारदृष्टिसे यह जीव घट पट आदिका कर्ता कहा जाता है। यदि अशुद्ध निश्चयनयसे देखा जाय तो ये सब क्रियायें शरीरसे होती है, आत्मा तो केवल राग, द्वेष, इच्छा व क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारोंका करनेवाला है, आत्मामें इन विकारोंके होनेसे ही ये घट पटादिक पदार्थ बनाये जाते हैं। इसलिए अशुद्धनिश्चयनयसे यह रागादिक विकारोंका कर्ता है। तथा यदि

शुद्धनिश्चयनयसे देखा जाय तो यह आत्मा शुद्धस्वरूप है और इसीलिए वह शुद्धभावोंका कर्त्ता है। शुद्धनिश्चयनयसे यह जीव अशुद्ध भावोंका भी कर्त्ता नहीं है। जिसप्रकार इस जीवको शुद्ध-अशुद्ध व व्यवहारदृष्टिसे कर्त्ता बतलाया है उसी प्रकार इन्हीं तीनों नयोंसे भोक्ता भी समझ लेना चाहिये। इसी प्रकार यह जीव व्यवहारदृष्टिसे श्वासोच्छावासादिक दश प्राणोंसे जीवित रहता है, निश्चयनयसे शुद्धचैतन्यस्वरूप प्राणोंसे जीवित रहता है। व्यवहारदृष्टिसे चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन व अवधिदर्शनको धारण करता है तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, कुमति, कुश्रुत और कुअवधिको धारण करता है और निश्चयनयसे केवल दर्शन और केवलज्ञानको धारण करता है। व्यवहारदृष्टिसे संसारी है, निश्चयदृष्टिसे सिद्धोंके समान है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न नयोंसे जीव अनेक प्रकारका सिद्ध होता है। इन सबको समझकर अपने आत्माको शुद्ध बनानेका प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि आत्माके शुद्ध होनेपर ही संसारकी समस्त व्याधियाँ और चारों गतियोंका परिभ्रमण मिटता है। जब आत्मा शुद्ध होजाता है तब इस आत्माके समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं और यह आत्मा शुद्ध चिदानंदमय व परब्रह्मस्वरूप अवस्थाको प्राप्त हो जाता है और फिर वह कभी भी इस संसारमें नहीं आता अर्थात् फिर कभी भी शरीर धारण नहीं करता, फिर तो अनंतानंत कालतक अनंत सुखमय बना रहता है। मेरा भी यह आत्मा ऐसी ही चिदानंदमय अवस्थाको प्राप्त हो ऐसी मैं सदाकाल भावना रखता हूँ।

अजीवपदार्थोंको बतलाते हुए उन सबसे अपने शुद्ध आत्माकी भिन्नता दिखलाते हैं—

धर्मोऽप्यधर्मोऽस्ति नभश्च कालो,
ह्यजीवरूपो भुवि पुद्गलोऽपि।
नाजीवरूपोऽपि कदा भवामि,
चिन्मात्रमूर्तिः खलु किन्तु शुद्धः ।। १९३ ।।

अर्थ—धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल ये सब अजीव पदार्थ हैं, यह मेरी आत्मा कभी भी अजीवरूप न हो किन्तु सदाकाल शुद्ध चैतन्यस्वरूप बना रहे, ऐसी मैं भावना करता हूँ।

भावार्थ—आकाश अनंत है इसके मध्यभागमें लोकाकाश है जो घनवात धनोदधिवात और तनुवात के आधार है। इस लोकाकाशमें सर्वत्र व्याप्त होकर धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य भरे हुए हैं, जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतने कालाणु हैं। अनंतानंत जीव हैं और उनसे भी अनंतानंत पुद्गल हैं। इनमेंसे जीव और पुद्गल ये दो पदार्थ क्रियावान् हैं अर्थात् इनमें चलनेकी शक्ति है। जीवमें तो चलनेकी शक्ति प्रत्यक्ष दिखाई देती है तथा पुद्गलमें भी वायु बिजली आदिमें दिखाई देती है। जीवोंमें जैसे वृक्षादिक नहीं चलते उसी प्रकार पुद्गलोंमें भारी पुद्गल नहीं चलते। वे ही पदार्थ हलके होनेपर चलने लगते हैं जैसे लकड़ी नहीं चलती परंतु जल जानेपर उसके बहुतसे परमाणु उड़कर चले जाते हैं, जिनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हो उनको पुद्गल कहते हैं। अचेतन पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, शब्द आदि सब पुद्गल हैं इनमें सूक्ष्म व स्थूलरीतिसे रूपादिक चारों गुण पाये जाते हैं। जैसे वायुमें रूप दिखाई नहीं देता परंतु जब दो प्रकारकी वायु मिलाकर पानी बना लेते हैं तब उसमें रूप दिखाई देने लगता है। यदि वायुमें रूप नहीं होता है तो पानीमें कहाँसे आता इससे साबित होता है कि वायुमें भी रूप है। इसी प्रकार सबमें समझना चाहिए। इन जीव-पुद्गलोंको जो गमन करनेमें सहायता देता है उसको धर्मद्रव्य कहते हैं। जो ठहरनेमें सहायता देता है उसको अधर्मद्रव्य कहते हैं। जो इन समस्त पदार्थोंको ठहरनेके लिए स्थान देता है उसको आकाश कहते हैं। तथा जो इन समस्त पदार्थोंकी अवस्था को बदलने में सहायता देता रहता है उसको कालद्रव्य कहते हैं। इसप्रकार धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल ये पांचों तत्त्व अजीवतत्त्व कहलाते हैं। आत्मद्रव्य इन सबसे सर्वथा भिन्न है

आत्मा चैतन्य स्वरूप है, ज्ञान-दर्शनमय है और ये पाँचों तत्त्व चैतन्यस्वरूपसे सर्वथा भिन्न व रहित है तथा ज्ञान-दर्शनसे सर्वथा भिन्न व रहित है। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है तथा ये पाँचों तत्त्व ज्ञेय और दृश्य हैं। इसलिए मेरी आत्मा अजीव तत्त्वरूप कभी नहीं हो सकती। मेरी आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, समस्त पदार्थोंकी ज्ञाता-द्रष्टा है, रत्नत्रयस्वरूप है उत्तमक्षमा आदि दश धर्मस्वरूप है, पूर्ण चारित्र-स्वरूप है, और कर्मोंसे रहित अत्यंत शुद्धस्वरूप है। ऐसी मेरी आत्मा सदाकाल ऐसी ही बनी रहे और अनंतकालतकके लिए अनंत सुखमय हो जाय ऐसी मैं भावना करता हूं।

आस्रव तत्त्वका निरूपण करते हुए अपने आत्माको उससे सर्वथा भिन्न बतलाते हैं—

अशुद्धजीवस्य च पुद्गलस्य,
समागमादास्रवतत्त्वजन्म।
नाशुद्धजीवोऽस्मि न पुद्गलोऽस्मि,
भिन्नस्ततश्चास्रवतत्त्वतोऽहम्॥ १९४॥

अर्थ–अशुद्धजीव और अशुद्धपुद्गलके मिलनेसे आस्रव तत्त्व उत्पन्न होता है। मेरा यह आत्मा न तो अशुद्धजीवस्वरूप है और न अशुद्धपुद्गलस्वरूप है। इसीलिये मेरा यह आत्मा आस्रव तत्त्वसे सर्वथा भिन्न है।

भावार्थ—कर्मोंके आनेको आस्रव कहते हैं अथवा जिन कारणोंसे कर्म आते हैं ऐसे मनवचनकायकी क्रियारूप योगोंको भी आस्त्रव कहते हैं। अथवा मिथ्यादर्शन, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग आदि बंधके कारणोंको भी आस्त्रव कहते हैं। यह आस्रव अशुद्धजीव अशुद्धपुद्गलोंसे उत्पन्न होता है उसका भी कारण यह है कि जब इस अशुद्धजीवके परिणाम राग-द्वेषरूप होते हैं तब उन रागद्वेषके निमित्तसे

कार्मणवर्गणाएँ कर्मरूप परिणत होकर आत्माके साथ मिल जाती हैं। उन कार्मणवर्गणाओंका आत्माके साथ मिल जाना तो बंध है और कर्मरूप परिणत होना आस्त्रव है। रागद्वेषरूप परिणाम योगोंकी क्रियाओंसे ही होते हैं। इसलिए योग भी आस्रव कहलाते हैं। अथवा राग-द्वेषरूप परिणाम भी भावास्रव कहलाते हैं। ये सब आस्रव पौद्गलिक हैं, क्योंकि राग द्वेष भी कर्मोंके उदयसे होते हैं इसलिए वे भी पौद्गलिक हैं। मन-वचन-कायकी क्रिया पुद्गलरूप मन-वचन, कायसे ही होती है। इसलिए वह भी पौद्गलिक ही है तथा कार्मण वर्गणाओंका कर्मरूप परिणत होना पौद्गलिक है ही। इस प्रकार आस्रव तत्त्व पौद्गलिक है और अशुद्ध जीवमें होता है, क्यों अशुद्धजीवमें ही रागद्वेष उत्पन्न हो सकते हैं। शुद्धजीवमें रागद्वेष कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। इसलिए आस्रव तत्त्व अशुद्ध जीव और अशुद्ध पुद्गलसे ही उत्पन्न होता है। परन्तु मेरा यह शुद्धस्वरूप आत्मा न तो मन, वचन, कायकी क्रियारूप परिणत होता है, न रागद्वेषरूप परिणत होता है और न कर्मोंको ग्रहण करता है। इसलिए मेरा यह शुद्धआत्मा आस्रवतत्त्वसे सर्वथा भिन्न है। आस्रवतत्त्व संसारका कारण है और मेरा शुद्धआत्मा मोक्षस्वरूप है। इसप्रकार भी मेरा शुद्धआत्मा आस्रवतत्त्वसे सर्वथा भिन्न है ऐसी भावना रखना शुद्धोपयोग कहलाता है।

बंधतत्त्वका स्वरूप बतलाते हुए उससे अपने शुद्ध आत्मा को सर्वथा भिन्न बतलाते हैं—

अशुद्धजीवस्य च पुद्गलस्य,
बन्धो मिथः स्यान्नयमानसिद्धः।
नाऽशुद्धजीवोऽस्मि न पुद्गलोऽस्मि,
बन्धस्ततो मे च कथं समं स्यात् ॥१६५॥

अर्थ—अशुद्धजीव और अशुद्धपुद्गलोंका परस्पर मिल जाना प्रमाण और नयोंसे सिद्ध होनेवाला बंधतत्त्व कहलाता है। परन्तु मैं न तो अशुद्धजीव हूँ और न अशुद्धपुद्गल हूँ। अतएव मेरे साथ यह बंधतत्त्व कैसे हो सकता है अर्थात् कभी नहीं हो सकता।

भावार्थ—बंधतत्त्व तो सर्वथा पौद्गलिक ही है। क्योंकि विना कार्मणवर्गणाओंके बंध होता ही नहीं है। जब कार्मणवर्गणाएँ कर्मरूप परिणत होकर आत्माके अशुद्धप्रदेशोंके साथ मिल जाती हैं तब उसको बंध कहते हैं। यह बंध जिन परिणामोंसे होता है उन परिणामोंको भावबंध कहते हैं। यह भावरागद्वेष कारण पड़ता है। राग-द्वेषरूप परिणाम कर्मोंके उदयसे होते हैं तथा कर्मविशिष्ट आत्मामें ही होते हैं। इसलिए वे भी पौद्गलिक ही कहलाते हैं। इस प्रकार भावबंध व द्रव्यबंध दोनों ही पौद्गलिक सिद्ध हो जाते हैं। परन्तु मेरा यह शुद्ध आत्मा तो न भावबंधरूप है और न द्रव्यबंधरूप है। वह दोनोंसे सर्वथा भिन्न है। मेरा आत्मा शुद्धचैतन्यस्वरूप है और बंधतत्त्व पौद्गलिक है। मेरा आत्मा शुद्धज्ञानदर्शनमय है, रत्नत्रयस्वरूप है और सबका ज्ञाता दृष्टा है, परंतु बंधतत्त्व न ज्ञाता-दृष्टा है, न रत्नत्रय स्वरूप है और न दृष्टा है, परंतु बंधतत्त्व न ज्ञाता दृष्टा है, न रत्नत्रय स्वरूप है और न ज्ञानदर्शनमय है। अतएव मेरा और बंधतत्त्वका कभी कोई संबंध नहीं हो सकता इस प्रकारके शुद्ध भाव रखना शुद्धोपयोग कहलाता है। ऐसा शुद्धोपयोग धारण करनेसे कर्मोंके बंधका सर्वथा नाश हो जाता है और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

संवरतत्त्वका निरूपण करते हुए अपने शुद्ध आत्माको उससे सर्वथा भिन्न बतलाते हैं—

मिथ्यात्वभावादिनिरोधतः स्यात्,
सुखप्रदं संवरतत्त्वजन्म।

चिन्मात्रमूर्तिः परमार्थतोऽस्मि,
ततो न मे संवरतत्त्वजन्म ।। १९६ ।।

अर्थ—मिथ्यात्व अविरत आदि भावोंका निरोध करनेसे सुख देनेवाला संवरतत्त्व उत्पन्न होता है परन्तु परमार्थदृष्टिसे देखा जाय तो मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ। इसलिये मेरीआत्मामें संवर तत्त्व कैसे उत्पन्न हो सकता है।

भावार्थ—आस्रवका निरोध करना संवर हैं। वह दो प्रकारका है, एक भावसंवर और दूसरा द्रव्यसंवर। आत्माके जिन परिणामोंसे आस्रव रुकता है व आते हुए कर्म रुकते हैं उन परिणामोंको भावसंवर कहते हैं तथा उस कर्म आस्रवका जो रुक जाना है उसको द्रव्यसंवर कहते हैं। यह दोनों प्रकारका संवर कर्मविशिष्ट अशुद्धआत्माके ही होता है, क्योंकि आस्रवका रुकना ही संवर है तथा कर्मोंका आस्रव किसी न किसी कर्मके उदय होनेपर ही होता है। विना किसी कर्मके उदयके आस्रव कभी नही हो सकता। ऐसे पौद्गलिकरूप आस्रवके रुकनेसे जो संवर होता है उसको भी पौद्गलिक रूप ही मानना पड़ता है। ऐसें संवर तत्त्व शुद्धआत्मामें नहीं हो सकता। क्योंकि शुद्ध आत्मामें रागद्वेषरूप आस्रवको उत्पन्न करनेवाले अशुद्धभाव ही उत्पन्न नहीं हो सकते, फिर भला रुकेगा क्या ? शुद्ध आत्मामें जब अशुद्ध भाव ही नहीं है तब उनका रुकना व रुकजानारूप संवरतत्त्व तो कैसे हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि शुद्ध आत्मामें संवरतत्त्व कभी नहीं हो सकता। यदि परमार्थदृष्टिसे देखा जाय तो मेरा आत्मा भी अत्यंत शुद्ध है, शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, ज्ञानदर्शनमय है, ज्ञाता द्रष्टा है और सिद्धोंके समान है तथा संवरतत्त्व इससे विपरीत है। वह न तो चैतन्यस्वरूप है, न ज्ञाता द्रष्टा है, न ज्ञानदर्शनमय है, न रत्नत्रयस्वरूप है और न शुद्ध आत्मस्वरूप है। इसलिए वह संवरतत्त्व मेरे शुद्ध आत्मासे सर्वथा भिन्न है। इसप्रकारके अपने परिणाम रखना शुद्धोपयोग कहलाता है।

निर्जरातत्त्वका स्वरूप बतलाते हुए उससे अपने शुद्ध आत्माको सर्वथा भिन्न बतलाते हैं—

सद्दृष्टिजीवाच्च कुपुद्गलस्य,
वियोगतो निर्जरतत्त्वजन्म।
चिद्रूपमूर्तिः परमार्थतोऽस्मि,
ततो न मे निर्जरतत्त्वजन्म।। १९७।।

अर्थ—सम्यग्दृष्टिजीवके कर्मरूप पुद्गलवर्गणाओंका नष्ट हो जाना व उस आत्मासे उन कर्मोंका संबंध हट जाना निर्जरातत्त्व कहलाता है। परंतु मेरा शुद्धआत्मा परमार्थदृष्टि से शुद्धचैतन्यस्वरूप है इसलिए मेरे आत्मासे निर्जरातत्त्व कभी उत्पन्न नही हो सकता।

भावार्थ–कर्मोंका एकदेशक्षय होना निर्जरा है। वह दो प्रकारकी है एक भावनिर्जरा और दूसरी द्रव्यनिर्जरा। आत्माके जिन परिणामोंसे निर्जरा होती है उन परिणामोंको भावनिर्जरा कहते हैं तथा जो कर्मोंका क्षय होता है उसको द्रव्यनिर्जरा कहते हैं। अथवा सविपाक अविपाकके भेदसे निर्जराके दो भेद हैं। जो कर्म अपना फल देकर क्षय होते हैं उसको सविपाकनिर्जरा कहते हैं तथा जो कर्म तपश्चरण आदिके निमित्तसे विना फल दिये ही नष्ट होजाते हैं उसको अविपाकनिर्जरा कहते हैं। यह सब निर्जरा पौद्गलिक है। क्योंकि द्रव्यनिर्जरामें तो कर्मोंका ही नाश होता है, तथा कर्मोंके पौद्गलिक होनेसे वह द्रव्यनिर्जरा भी पौद्गलिक ही सिद्ध होती है। भावनिर्जरा भी अशुद्ध जीवके ही होती है। जो जीव कर्मविशिष्ट है उसीके भावनिर्जरा हो सकती है। तथा कर्मविशिष्ट जीवके जो परिणाम होते हैं वे कर्मोंके निमित्तसे ही होते हैं इसलिये वे भी पौद्गलिक ही कहलाते हैं। इसप्रकार सब प्रकारकी निर्जरा पौद्गलिक सिद्ध होती है। मेरा यह आत्मा तो शुद्ध चिदानंदस्वरूप है इसलिये निर्जरा तत्त्वसे सर्वथा भिन्न है। मेरा आत्मा

ज्ञानदर्शनमय है, निर्जरा इससे विपरीत पौद्गलिक व जड़स्वरूप है। यह आत्मा रत्नत्रयस्वरूप है, निर्जरा इससे विपरीत पौद्गलिक व जड़स्वरूप है। मेरा आत्मा-दृष्टा है निर्जरा तत्त्व ज्ञाता-दृष्टासे विपरीत पौद्गलिक है। इस प्रकार चैतन्यस्वरूप मेरे शुद्ध आत्मासे निर्जरातत्त्व सर्वथा भिन्न है। इसप्रकारके परिणाम रखना शुद्धोपयोग कहलाता है।

मोक्षतत्त्वका निरूपण करते हुए उससे अपने शुद्ध आत्माको सर्वथा भिन्न दिखलाते हैं—

निर्ग्रंथसाधोर्भुवि पुद्गलस्य,
मोक्षः किलात्यन्तवियोगतः स्यात्।
चिद्रूपमूर्तेर्न च मे वियोगः,
संयोगवार्ता क्रियते कथं हि ।। १९८ ।।

अर्थ—वीतराग निर्ग्रंथ साधुओंके जो कर्मरूप पुद्गलोंका अत्यंत वियोग हो जाता है उसको मोक्ष कहते हैं, परन्तु मेरा आत्मा शुद्धचैतन्य स्वरूप है। इसलिए उससे किसी भी कर्मके वियोग होनेकी संभावना भी नहीं हो सकती, क्योंकि शुद्धआत्मा में कर्मोंका संयोग है ही नहीं। जहाँपर कर्मोंका संयोग ही नहीं है वहाँपर कर्मोंके संयोगकी बात ही नहीं करनी चाहिए।

भावार्थ—इस आत्मासे समस्तकर्मोंका नाश हो जाना मोक्ष है। वह भी दो प्रकार है—एक भावमोक्ष और दूसरा द्रव्यमोक्ष। आत्माके जिन परिणामोंसे समस्त कर्म नष्ट होते हैं उन परिणामोंको भावमोक्ष कहते हैं तथा उन समस्त कर्मोंका जो नष्ट हो जाना है उनको द्रव्यमोक्ष कहते हैं। यह दोनों प्रकारका मोक्ष कर्मविशिष्ट आत्माके ही होती है। जो आत्मा अत्यंत शुद्ध है कर्मोंसे सर्वथा रहित है उससे किसीका भी वियोग नहीं हो सकता। उसके जब कर्म ही नहीं है तब वियोग व नाश

किसका होगा ? मेरा आत्मा सर्वथा शुद्ध और कर्मोंसे सर्वथा रहित है इसलिए मोक्षतत्त्व भी मुझसे सर्वथा भिन्न है। इसप्रकारके शुद्धपरिणामोंका होना शुद्धोपयोग कहलाता है।

सप्ततत्त्वोंके कथनका उपसंहार करते हैं—

तत्त्वस्वरूपं कथितं मयेति,
त्यागाय हेयस्य चितो ग्रहाय।
समस्ततत्त्वानि विवर्ज्य योगात्,
गृह्णातु योगी च निजात्मतत्त्वम्।। १९९ ।।

अर्थ–इसप्रकार हेय पदार्थोंके त्यागके लिए और शुद्ध-चैतन्यस्वरूप अपनी आत्माको ग्रहण करनेके लिए मैंने यह सातों तत्त्वोंका स्वरूप निरूपण किया है। अतएव योगियोंको अपने मन, वचन, कायसे समस्त तत्त्वोंका त्याग कर केवल अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपको ग्रहण कर लेना चाहिए।

भावार्थ—ऊपर अनुक्रमसे सातों तत्त्वोंका स्वरूप दिखलाया है और उनमें यह भले प्रकार दिया है कि अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्माके सिवाय अन्य समस्त तत्त्व त्याग करने योग्य हैं क्योंकि वे समस्त तत्त्व अपने शुद्ध आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं। अतएव शुद्धोपयोग धारण करनेवाले व अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन होनेवाले मुनिराजोंको मन, वचन, काय तीनों योगोंसे समस्त तत्त्वोंका त्यागकर देना चाहिए और अपने शुद्धस्वरूप आत्माको ग्रहण कर उसीमें सदा लीन रहना चाहिए। आत्माके अनंतसुखका यही एक साधन है। इस प्रकार सातों तत्त्वोंका निरूपण किया।

याचना करनेपर भी धनादिककी प्राप्ति क्यों नहीं होती, यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— कुर्वन्त एवापि धनादियाञ्चां।
कथं धनादिं न च ते लभन्ते।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि ये जीव धनादिककी याचना करते हैं और फिर भी उनको धनादिककी प्राप्ति नहीं होती इसका क्या कारण है?

उत्तर- **ये केपि जीवाश्च यथैव बीजं,**
वपन्ति भूमौ समये हि तेऽपि।
तादृक् फलं निश्चयतो लभन्ते,
न केवलं याचनतः कदापि।। २००।।
ज्ञात्वेति भक्त्या सुकृतिं कुरुष्व,
कौ केवलं याचक एव न स्याः।
ततो भवेदेव तवेष्टसिद्धि-
र्नश्येत्तथाशा सुखशान्तिहर्त्री।। २०१।।

अर्थ—इस संसारमें जो . जीव इस पृथ्वीपर जैसा बीज बोते हैं वैसा ही फल पाते हैं। केवल याचना करनेसे कोई फल नहीं मिलता। यही समझकर इस संसारमें भक्तिपूर्वक पुण्यकर्म करते रहना चाहिए। केवल याचना करनेसे काम नहीं चलता। पुण्यकार्य करनेसे ही आत्माकी इष्टसिद्धि होती है और सुख शांति को नाश करनेवाली आशा नष्ट हो जाती है।

भावार्थ—किसान जैसा बीज बोते हैं वैसा ही फल पाते हैं। माँगनेसे कहीं कुछ नहीं मिलता। इसी प्रकार ये जीव जैसा करते हैं वैसा ही फल पाते हैं। जो प्रतिनित्य देवपूजा पात्रदान आदि पुण्यकार्य करते रहते हैं उनको यथेष्ट धनादिककी प्राप्ति होती रहती है और जो पूर्व जन्ममें पापकर्म करते रहते हैं उनको दरिद्रता, रोग आदिके दुःख भोगने पड़ते हैं। यही समझकर भव्य जीवोंको सदाकाल देवपूजा पात्रदान आदि पुण्यकार्य करते रहना चाहिये जिससे इस लोक संबंधी विभूति भी प्राप्त होती रहे और परलोकमें भी स्वर्गादिकके सुख प्राप्त

होकर मोक्ष प्राप्त होजाय। देवपूजा, पात्रदान आदि पुण्यकार्य करनेसे आत्माका यथार्थ स्वरूप मालूम होजाता है. वीतराग निर्ग्रंथ गुरुकी सेवा करनेसे आत्माका यथार्थ ज्ञान हो जाता है और संसारको बढ़ानेवाली आशा सब नष्ट होजाती है। आशाके नष्ट होनेसे शुभोपयोगकी वृद्धि होती है और अनुक्रमसे शुद्धोपयोगकी प्राप्ति हो जाती है।

शुद्ध चैतन्य स्वरूप सुखके विना समस्त क्रियाऐं निरर्थक हैं ऐसा दिखलाते हैं—

व्रतेन किंवा विनयेन किंवा,
मानेन किंवा मनसापि किंवा।
ध्यानेन किंवा खलु किं च धृत्वा,
तापेन किंवा तपसापि किंवा।। २०२।।
योगेन किंवा स्मरणेन किंवा,
बलेन किंवा बलिनापि किंवा।
यागेन किंवा यजनेन किंवा,
क्रोधेन किंवा कृतिनापि किंवा।। २०३।।
शास्त्रेण किंवा मननेन किंवा,
यन्त्रेण किंवा यतिनापि किंवा।
मन्त्रेण किंवा मुनिनापि किंवा,
कालेन किंवा कलहेन किंवा।। २०४।।
रत्नेन किंवा रजसापि किंवा,
मर्त्येन किंवा मरणेन किंवा।
कायेन किंवा वचनेन किंवा,
ज्ञानेन किंवा नमनेन किंवा।। २०५।।
कीर्त्यापि किंवा कलुषेण किंवा,
दानेन किंवा दययापि किंवा।

धर्मेण किंवा दमिनापि किंवा,
मौनेन क़िंवा शमनेन किंवा ।। २०६ ।।
स्वर्गेण किंवा स्वनितेन किंवा,
नार्यापि किंवा नगरेण किंवा ।
भोगेन किंवा भुजगेन किंवा,
करेण किंवा करणेन किंवा ।। २०७ ।।
हारेण किंवा हरिणापि किंवा,
जाड्येन किंवापि जडेन किंवा ।
रूपेण किंवापि रुजापि किंवा,
दानेन किंवा धनिनापि किंवा ।। २०८ ।।
गंधेन किंवापि घृतेन किंवा,
सारेण किंवा स्नपनेन किंवा ।
त्यागेन किंवा ग्रहणेन किंवा,
हर्षेण किंवा रुदनेन किंवा ।। २०९ ।।
उच्चेन किं नीचजनेन किंवा,
काचेन किंवा कलशेन किंवा ।
खलेन किंवा कपटेन किंवा,
शीतेन किंवापि शठेन किंवा ।। २१० ।।
दुःखेन किं धूर्तशतेन किंवा,
पूज्येन किं पुण्यशतेन किंवा ।
मोहेन किंवा मणिनापि किंवा,
वनेन किंवा व्यसनेन किंवा ।। २११ ।।
वासेन किंवा वसनेन किंवा,
कार्येण किंवा करणेन किंवा ।

राज्ञापि किंवा सुरसेन किंवा,
ह्यलंच किंवा बहुभाषणेन ।। २१२ ।।
स्वशुद्धचिद्रूपपदं न लब्धं,
लब्ध्वापि तस्मिन्न कृता स्थितिश्चेत् ।
पूर्वोक्तकृत्येन निरर्थकेन,
लाभस्तवात्मन्‌ भुवि कोऽपि न स्यात् ।। २१३ ।।
ज्ञात्वेति नित्यं स्वरसं पिबन् हि,
स्वशुद्धचिद्रूपपदे प्रतिष्ठ ।
कस्यापि कार्यस्य यतोवशक्ता,
ह्यनन्तकालेऽपि गते न ते स्यात् ।। २१४ ।।

अर्थ—हे आत्मन्! तुझको जबतक अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमपदकी प्राप्ति नहीं होती अथवा उस पदको प्राप्त करके भी जबतक उस परमपदमें स्थिरता नहीं होती तबतक न तो व्रत करनेसे कोई लाभ है, न अभिमान करनेसे कोई लाभ है, न उत्तम हृदयको धारण करनेसे कोई लाभ है, न ध्यान करनेसे कुछ लाभ है, न धैर्य धारण करनेसे कुछ लाभ है, न संताप करनेसे लाभ है, न तपश्चरण करनेसे कुछ लाभ है, न योग धारण करनेसे कुछ लाभ है, न मनन करनेसे कुछ लाभ है, न बलसे कुछ लाभ है, न बलवान् होनेसे कुछ लाभ है, न यज्ञ व पूजा प्रतिष्ठा करनेसे कुछ लाभ है, न क्रोध करनेसे कुछ लाभ है, न पुण्यवान् होनेसे कुछ लाभ है, न शास्त्रोंके पढ़नेसे कुछ लाभ है, न मनन करनेसे कुछ लाभ है, न किसी यंत्रसे लाभ होता है, न किसी यतिसे लाभ होता है, न किसी मंत्रसे लाभ होता है, न किसी मुनिसे लाभ होता है, न समयसे लाभ होता है, न किसीके साथ कलह करनेसे लाभ होता है, न रत्नोंसे कुछ लाभ होता है, न धूलि मिट्टीसे कुछ लाभ होता है, न मनुष्योंसे कोई लाभ होता है, न मर जानेसे कोई लाभ होता

है, न शरीरसे कुछ लाभ होता है, न वचनसे कुछ लाभ होता है, न ज्ञानसे कुछ लाभ होता है, न नम्रीभूत होनेसे कुछ लाभ होता है, न कीर्तिसे कुछ लाभ होता है, न कलुषतासे कुछ लाभ होता है, न दानसे कुछ लाभ होता है, न दयासे कुछ लाभ होता है, न धर्मसे कुछ लाभ होता है, न इन्द्रियोंको दमन करनेसे कुछ लाभ होता है, न मौन धारण करनेसे कुछ लाभ होता है, न शांत रहनेसे कुछ लाभ है, न स्वर्गकी प्राप्तिसे कुछ लाभ है, न उँचे स्वरसे कुछ करनेसे कोई लाभ है, न स्त्रीके रहनेसे कुछ लाभ है, न नगरमें रहनेसे कुछ लाभ है, न भोगविलास करनेसे कुछ लाभ है, न सर्पादिकके रखनेसे कुछ लाभ है, न हाथ पैरोंसे कुछ लाभ है, न अन्य साधनोंसे कुछ लाभ है; न हार पहननेसे कुछ लाभ है, न इन्द्रादिकको वशमें रखनेसे कुछ लाभ है, न मूर्खोंकी संगतिसे कुछ लाभ है, न मूर्खता करनेसे कुछ लाभ है, न सुंदररूप धारण करनेसे कुछ लाभ है, न किसी रोगके हो जानेसे कुछ लाभ है, न धनसे कुछ लाभ है, न किसी धनीसे लाभ है, न सुगंधियोंसे कुछ लाभ है, न धीरजसे कुछ लाभ है, न किसी सारभूत पदार्थ से लाभ है, न अभिषेक आदिके करनेसे कुछ लाभ है, न त्याग करनेसे कोई लाभ है, न ग्रहण करनेसे कुछ लाभ है, न हर्षित होनेसे कुछ लाभ है, न रोनेसे कुछ लाभ है, न बड़े व ऊँच बननेसे कुछ लाभ है, न नीच बननेसे कुछ लाभ है, न काच रखनेसे कुछ लाभ है, न कलश रखनेसे कुछ लाभ है, न दुष्टोंकी संगतिसे कुछ लाभ है, न कपट करनेसे कुछ लाभ है, न शीतल पदार्थोंसे कुछ लाभ है, न दुर्जनोंसे कुछ लाभ है, न दुःखोंसे कुछ लाभ है, न सैकड़ों धूर्तोंके इकट्ठे करनेसे कुछ लाभ है, न पूज्य परुषोंसे कुछ लाभ है, न सैकड़ों पुण्यकार्य करनेसे कुछ लाभ है, न मोह करनेसे कुछ लाभ है, न मणियोंके रखनेसे कुछ लाभ है, न वनमें रहनेसे कुछ लाभ है, न किसी व्यसनके सेवन करनेसे लाभ है, न किसी स्थानपर निवास करनेसे कुछ

लाभ है, न सुन्दर वस्त्रोंके पहननेसे कुछ लाभ है, न किसी कार्यके करनेसे कुछ लाभ है, न किसी इन्द्रियसे कुछ लाभ है, न किसी राजाको अपने वश कर लेनेसे कुछ लाभ है और न मिष्टरसोंके पान करनेसे कुछ लाभ है। बहुत कहनेसे क्या थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि जब तक शुद्ध चैतन्य स्वरूप अपने आत्माकी प्राप्ति नहीं होती व जब तक उसमें स्थिरता नहीं होती तब तक ऊपर लिखे हुए कृत्योंसे कोई लाभ नहीं होता। तब तक ऊपर लिखे कृत्य सब निरर्थक माने जाते हैं। यही समझकर अपने आत्मजन्य आनंदका पान करते हुए अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मामें लीन हो जाना चाहिये। अन्य सबका त्याग कर देना चाहिये। क्योंकि संसारके किसी भी कार्यमें लीन होनेसे अनंतकाल व्यतीत होनेपर भी शुद्ध आत्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

भावार्थ—आत्माके शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति होना ही शुद्धोपयोग है। तथा यही शुद्धोपयोग मोक्षका कारण है। इस जीवको जब तक यह शुद्धोपयोग प्राप्त नहीं होता तब तक यह आत्मा कल्याणके यथार्थ मार्गपर नहीं लग सकता। यद्यपि व्रत, उपवास, तपश्चरण, ध्यान, समिति, गुप्ति, परीषहसहन, चारित्र आदि व्यवहार साधन सब शुद्धोपयोगके साधन हैं तथापि भव्य जीवोंके ये सब मोक्षके साधन हैं और अभव्यजीवके ये सब मिथ्यारूपसे धारण किये जाते हैं इसलिए वे मिथ्याव्रत, उपवास आदि संसारके ही कारण होते हैं। यही समझकर भव्य जीवोंको सबसे पहले मोहनीयकर्मको नाश कर सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिए। सम्यग्दर्शनके साथ सम्यग्ज्ञान हो ही जाता है। तदनंतर सम्यक्चारित्र धारण कर पापकर्मोंका नाश करते रहना चाहिये और फिर शुद्धोपयोगको धारण कर व अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें स्थिर होकर समस्तकर्मोंका नाश कर डालना चाहिये। समस्त कर्मोंका नाश होना ही मोक्ष है, और इसी मोक्षमें अनंतकाल तक रहनेवाला अनंतसुख प्राप्त

होता है। फिर अनंतानंत कल्पकाल व्यतीत होनेपर भी उसमें कुछ परिवर्तन नहीं होता।

शुद्धोपयोगका विशेष वर्णन करते हैं—

प्रश्न— शुद्धोपयोगस्यारंभः।
कस्मिन् स्थाने च लीनता।।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि शुद्धोपयोगका प्रारम्भ कहाँसे होता है और उसकी स्थिरता व लीनता किस गुणस्थान से होती है?

उत्तर— स्थानाच्चतुर्थात्खलु शांतिरूप-
शुद्धोपयोगस्य शिवप्रदस्य।
प्रारंभ एवात्मरतस्य नृणां,
स्याच्छुद्धचिद्रूपपदेऽनुरागः।। २१५।।
ततः किलोर्ध्वं स्थिरतां स्वधर्मे,
व्रती व्रते स्वात्मरसेऽतिमिष्टे।
प्राप्नोति योग्येव रुचिं विशेषां,
प्रमादनाशाद्धि सुखं स्वभावात्।। २१६।।

अर्थ—यह शुद्धोपयोग अत्यंत शांतिस्वरूप है, मोक्ष देनेवाला है। और अपने आत्माके शुद्धस्वरूपमें ही रहनेवाला है। ऐसे इस शुद्धोपयोगका प्रारंभ स्वात्मानुभूतिकी अपेक्षा चौथे गुण स्थानसे होता है। तथा चौथे ही गुणस्थानसे शुद्ध चिदानंद स्वरूपमें अनुराग उत्पन्न होता है। तदनंतर ऊपरके गुणस्थानोंमें व्रती पुरुषोंमें स्थिरता उत्पन्न हो जाती है तथा उससे भी आगेके गुणस्थानोंमें योगी पुरुषोंको अत्यंत मिष्ट ऐसे अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें विशेष रुचि हो जाती है और फिर प्रमादके नाश होनेपर स्वभावसे ही आत्मसुख प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—इस संसारमें यह प्राणी मोहनीयकर्मके उदयसे अपने

आत्माका स्वरूप भूल जाता है। तथा परपदार्थोंमें मोह उत्पन्न करता हुआ उनसे राग-द्वेष करने लगता है। राग द्वेष करनेसे अशुभोपयोग होता है। परंतु जब वह मोहनीयकर्म उपशमको प्राप्त हो जाता है अथवा उसका क्षय व क्षयोपशम हो जाता है तब उस जीवके एक प्रकारका आत्मजन्य अमूर्त प्रकाश उत्पन्न होता है, जिससे यह आत्मा अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपको पहचानने लगता है। इस प्रकाशको सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेसे यह जीव परपदार्थोंको हेय समझने लगता है और आत्माके यथार्थस्वरूपको उपादेय समझने लगता है। इस प्रकार जब उसके हेयोपदेयबुद्धि उत्पन्न हो जाती है तब अनुक्रमसे उसका राग द्वेष छूट जाता है, तथा रागद्वेषके छूटनेसे अशुभोपयोग छूट जाता है, और शुद्धोपयोगमें प्रवृत्ति होने लगती है। उसी समयमें शुद्धोपयोगमें अनुराग होने लगता है और जितने अंशमें मोहनीयकर्मका नाश होगया है उतने अंशमें आत्माकी शुद्ध अवस्था प्रगट हो जाती है। इसीको उपचारनयसे शुद्धोपयोगका प्रारंभ कहते हैं। तदनंतर जब अप्रत्याख्यानावरणकर्म नष्ट हो जाता तब यह जीव एकदेश व्रत धारण कर लेता है तथा प्रत्याख्यानावरणकर्मके नष्ट होनेपर महाव्रत धारण कर लेता है। उस समय महाव्रत धारण करनेके कारण कर्मोंकी अधिक निर्जरा होती रहती है और वह योगी अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें व शुद्धोपयोगमें विशेष रुचि उत्पन्न करने लगता है। तदनंतर जब प्रमाद नष्ट हो जाता है तब वह आत्मा शुद्धोपयोगके अत्यंत निकट पहुँच जाता है और श्रेणी चढ़नेपर शुद्धोपयोगको प्राप्त हो जाता है। आगे जैसे जैसे ऊपरके गुणस्थानोंमें पहुँचता जाता है वैसे ही आत्माकी शुद्ध अवस्था बढ़ती जाती है और घातिया कर्मोंके नाश होने पर तेरहवें गुणस्थानमें अत्यन्त शुद्धता प्राप्त हो जाती है।वहाँ शुद्धोपयोगकी पूर्णता हो जाती है। उसी समय अनंतज्ञान, अनतदर्शन, अनंतवीर्य और अनंतसुख प्राप्त हो जाता है, और ये चारों ही अनंत चतुष्टय फिर अनंतकाल तक बने रहते हैं। फिर उनमें कोई किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं होता है।

शुद्धोपयोगकी सिद्धिके लिए छहों द्रव्योंका निरूपण करते हैं

त्यजेन्न धर्मो गमनोपकारं,
स्थितौ सहाय्यं न कदाप्यधर्मः ।
नभोऽपि नित्यं ह्यवकाशदानं,
त्यजेन्न कालः परिवर्तनत्वम् ।। २१७ ।।
स्पर्शादिधर्मं न च पुद्गलोऽपि,
संसारिजीवश्च विभावभावम् ।
लब्ध्वोपदेशं सुगुरोर्निजात्म-
सुशुद्धचिद्रूपपदं लभेत ।।२१८।।
पूर्वोक्त षड्द्रव्यचयस्य लक्ष्म,
ज्ञात्वा फलं स्वात्मतरोः सुमिष्टम् ।
स्वात्मात्मना वात्मनि वात्मने वा-
त्मानः किलात्मानमपि प्रयत्नात् ।। २१९ ।।
जानाति यः पश्यति तिष्ठतीति,
शुद्धोपयोगी स मुनिः प्रपूज्यः ।
निजात्मतृप्तेन दिगम्बरेण,
श्रीकुंथुनाम्ना वरसूरिणोक्तम् ।। २२० ।।

अर्थ—धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलोंको गमन करनेमें सहायता देनेरूप अपने कर्मको कभी नहीं छोड़ता। अधर्मद्रव्य उन्हीं जीव पुद्गलोंको ठहरनेमें सहायता देनेरूप अपने धर्मको कभी नहीं छोड़ता। अकाशद्रव्य समस्त पदार्थोंको स्थान देनेरूप अपने धर्मको कभी नहीं छोड़ता। कालद्रव्य समस्त पदार्थोंको परिवर्तन करनेरूप अपने धर्मको नहीं छोड़ता। पुद्गलद्रव्य स्पर्शरसगंधवर्णरूप अपने स्वभावको नहीं छोड़ता और संसारी जीव अपने विभाव परिणामोंको नहीं छोड़ते।

परन्तु वे ही संसारी जीव अपने वीतराग निर्ग्रंथ गुरुका उपदेश सुनकर विभावपरिणामोंका त्याग कर देते हैं और अपने आत्माके चिदानंदस्वरूप अत्यंत शुद्ध स्वभावको प्राप्त कर लेते हैं। इसप्रकार जो जीव छहों द्रव्योंका स्वरूप समझ लेते हैं और फिर अपने ही आत्माके शुद्धस्वरूप वृक्षके मीठे फलोंको जानकर जो चिदानंद स्वरूप शुद्ध आत्मा अपने ही आत्माके द्वारा अपने ही आत्माके लिये अपने ही आत्माको प्रयत्नपूर्वक जानते हैं, प्रयत्नपूर्वक अपने ही आत्माको देखते हैं और अपने ही आत्मामें प्रयत्नपूर्वक स्थिरताके साथ लीन रहते हैं ऐसे शुद्धोपयोगी मुनि सदाकाल पूज्य माने जाते हैं। इस प्रकार यह कथन अपने आत्मामें तृप्त रहनेवाले और दिगम्बर अवस्थाको धारण करनेवाले आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरस्वामीने निरूपण किया है।

भावार्थ—इस संसारमें छह द्रव्य हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमेंसे पुद्गलद्रव्य रूपी है। जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चार गुण हों उसको रूपीद्रव्य कहते हैं ये चारों गुण साथ साथ रहते हैं जहाँ एक रहता है वहाँ सूक्ष्म व स्थूलरीति से चारों ही गुण रहते हैं। जैसे वायुमें केवल स्पर्शगुण जान पड़ता है परंतु उस वायुमें चारों ही गुण रहते हैं। जिस समय साइंसके द्वारा पानीको दो प्रकारकी वायुमें परिणत करते हैं तो वह पानीमें रहनेवाला रूप सूक्ष्मरीतिसे वायुमें परिणत हो जाता है। तदनंतर यदि उन्हीं दोनों प्रकार की वायुको पानीमें परिणत कर लेते हैं तब वही सूक्ष्मरूप स्थूलरूप होकर प्रगट हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वायुमें रूप है। यदि वायुमें रूप नहीं होता तो उससे बने हुए पानीमें कहाँ से आता। परंतु वायुसे बने हुए पानीमें रूप दिखाई पड़ता है इसलिए वायुमें भी रूप अवश्य मानना पड़ता है। तथा जहाँ-जहाँ रूप होता है वहाँ-वहाँ रस और गंध भी अवश्य होते हैं। जैसे आममें रूप है इसलिए उसमें स्पर्श, रस, गंध

भी है। इस प्रकार वायु में चारों गुण अवश्य मानने पड़ते हैं। इसी प्रकार पृथ्वीमें चारों गुण हैं जलमें चारों गुण हैं अग्निमें चारों गुण हैं। क्योंकि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारों ही पौद्गलिक हैं। इसी प्रकार शब्द भी पौद्गलिक है। क्योंकि वह कान से सुनाई पड़ता है। कानसे सुनाई देनेके कारण उसमें स्पर्शगुण मानना ही पड़ता है। इसके सिवाय तोप आदिके शब्दोंसे बड़े-बड़े मकान हिल जाते हैं व गिर जाते हैं, स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते हैं इससे सिद्ध होता है कि शब्दमें स्पर्शगुण अवश्य है। जहाँ स्पर्श रहता है वहाँ रूप भी अवश्य रहता है और रूपके साथ रस, गंध भी अवश्य रहता है इसप्रकार रूप, रस, गंध, गुण सूक्ष्मरीतिसे रहते हैं। इन चारों गुणोंके रहनेसे शब्द पौद्गलिक है यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है। यह पुद्गल अपने इन गुणोंको कभी नहीं छोड़ता है। इसके सिवाय इस पुद्गलद्रव्यमें क्रिया भी होती है अर्थात् पुद्गलमें गमन करनेकी भी शक्ति है। जैसे वायु विना किसीकी सहायतासे चलता है। इस प्रकार अन्य पदार्थ भी हलके होने पर चलने लगते हैं। तथा जीवमें चलनेकी शक्ति है ही। इस प्रकार जीव और पुद्गल दोनोंमें चलनेकी शक्ति रहते हुए भी इनके चलनेमें धर्मद्रव्य सहायक होता है। जैसे मछलीमें चलनेकी शक्ति रहते हुए भी उसके चलनेमें पानी सहायक होता है। यदि पानी न हो तो मछली नहीं चल सकती। इसी प्रकार यदि धर्मद्रव्य न हो तो जीव-पुद्गल भी नहीं चल सकते। जीव-पुद्गलोंके चलनेसे ही धर्मद्रव्यकी सत्ता सिद्ध होती है। इसीप्रकार जीव-पुद्गलोंके ठहरनेमें अधर्मद्रव्य सहायक होता है, जैसे पथिकको ठहरनेमें छाया सहायक हो जाती है। जीव-पुद्गलोंके ठहरनेमें अधर्मद्रव्यकी सत्ता सिद्ध होती है। धर्म-अधर्म दोनों ही द्रव्य व्यापक ही है। और कालद्रव्य द्रव्योंके परिवर्तन होनेमें कारण है। कालके प्रत्येक समयमें प्रत्येक पदार्थका परिवर्तन हुआ करता है। इसप्रकार

परिवर्तन होते-होते कोई भी नवीनपदार्थ कालांतरमें जीर्णरूप हो जाता है। इससे कालकी सत्ता सिद्ध होती है। जीवपदार्थ चैतन्यस्वरूप है यह पहले बता ही चुके हैं। जीवोंमें जो संसारी जीव हैं वे सब राग-द्वेष-रूप विभावपरिणामोंको प्राप्त होते रहते हैं। तथा उन्हीं विभावपरिणामोंके कारण चारों गतियोंमें परिभ्रमण करते रहते हैं। इस-प्रकार जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छह द्रव्य कहलाते हैं। इन छहों द्रव्योंमें से जब यह गुरुके उपदेशको सुनकर अपने विभावपरिणामोंका त्याग कर देता है और अपनी आत्माके शुद्धस्वरूपको जानकर उसीको ग्रहण करने लगता है उससमय यह जीव ऊपर लिखे छहों द्रव्योंको हेय समझकर उन सबका त्याग कर देता है। तथा आत्मकल्याण के लिये अपनी आत्माके शुद्धस्वरूपको प्रगटकर उसी अपने आत्माके शुद्धस्वरूपमें लीन व स्थिर हो जाता है। इसी शुद्ध आत्मामें स्थिर होनेको शुद्धोपयोग कहते हैं। यह शुद्धोपयोग समस्त कर्मोंको नाश करनेवाला है और साक्षात् मोक्षका कारण है। ऐसा आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरस्वामीने निरूपण किया है। इसका स्वरूप समझकर समस्त भव्यजीवोंको अपने कल्याणमार्गमें लग जाना चाहिए। यही उनके निरूपण करनेका अभिप्राय है।

जीवोंका अवगाहन बतलाते हैं—

प्रश्न— जीवानामवगाहश्च कियन्मे साम्प्रतं वद।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि जीवोंका अवगाह कितना है?

उत्तर— अवगाहनेन जीवाः सन्ति देहप्रमाणकाः।
प्रदेशा एकजीवस्य संख्यातीता जगत्समाः।।२२१।।
वीतरागजिनेन्द्रस्यानन्तं ज्ञानं नभःसमम्।
ज्ञानापेक्षया व्याप्ताः सर्वेजीवा नभःसमाः।।२२२।।

यद्येवं प्राणिनां लक्ष्म न स्यात्तर्हि निरञ्जनम् ।
सुखदुःखादिसम्बन्धः सर्वैः सार्द्धं भवेद्ध्रुवम् ।।२२३।।
किन्त्वेवं दृश्यते नातो ग्राह्यः पूर्वविधिर्मुदा ।
भव्या मोहं यतस्त्यक्त्वा लभेरन्मुक्तिकामिनीम् ।।२२४।।

अर्थ—अवगाहनकी अपेक्षा ये समस्त जीव अपने-अपने शरीर के प्रमाण समान हैं तथा प्रदेशोंकी अपेक्षा प्रत्येक जीवके लोकाकाशके प्रदेशोंके समान असंख्यात प्रदेश हैं। भगवान् वीतराग सर्वज्ञदेवका ज्ञान अनंत आकाशके समान व उससे भी अनंत गुणा है। इसलिए ज्ञानकी अपेक्षा समस्त जीव आकाशके समान सर्वत्र व्याप्त हैं।

कदाचित् यहाँ पर कोई प्रश्न करे कि यदि ज्ञानकी अपेक्षा जीवको व्यापक माना जायगा तो फिर जीवका निरंजन चिह्न सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि जीवको व्यापक माननेसे सुख-दुःखका संबंध समस्त जीवोंके साथ हो जायेगा, परन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता। इसलिए ज्ञानकी अपेक्षा भी जीवको व्यापक नहीं मानना चाहिये ? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि पहले कही हुई विधिका ग्रहण करनेसे ऊपर लिखा दोष नहीं आता अर्थात् जब यह जीव अन्य समस्त पदार्थोंका त्यागकर केवल अपने आत्मामें लीन हो जाता है तब उसका संबंध केवल अपने आत्मासे रह जाता है अन्य सबसे संबंध छूट जाता है। तथा यह भव्यजीव मोहका त्यागकर मुक्ति रूपी कन्याको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—जिस प्रकार दर्पणमें समस्त पदार्थोंका प्रतिबिम्ब पड़ता है, सामनेके समस्त पदार्थ उसमें दिखाई पड़ते हैं तथापि वह दर्पण उन पदार्थोंके पास नहीं पहुँचता है और न वे पदार्थ दर्पणके समीप आ जाते हैं किंतु उस दर्पणकी निर्मलताके कारण उसमें समस्त

पदार्थोंका प्रतिबिंब पड़ जाता है। इसी प्रकार आत्माका ज्ञान आत्मामें ही रहता है वह आत्माको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाता, किन्तु उस ज्ञानमें निर्मलता होनेके कारण लोकाकाशके समस्त पदार्थ उसमें प्रतिभासित होते हैं। तथा समस्त अलोकाकाश भी उसमें प्रतिभासित होता है इसीको ज्ञान की व्यापकता कहते हैं। ऐसा माननेसे किसी भी जीवके सुख दुःख किसी भी दूसरे जीवके साथ संबंधित नहीं हो सकते और न जीवका निरंजन लक्षण नष्ट हो सकता है। अतएव यह जीव ज्ञानकी अपेक्षा व्याप्त है, प्रदेशोंकी अपेक्षा व्याप्त नहीं है। प्रदेशोंकी अपेक्षासे यद्यपि उसके असंख्यात प्रदेश हैं और लोकाकाशके प्रदेशोंके समान है तथापि वे शरीरके प्रमाण ही रहते हैं। यह जीव जैसा छोटा व बड़ा शरीर धारण करता है उसीके समान जीवके प्रदेश हो जाते हैं। जीवके प्रदेशोंमें संकोच विस्तार होनेकी शक्ति है। जिस प्रकार किसी दीपकको यदि घड़ेके भीतर रख दें तो उसका प्रकाश घड़ेके ही समान होता है और उसी दीपकको उस घड़े से निकालकर यदि किसी बड़े कमरेमें रख दें तो उसका प्रकाश फैलकर समस्त कमरे में फैल जाता है। जैसे इस दीपकमें संकोच-विस्तार होनेकी शक्ति है उसी प्रकार जीवके प्रदेशोंमें संकोच-विस्तार होनेकी शक्ति है। इसलिये यह जीव जब छोटा शरीर धारण करता है तब उसके प्रदेश संकुचित होकर उसी शरीरके समान हो जाते हैं, जब यह जीव बड़ा शरीर धारण करता है तब उसके प्रदेश विस्तृत होकर उस बड़े शरीरके समान हो जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक जीवके प्रदेश असंख्यात हैं और अवगाहनकी अपेक्षा समस्त जीव अपने-अपने शरीरके प्रमाणके समान है। युक्त जीव सब अपने-अपने अंतिम शरीरके समान अवगाहना धारण करते हैं। जिस शरीरसे वे मुक्त होते हैं। व कर्मोंको नाश करते हैं उसी शरीरके समान उन मुक्त जीवोंकी अवगाह रहती है। पहले शरीरकी अवगाहना कर्मोंके उदयसे बदलती थी तथा उन्हीं कर्मोंके

उदयसे जीवकी अवगाहना भी बदल जाती थी परंतु मुक्त होनेपर समस्त कर्म नष्ट हो ही जाते हैं। क्योंकि समस्त कर्मोंका नाश होना ही मोक्ष है। इसलिए मुक्त होनेके समयमें जो शरीर और जीवकी अवगाहना थी फिर उस जीवकी वही अवगाहना ज्योंकी त्यों बनी रहती है। कर्मोंके नष्ट होनेसे फिर वह बदल नहीं सकती। क्योंकि फिर उसके बदलनेका कोई भी कारण नहीं रहता है। इसलिए मुक्त जीवोंकी अवगाहना अंतिम शरीरके समान ही होती है।

शुद्धोपयोग प्राप्त करनेके लिए कौनसा धर्म स्वीकार करना चाहिए यह बतलाते हैं—

प्रश्न— शुद्धोपयोगसिद्ध्यर्थं कीदृग्धर्मो वरो वद।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि शुद्धोपयोग प्राप्त करनेके लिये कौनसा धर्म स्वीकार करना चाहिये?

उत्तर— शुद्धोपयोगी सुगुरुर्ब्रवीति,
ह्येकोऽस्ति धर्मो वरवीतरागः।
त्राता स लोकेऽखिलप्राणिनां वै,
सम्पद्विधायीति विपद्विनाशी।। २२५।।

पूर्वोक्तरीतेः खलु यो विरुद्धः,
स एव निन्द्योऽस्ति सरागधर्मः।
तथापि धर्मोऽस्त्यशुभोपयोगी,
ह्याश्चर्यमेवं कुगुरुर्ब्रवीति।। २२६।।

ज्ञात्वेति निन्द्यं च सरागधर्मं,
त्यक्त्वैव गृह्णातु विरागधर्मम्।
यतस्त्रिलोके स्वरसस्य पानं,
स्याच्छुद्धचिद्रूपसुखस्य चर्या।। २२७।।

अर्थ—शुद्धोपयोगको धारण करनेवाले गुरु यही उपदेश देते हैं कि इस संसारमें एक वीतराग धर्महीं सबसे उत्तम धर्म है। यही वीतरागधर्म इस संसारमें समस्त जीवोंकी रक्षा करनेवाला है, आत्माको अनंतचतुष्टय आदि समस्त विभूतियोंको देनेवाला है और संसारकी समस्त विपत्तियोंको नाश करनेवाला है। इस वीतरागधर्मसे जो विरुद्ध है वह निंदनीय सरागधर्म कहलाता है। यद्यपि यह सरागधर्म निंदनीय और त्याग करने योग्य है तथापि अशुभोपयोगको धारण करनेवाले कुगुरु इस सरागधर्मको ही धर्म कहते हैं। यह भी एक आश्चर्यकी ही बात है। यही समझकर भव्यजीवोंको इस निंदनीय सरागधर्मका त्याग कर देना चाहिए और परमपूज्य वीतरागधर्मको ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि वीतरागधर्मको धारण कर लेनेसे यह जीव तीनों लोकोंमें अपने शुद्धात्मजन्य परमरसका पान करने लगता है और चिदानंदमय शुद्ध आत्माके परम सुखको प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—धर्मके दो भेद हैं एक सरागधर्म और दूसरा वीतराग धर्म। सरागधर्मको धारण करनेवाले गृहस्थ और मुनि दोनों ही होते हैं। और वीतराग धर्मको धारण करने वाले केवल उत्तम मुनि ही होते हैं। जो आत्मा समस्त मोहका त्याग कर केवल अपने शुद्ध आत्मामें लीन हो जाता है उसके वीतराग धर्म होता है। यही वीतराग धर्म साक्षात् मोक्षका कारण है। इस संसारमें होनेवाले चारों गतियोंके दुःखोंसे बचानेवाला है, और अनंतचतुष्टय आदि आत्माकी समस्त विभूतियोंको देनेवाला है।

सरागधर्मके दो भेद हैं एक एकदेश धर्म और दूसरा पूर्ण धर्म। गृहस्थ व श्रावक लोग एकदेशधर्मको धारण करते हैं और मुनि लोग पूर्णधर्मको धारण करते हैं। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंका पालन करना और अंतमें समाधि मरण धारण करना गृहस्थोंका धर्म है। पंचमहाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समिति यह

तेरह प्रकारका चारित्र पूर्णसराम धर्म है अथवा जब तक इस जीवके राग अवस्था रहती है तब तक उस जीवके सरागधर्म रहता है और रागद्वेषके छूट जाने पर वीतराग धर्म उत्पन्न होता है। यह सरागधर्म परंपरासे मोक्षका कारण है और वीतराग धर्म साक्षात् मोक्षका कारण है। इस सरागधर्म और वीतरागधर्मसे जो सर्वथा विरुद्ध है, उसको मिथ्याधर्म कहते हैं। यह मिथ्याधर्म तीव्र रागद्वेष रूप है इसलिए संसारका कारण है। यह मिथ्याधर्म अशुभोपयोगको धारण करनेवाले जीवोंके ही होता है और अशुभोपयोगको धारण करनेवाले कुगुरु ही इस मिथ्याधर्मका उपदेश देते हैं। यही समझकर भव्यजीवोंको इस मिथ्याधर्मका त्याग कर देना चाहिए और सरागधर्मको धारण कर लेना चाहिए। तदनंतर धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा रागद्वेषको सर्वथा नष्ट करते रहना चाहिए। रागद्वेषका अभाव होते हुए सरागधर्म भी छूटता जाता है तब यह जीव परमोत्तम और अत्यंत शुद्ध ऐसे वीतरागधर्मको प्राप्त कर लेता है। आत्माके कल्याण करनेका यही सबसे उत्तम मार्ग है।

शुद्धोपयोगके लिए विचार करते हैं—

प्रश्न— शुद्धोपयोगसिद्ध्यर्थं विचारः क्रियते पुनः ।।

अर्थ—अब आगे शुद्धोपयोगकी प्राप्तिके लिए कुछ थोड़ासा विचार करते हैं।

उत्तर— द्रव्यादिकर्मणः स्वात्मरागादिभावकर्मणः ।
देहादिकर्मणोऽत्यन्तभिन्नश्चिद्रूपनायकः ।।२२८।।
शुद्धोपयोगिनः साधोः स्वभावादिति निश्चयः ।
चित्ते मे जायते चैवमागमो महिमा ह्यहो ।।२२९।।

अर्थ — शुद्ध चिदानंदस्वरूप यह मेरा आत्मा ज्ञानावरण आदि आठों द्रव्यकर्मोंसे, रागद्वेष आदि भावकर्मोंसे

और शरीर आदि नोकर्मोंसे सर्वथा भिन्न हैं, जो मुनि शुद्धोपयोगको धारण करते हैं उनको स्वभावसे ही यह निश्चय हो जाता है। इसलिये मेरे हृदयमें इस चिदानंद स्वरूप शुद्ध आत्माकी महिमा अगाध सिद्ध हो जाती है।

भावार्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय ये आठों कर्म तथा इन आठों कर्मोंके एकसौ अड़तालीस भेद सब द्रव्यकर्म कहलाते हैं। आत्माके जिन परिणामोंसे ये द्रव्यकर्म आते हैं ऐसे राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि सब भावकर्म कहलाते हैं। तथा जिन पुद्गल वर्गणाओंसे औदारिक वैक्रियक, आहारक ये तीनों शरीर बनते हैं और छहों पर्याप्तियाँ बनती हैं उन पुद्गल वर्गणाओंको नोकर्म कहते हैं। इस प्रकार कर्मोंके द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म ये तीन भेद होते हैं। ये तीनों ही प्रकारके कर्म अशुद्ध जीवके ही होते हैं। मेरा आत्मा शुद्ध है, इसलिये वह द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म तीनोंसे रहित है, परंतु ऐसा निश्चय शुद्धोपयोग धारण करनेवाले उत्तम मुनियोंको ही होता है। इसीलिये वे मुनि ही इसका निश्चय कर सकते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो शुद्ध आत्माकी महिमा अगाध है, कोई भी पुरुष इसका पार नहीं पा सकता अतएव भव्यजीवोंको अपना आत्मा सर्वथा शुद्ध बना लेना चाहिये, जिससे कि समस्त कर्म नष्ट होकर शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाये।

बाह्य पदार्थोंके त्याग करनेसे कुछ लाभ होता है या नहीं यही बतलाते हैं—

प्रश्न— स्याद्बाह्यवस्तुनस्त्यागात्कोऽपि लाभो न मे वद।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि बाह्य पदार्थोंके त्याग करनेसे कुछ लाभ होता है या नहीं।

उत्तर– बाह्यादिवस्तुलाभेन कोऽपि लाभो भवेन्न हि ।
न तदलाभतो हानिर्मानापमानतस्तथा ।।२३०।।
एवं स्यान्निश्चयो यस्य स स्यात्स्वर्मोक्षदायकः ।
सोपि शुद्धोपयोगीति ज्ञेयः सिद्धौ प्रमाणतः ।।२३१।।

अर्थ—बाह्य पदार्थोंके लाभ होनेसे मेरे आत्माका कोई लाभ नहीं होता तथा बाह्य पदार्थोंकी प्राप्ति न होनेसे मेरी कोई हानि नहीं होती। इसी प्रकार मेरा मान होनेसे मेरा कुछ लाभ नहीं होता और मेरा अपमान होनेसे मेरे आत्माकी कुछ हानि नहीं होती। यह निश्चय करनेवाला महात्मा स्वर्ग-मोक्षको प्राप्त होता है और स्वर्गमोक्षको देनेवाला होता है। तथा उसीको शुद्धोपयोगको धारण करनेवाला कहते हैं और वही जीव सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होता है। ऐसा प्रमाणसे सिद्ध होता है।

भावार्थ—धन, संपत्ति, कुटुंब, राज्य आदि संसारके समस्त सामग्री बाह्यपदार्थ कहलाते हैं, यहाँतक कि शरीर भी बाह्यपदार्थ है, और रागद्वेषादिक भाव भी आत्माके शुद्ध स्वभावसे भिन्न बाह्यपदार्थ हैं। इन पदार्थोंके मिल जानेसे आत्माका कोई लाभ नहीं होता तथा न मिलनेसे आत्माकी कोई हानि नहीं होती। यदि वास्तवमें देखा जाय तो इन बाह्यपदार्थोंके मिल जानेसे आत्माके शुद्धस्वरूपकी हानि हो रही है। इन बाह्यपदार्थोंका मोह ही इस आत्माको शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति नहीं होने देता। परंतु जब यह आत्माका यथार्थ स्वरूप समझ लेता है और इन पदार्थोंको अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपसे सर्वथा भिन्न समझ लेता है तब वह इन पदार्थोंका मोह छोड़ देता है, तब इन पदार्थोंका आत्मासे किसी प्रकारका संबंध नहीं रहता। ऐसा होनेपर इन पदार्थोंके मिलने व न मिलनेसे आत्माको कोई हानि लाभ नहीं होता। इसीप्रकार मान व अपमान होनेसे भी शुद्ध आत्माको कोई हानि लाभ नहीं होता। इसप्रकार बाह्य समस्त पदार्थोंसे आत्माकी

सर्वथा भिन्न अवस्था प्राप्त हो जाती है उसीको शुद्धोपयोग कहते हैं। ऐसा शुद्धोपयोग ही मोक्ष प्राप्त करानेवाला है और मोक्षका साक्षात् कारण है। यही समझकर भव्यजीवोंको सबसे पहले मोह त्यागकर देना चाहिये। मोहका त्याग कर देनेसे बाह्य पदार्थोंका संबंध छूट जाता है और शुद्ध अवस्था प्राप्त होकर शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।

ध्याता ध्यान और ध्येयमें भेद अभेद दोनों दिखलाते हैं—

प्रश्न– ध्यातृध्यानसुध्येयेषु भेदोऽस्ति वा न मे वद।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि ध्याता ध्यान और ध्येयमें कुछ भेद है व नहीं?

उत्तर– ध्यानं ध्याता च ध्येयोपि भिन्नोस्ति व्यवहारतः।
ध्याता ध्यानं स्वय स्वात्मा ज्ञेयो ध्येयोपि निश्चयात्।।२३२।।

अर्थ—यदि व्यवहारदृष्टिसे देखा जाय तो ध्याता ध्यान और ध्येय तीनों ही भिन्न-भिन्न हैं। और यदि निश्चयनयसे देखा जाय तो मेरा यह शुद्ध आत्मा स्वयं ध्याता है स्वयं ध्यान रूप है और स्वयं ही ध्येय है।

भावार्थ—ध्यान करनेवालेको ध्याता कहते हैं, जिस पदार्थका ध्यान किया जाता है उसको ध्येय कहते हैं और जो ध्यान व चिंतवन किया जाता है उसको ध्यान कहते हैं। जैसे कोई जीव भगवान जिनेन्द्रदेवका ध्यान करता है उस समय वह ध्यान करनेवाला भव्यजीव ध्याता है, भगवान् जिनेन्द्रदेव ध्येय है और वह जो अपने मनसे चिंतवनरूप क्रिया करता है उसको ध्यान कहते हैं। इसप्रकार व्यवहारदृष्टिसे देखा जाय तो ध्याता ध्येय और ध्यान तीनों ही भिन्न-भिन्न हैं। परंतु जहाँपर अपना यह शुद्ध आत्मा अपने शुद्ध आत्माके ही द्वारा अपने ही शुद्ध आत्माका ध्यान करता है वहाँपर ध्याता ध्यान और ध्येय तीनों ही एक शुद्ध आत्मस्वरूप होते हैं। इसलिये तीनों ही

अभिन्न सिद्ध होते हैं। क्योंकि जो ध्यान करनेवाला शुद्ध आत्मा है वह उसी अपने शुद्ध आत्माका ध्यान करता है और उसी अपने शुद्ध आत्माके द्वारा उसमें लीन होता है इसलिये शुद्ध निश्चयनयसे तीनों ही एक हैं। जो शुद्ध आत्मा ध्याता है, वही ध्येय है और वही ध्यान है। निश्चयनयसे ध्याता ध्येय और ध्यानमें कोई भेद नहीं है।

ध्याता, ध्यान और ध्येयका स्वरूप व चिन्ह बतलाते हैं—

प्रश्न— **ध्यातुर्ध्यानस्य ध्येयस्य किं चिह्नं मे गुरो! वद।**

अर्थ—हे गुरो! अब कृपाकर बतलाइये कि ध्याता ध्यान और ध्येयका चिह्न व इनका स्वरूप क्या है?

उत्तर— **यो ध्यायति शुद्धात्मा, ध्याता स्वात्मैव स्वात्मनि।**
शुद्धात्मानं स्वकीयं च तद्ध्येयं ध्यायतीति वा।।२३३।।
ध्यानं स एव शुद्धात्मा, यतस्तेनैव चिन्त्यते।
प्रोक्तं च स्वात्मतुष्टेन, कुंथुसागरसूरिणा।।२३४।।

अर्थ—जो अपना ही शुद्ध आत्मा अपने ही आत्मामें ध्यान करता है वह ध्यान करनेवाला शुद्धात्मा ध्याता कहलाता है। तथा वह शुद्धात्मा अपने ही शुद्धात्मा का चिंतवन करता है इसलिए उसका वही शुद्धात्मा ध्येय कहलाता है और वह शुद्धात्मा अपने उसी शुद्धात्माके द्वारा चिंतवन करता है इसलिए उसका वही शुद्धात्मा ध्यान कहलाता है। इस प्रकार अपने आत्मामें संतुष्ट रहनेवाले आचार्य श्री कुंथुसागरने निरूपण किया है।

भावार्थ—ध्यान करनेवाले को ध्याता कहते हैं, जिसका ध्यान किया है उसको ध्येय कहते हैं और ध्यान करने व चिंतवन करनेको ध्यान कहते हैं। यहाँपर अपना शुद्ध आत्मा ही ध्यान करनेवाला है। अपने ही शुद्धात्मा का ध्यान किया जाता है और उसी शुद्ध आत्मामें लीन होकर उसका ध्यान किया जाता है। इसलिये वही अपना

शुद्धात्मा ध्याता है। वही अपना शुद्धात्मा ध्येय है और वही शुद्धात्मा ध्यान है। उस ध्यानमें किसी प्रकारका संकल्प विकल्प नहीं है। वह शुद्धात्मा में लीन होकर निश्चल अवस्थाको धारण कर लेता है। इसलिये उसमें ध्यान, ध्येय व ध्याताका कोई विकल्प नहीं होता है। इसीलिये वह ध्यान, ध्येय, ध्याता तीनों ही अपने शुद्धात्मा स्वरूप ही होते हैं और इसीलिये वे तीनों एक ही शुद्धात्मा स्वरूप कहे जाते हैं।

शुद्धोपयोगकी सिद्धिके लिये कैसी भावना रखनी चाहिये यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— भावना कीदृशी कार्या शुद्धोपयोगसिद्धये।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये शुद्धोपयोग प्राप्त करनेके लिये कैसी भावना रखनी चाहिये?

उत्तर— नित्ये निजानन्दपदे निषद्या,
शुद्धेऽस्ति चर्यापि निजप्रदेशे।
चिद्रूपशय्याशयनं सदा मे,
शुद्धोपयोगीति स यस्य भावः ।। २३५ ।।

अर्थ—जो योगी सदाकाल रहनेवाले अपने चिदानंद स्वरूप शुद्धात्मामें ही अपनी निषद्या व बैठक समझता है, जो अपने आत्माके ही शुद्ध प्रदेशोंमें चर्या गमनागमन समझता है और अपने ही शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्माको शय्यारूप समझकर उसीपर शयन करता रहता है इस प्रकार जो सदाकाल अपनी भावनाएँ रखता है उसको शुद्धोपयोगको धारण करनेवाला समझना चाहिये।

भावार्थ—जब यह शुद्ध आत्मा अपने ही स्वरूपमें लीन हो जाता है, यहाँतक कि ध्याता ध्यान और ध्येय तकका विकल्प छोड़ देता है उस समय वह आत्मा अपने ही शुद्ध आत्मामें स्थिरताके साथ लीन हो जाता है। उस समयमें वह शुद्धात्मा अपने ही उस शुद्धात्मामें

चर्या करनेवाला, बैठनेवाला, व सोनेवाला समझा जाता है। यद्यपि वहाँपर शय्या निषद्या कुछ है नहीं केवल शुद्ध आत्मामें व अपने ही शुद्ध स्वरूपमें लीन है तथापि वह शुद्धात्मा अपने शुद्ध आत्माको सब प्रकारसे सुख देनेवाला समझता है। उसीको सुख देनेवाली शय्या समझता है उसीको सुखसे बैठने योग्य आसन समझता है और उसीको विहार करने योग्य स्थान समझता है। इस प्रकार जो अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें सर्वथा लीन रहनेकी भावना रखता है उसीको शुद्धोपयोगी समझना चाहिए।

शुद्धोपयोगको धारण करनेवाला जीव कुछ वचन भी कहता है या नहीं यही दिखलाते हैं—

प्रश्न— कच्चिच्छुद्धोपयोगीह ब्रवीति वा न मे वद।

अर्थ—अब कृपाकर यह बतलाइये कि शुद्धोपयोगको धारण करनेवाला जीव कभी कुछ वचन कहता है या नहीं।

उत्तर— प्रायश्चिदानन्दमयी विरागी,
शुद्धोपयोगी भवतीति मौनी।
शुद्धात्मशान्त्यै यदि चेद् ब्रवीति,
हितं मितं शांतिकरं प्रियं वा।। २३६ ।।
दृग्बोधचारित्रमयो ममात्मा,
साध्यः प्रसिद्धो व्यवहारतोऽस्ति।
चिद्रूपमूर्तिः परमार्थतो वा,
ह्याद्यन्तमध्यादिविवर्जितोऽस्ति।। २३७ ।।

अर्थ—शुद्धोपयोगको धारण करनेवाले और परम वीतराग अवस्थाको धारण करनेवाले चिदानन्दस्वरूप शुद्ध आत्माएँ प्रायः मौन धारण करते हैं। यदि वे अपने शुद्ध आत्मामें परमशांति स्थापन करनेके लिये कभी कुछ वचन कहते हैं तो हितरूप परिमित अत्यंत

प्रिय और परम शांति उत्पन्न करनेवाले वचन कहते है, मेरा यह आत्मा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमय है, व्यवहारसे सिद्ध करने योग्य है, संसारमें प्रसिद्ध है, परमार्थदृष्टिसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप है और आदि-मध्य-अंत तीनोंसे रहित है। इसप्रकार अपने शुद्ध आत्माके स्वरूप का निरूपण करते हैं।

भावार्थ—जब यह शुद्ध आत्मा अपने शुद्धस्वरूपमें लीन रहता है तब उसके शुद्धोपयोग होता है। उस समय वह कुछ भी क्रिया नहीं करता। न शरीरसे कुछ क्रिया करता है, न मनसे कुछ चिंतवन करता है और न वचनसे कुछ कहता है। उस समय वह सर्वथा मौन धारण करता है, परंतु ध्यानके अनंतर यदि वह किसी भव्यजीवसे कुछ कहता है तो सब जीवोंके हित करने वाले वचन कहता है, जितने वचनोंकी आवश्यकता होती है उतने ही वचन कहता है अधिक वचन नहीं कहता। तथा सबको प्रिय लगनेवाले वचन कहता है अप्रिय कटुक व निंदनीय वचन कभी नहीं कहता। इसके सिवाय समस्त जीवोंमें शांति उत्पन्न करनेवाले वचन कहता है क्षोभ उत्पन्न करने वाले व कषाय उत्पन्न करने वाले वचन कभी नहीं कहता। अथवा जब कभी उपदेश देनेका काम पड़ता है तो उनका यही उपदेश होता है कि यह मेरा आत्मा अत्यंत शुद्ध है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप है, शुद्ध चैतन्यस्वरूप है और आदि-मध्य-अंत तीनोंसे रहित है। यद्यपि परमार्थदृष्टिसे आत्माका यही स्वरूप है तथापि संसारी जीवोंको अपनी आत्मा को व्यवहारचारित्र धारणकर शुद्ध कर लेना चाहिये। इसीलिए इसको व्यवहारसे सिद्ध करने योग्य बतलाया है। उन परम योगियोंका उपदेश इसी प्रकारका होता है।

यथार्थ विजयीका स्वरूप कहते हैं—

प्रश्न— सत्यार्थविजयी कः स्यात् वद मे सांप्रतं प्रभो !

अर्थ—हे भगवन् ! अब कृपाकर यह बतलाइये कि इस संसारमें कौनसा विद्वान् मनुष्य यथार्थ विजयी कहलाता है।

उत्तर– व्याघ्रस्य सिंहस्य वशं विधाता,
शत्रोर्विजेताक्षसुखादिभोक्ता ।
गजाश्वजन्तोर्मणिरत्नपृथ्व्याः,
परीक्षकः शोधक एव सुज्ञः ।। २३८ ।।
दृष्टा अनेके भुवि किंतु नैव,
कर्मारिजेतात्मसुखस्य भोक्ता ।
शुद्धात्मरूपस्य परीक्षकश्च,
शुद्धोपयोगी विरलः कृतार्थी ।। २३९ ।।

अर्थ—इस संसारमें सिंह व्याघ्र आदि हिंसक पशुओंको वश करनेवाले बहुत हैं, अपने प्रबल शत्रुओंको जीतनेवाले भी बहुत हैं, उत्तमसे उत्तम इंद्रियोंके सुखोंको भोगनेवाले भी बहुत हैं हाथी घोड़े आदि पशुओंकी परीक्षा करनेवाले व मणिरत्न पृथ्वी आदिका संशोधन करनेवाले विद्वान-पुरुष इस संसारमें अनेक हैं, परन्तु कर्मोंके जीतनेवाले, आत्मसुखका उपभोग करनेवाले, अपने शुद्ध स्वरूपकी परीक्षा करनेवाले, कृतकृत्य और शुद्धोपयोगको धारण करनेवाले जीव बहुत ही थोड़े हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि ऐसे जीव हैं ही नहीं।

भावार्थ—जो जीव अपने शत्रुओंको जीत लेते हैं उनको विजयी कहते हैं। जो कोई अपने आत्मा व शरीरको दुःख देता है उसको शत्रु कहते हैं। जैसे कोई मनुष्य किसीका धन लूटता है व उसके किसी कुटुंबीको मार देता है तो वह उसका शत्रु कहलाता है। वास्तवमें देखा जाय तो वह जीव उसका शत्रु नहीं है किंतु इस संसारमें जितना सुख दुःख होता है वह सब अपने-अपने कर्मके उदयके निमित्त से होता है। यदि अशुभ कर्मका उदय न हो तो कोई किसीका धन नहीं

ले सकता। अथवा कोई किसीको नहीं मार सकता। अपने अशुभ कर्मके उदय होनेपर ही कोई भी मनुष्य व पशु पक्षी अपनेको व कुटुंबीको मार सकता है। हां! उसमें कोई न कोई निमित्त कारण अवश्य मिल जाता है और वह कर्म का उदय ही उस निमित्तको मिला लेता है। इससे सिद्ध होता है कि मारनेवाला तो निमित्तमात्र है। वास्तवमें मारनेवाला तो अपना कर्मरूप शत्रु है। इसीलिए जो पुरुष अपने उस प्रबल कर्मरूपी शुत्रको जीत लेते हैं वे ही यथार्थ विजयी कहलाते हैं। जिस प्रकार शत्रुको जीतनेवाला अनेक प्रकारकी सुख सामग्री प्राप्त कर सुखका अनुभव किया करता है उसी प्रकार कर्मरूपी शत्रुओंको जीतनेवाला पुरुष भी अनंतचतुष्टयरूपी महाविभूतिको प्राप्त कर आत्मजन्य अनुपम अनंत सुखका अनुभव किया करता है और शुद्धोपयोगको धारण करनेवाला वह कृतकृत्य कहलाता है। परंतु इस प्रकार कर्मरूप यथार्थ शत्रुओंको विजय करनेवाले इस संसारमें मिलते नहीं हैं। यदि मिलते हैं तो बहुत ही विरले व बहुत ही थोड़े मिलते हैं। यही समझकर भव्यजीवों को यथार्थ शत्रुओंका स्वरूप समझकर उन्हीं कर्मरूप शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। उसमें भी सबसे पहले मोहनीयकर्मको नाशकर शुद्धोपयोगको धारण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जिससे कि शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाये।

आत्माका आधाराधेयभाव बतलाते हैं—

प्रश्न— आधारः कश्च लोकेऽस्मिन् स्वात्मनो मे गुरो वद।

अर्थ—हे भगवन्! अब कृपाकर यह बतलाइये कि इस संसारमें इस मेरे आत्माका आधार क्या है?

उत्तर— **अनादिकर्मसम्बन्धादाधारः स्वात्मनो वपुः,**
अथवा पृथिवी ज्ञेया, क्वचिद्बन्धुजनादिकः ॥२४०॥
याथात्म्यात्स्वात्मनः, स्वात्माधारो ज्ञेयो निरञ्जनः।
आधेयोपि स एव स्याद् योगी जानाति शुद्धधीः ॥२४१॥

अर्थ—इस संसारी जीवके साथ अनादिकालसे कर्मोंका संबंध लगा हुआ है। उस कर्मोंके संबंधसे देखा जाय तो इस अपने संसारी आत्माका आधार यह शरीर है। अथवा उस शरीर विशिष्ट आत्माका आधार पृथ्वी है तथा उस शरीरविशिष्ट आत्माके पालन-पोषणकी दृष्टिसे देखा जाय तो कहीं-कहींपर भाई बंधु भी इस जीवके आधार बन जाते हैं, परंतु यदि यथार्थदृष्टिसे देखा जाय तो कर्मबंधनसे रहित यह अपना शुद्ध आत्मा ही [illegible] अपने शुद्ध आत्माका आधार है। तथा यही अपना शुद्ध आत्मा आधेय है। इस आधाराधेय-भावको शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले योगी ही जानते हैं।

भावार्थ—वास्तवमें देखा जाय तो यह आत्मा कर्मोंसे सर्वथा रहित शुद्ध है परंतु अनादिकालसे ही कर्मोंके बंधनमें बँधा हुआ है। तथा कर्मोंके बंधनमें बँध जानेके कारण ही वह अनेक प्रकारके शरीरको धारण करता रहता है, और उस शरीरके प्रमाण[illegible] ही रहता है। इसलिए यदि इस दृष्टिसे देखते हैं तो इस आत्माका आधार शरीर है, क्योंकि इस शरीरमें ही आत्मा रहता है। परंतु वह शरीर मूर्त होनेसे निराधार रह नहीं सकता, इसलिए वह आत्मविशिष्ट शरीर इस पृथ्वीपर ही रहता है अथवा लोकाकाशके किसी भी स्थान में रहता है। इसलिए इस जीवका आधार इस पृथ्वीको मानना पड़ता है अथवा इस लोकाकाशको मानना पड़ता है। इसके सिवाय इस पृथ्वीको आधार मानते हुए भी बालक अवस्थामें अथवा किसी रोगकी अवस्था में व अन्य किसी निरुपाय अवस्था में व पालन पोषणकी दृष्टिसे भाई-बंधुओंको व माता-पिताओंको भी आधार मानना पड़ता है। ये सब आधार कर्म और शरीरसहित जीवके हैं. परंतु वास्तवमें देखा जाय तो शरीर और कर्म दोनोंही पौद्गलिक और जड़ स्वरूप हैं तथा यह आत्मा ज्ञान दर्शन स्वरूप चैतन्यमय है। कर्म मूर्त हैं, आत्मा अमूर्त है। इसलिए यह आत्मा शरीर व कर्मोंसे सर्वथा भिन्न है ऐसा यह अमूर्त

आत्मा अपने ही प्रदेशोंमें व अपने ही स्वरूपमें रहता है इसलिए इस अपने शुद्धस्वरूप आत्माका आधार यही अपना शुद्ध आत्मा रहता है इसलिए यही अपना शुद्ध आत्मा आधेय है। इस शुद्ध आत्माके आधाराधेय भावको केवल शुद्धउपयोगको धारण करनेवाले योगी पुरुष ही जानते हैं, उससे रहित संसारी जीवन नहीं जानते। संसारी जीव तो व्यवहार दृष्टिमें लगे रहते हैं, इसलिए वे तो पृथ्वी आदि आधारको ही जानते हैं। शुद्ध आत्माके आधाराधेयको शुद्ध आत्माको धारण करनेवाले योगी ही जानते हैं।

विश्व धर्मका निरूपण करते हैं–

शुद्धोपयोगसिद्ध्यर्थं विश्वधर्मो विवेच्यते ।

अर्थ—शुद्धोपयोगकी सिद्धि के लिए गुरु स्वयं विश्वधर्मका निरूपण करते हैं।

उत्तर– **धनस्य बुद्धेः समयस्य शक्तेः,**
नियोजनं प्राणिहिते सदैव ।
स्याद्विश्वधर्मः सुखदोऽसुशान्त्यै,
ज्ञात्वेति पूर्वोक्तविधिर्विधेयः ।। २४२ ।।
यतस्त्रिलोके स्वरसस्य पानं,
स्याच्छुद्धचिद्रूपसुखस्य चर्चा ।
आचन्द्रतारार्कमितीह कीर्ति–
गृहे गृहे मंगलगीतवाद्यम् ।। २४३ ।।

अर्थ—भव्यजीवोंको सदाकाल समस्त प्राणियोंके हितके लिए ही अपने धनका, अपनी बुद्धिका, अपने समयका और अपनी शक्तिका उपयोग करना चाहिए। यही समस्त संसारका हित करनेवाला विश्वधर्म है। यही समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाला है और इसी धर्मको धारण

करनेसे समस्त संसारको शांति प्राप्त होती है। यही समझकर समस्त जीवोंको इस विश्वधर्मका पालन करते रहना चाहिये, क्योंकि इस विश्वधर्मके पालन करनेसे आत्मजन्य अनुपम सुख की प्राप्ति होती है, चिदानंद स्वरूप शुद्ध आत्मासे उत्पन्न होनेवाले सुखकी प्राप्ति होती है तथा इस संसारमें जब तक तारे और चन्द्रमा व सूर्य विद्यमान हैं तब तक कीर्ति फैलती रहती है और तब तक ही घर-घरमें मंगल गान होते रहते हैं।

भावार्थ—समस्त जीवोंके कल्याण करनेकी भावना रखना सर्वोत्कृष्ट भावना है। परंतु यह भावना आत्माके कल्याण करनेकी होनी चाहिये; केवल लौकिक उपकार करनेकी भावना रखना उत्कृष्ट भावना नहीं है। संसारमें ऐसे बहुतसे जीव देखे जाते हैं जो सदाकाल दूसरोंका उपकार किया करते हैं परंतु वे न तो अपने आत्माका कुछ कल्याण करते हैं और न अन्य आत्माओंका कल्याण करते हैं वे केवल दिखाऊ लौकिक उपकार किया करते हैं। तथा वे उस काममें यहाँ तक लीन हो जाते हैं कि वे अपना धर्म कर्म भी छोड़ देते हैं। परोपकार करनेवाले अनेक जैनी भी ऐसे देखे गये हैं जो उसी परोपकारमें लगे रहनेके कारण विना छना जैसा मिला वैसा पानी पी लेते हैं, रातमें भोजन कर लेते हैं और देवदर्शन तक नहीं करते। यदि उनसे कहा जाता है तो वे यही कहते हैं कि हमें इस कामसे अवकाश ही नहीं मिलता। [illegible] यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि यह उनका परोपकार आत्माके कल्याणका कारण नहीं है। उस थोड़ेसे लौकिक परोपकारसे न तो अन्य जीवोंके आत्माका कल्याण होता है और न अपने आत्माका कल्याण होता है। इसलिए ऐसे लौकिक परोपकारसे आत्माका कोई कल्याण नहीं होता। इस जीवको सबसे पहले अपने आत्माका कल्याण कर लेना चाहिए। जो आत्मा अपना कल्याण कर लेता है, अपने क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, मद, मत्सर, काम

आदि समस्त विकारोंको दूर कर अपने आत्माको शुद्ध बना लेता है वही आत्मा अन्य जीवोंका कल्याण कर सकता है। विकाररहित आत्मासे स्वयमेव दूसरोकी आत्माका कल्याण हो जाता है। यहाँतक मुनियोंकी परम निर्विकार और अत्यंत शांतमुद्रा देखकर सिंह, व्याघ्र आदि क्रूर पशु भी शांत हो जाते हैं और वे स्वयं निर्विकार होकर उन मुनिराजके समीप बैठ जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि आत्माका कल्याण विकारोंके त्याग करनेसे होता है। अतएव उन विकारोंके त्याग करने व करानेके लिए ही अपनी सब शक्ति लगा देनी चाहिए, उन्हीं विकारोंके त्याग करने करानेके लिए अपना सब धन लगा देना चाहिए, उन्हीं विकारोंके त्याग करने करानेके लिए समस्त बुद्धि और अपना समस्त समय लगा देना चाहिए। इसके सिवाय अपने पास जो कुछ है वह सब आत्माके कल्याण करने करानेमें ही लगा देना चाहिए। विकारोंका त्याग कर देनेसे ही आत्मा शुद्ध होता है, आत्मजन्य अनुपम सुखकी प्राप्ति होती है, शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्माका अनुभव होता है और शुद्धोपयोगकी प्राप्ति होकर शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। यही सर्वोत्कृष्ट आत्म कल्याण है। तथा उन सिद्धोंका स्वरूप चिंतवन कर अनेक जीव मोक्षमार्गमें लग जाते हैं। यहाँतक कि तीर्थंकर परमदेव भी उन्हीं सिद्धातोंका स्मरण कर दीक्षा लेते हैं। यह सर्वोत्कृष्ट परोपकार कहलाता है। यही समझकर सबसे पहले आत्मकल्याणमें लगाना चाहिए और फिर अन्यजीवोंको मोक्षमार्गमें लगाकर अन्यजीवोंका कल्याण करते रहना चाहिए। यही सबसे उत्कृष्ट अपना और दूसरोंका उपकार है, और इसीको विश्वधर्म कहते हैं।

शुद्धोपयोगकी सिद्धिके लिए ध्यानका फल दिखलाते हैं—

शुद्धोपयोगसिद्ध्यर्थं फलं ध्यानस्य कथ्यते ।।

अर्थ—आगे शुद्धोपयोगकी सिद्धिके लिए उत्कृष्ट ध्यानका फल दिखलाते हैं .

एकाग्रचिन्ताप्रविरोधनामं,
ध्यानं च शुक्लं सुखशांतिमूलम्।
कुर्वन्प्रवेशं ह्यचले स्वधर्मे,
मिष्टातिमिष्टं स्वरसं पिवन् हि ।। २४४ ।।
शुद्धोपयोगी सहजेन साधुः,
प्राप्नोति शुद्धां निजराजधानीम्।
स्वानन्दतुष्टेन सुखप्रदेन,
श्रीकुन्थुनाम्ना वरसूरिणोक्तम् ।।२४५।। ।

अर्थ—समस्त चिंतवनोंको रोककर केवल अपने शुद्ध आत्मामें लीन होकर उसी अपने शुद्ध आत्माका चिंतवन करना शुक्लध्यान कहलाता है। यह शुक्लध्यान अनंतसुख और अनंत शांतिका मूल कारण है। जो ध्यानी महात्मा अपने निश्चल आत्मधर्ममें लीन हो जाता है वह मीठेसे मीठे शुद्धात्मजन्य अनुपम सुखका पान करता रहता है। तदनंतर वह शुद्धोपयोगको धारण करनेवाला साधु अत्यंत शुद्ध ऐसी अपनी मोक्षरूपी राजधानीमें जा पहुँचता है। इस प्रकार अपने आत्मजन्य सुखमें लीन रहनेवाले और समस्त जीवोंको सुख देने वाले आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरने निरूपण किया है।

भावार्थ—अन्य समस्त चिंतवनोंका त्यागकर किसी एक पदार्थका चिंतवन करना ध्यान है। उस ध्यानके चार भेद हैं आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान। जो ध्यान किसी दुःखसे किया जाता है उसको आर्तध्यान कहते हैं। यह आर्तध्यान तिर्यंचगतिका कारण है। जो ध्यान रुद्रपरिणामोंसे व हिंसा झूठ चोरी रूप क्रूर परिणामोंसे किया जाता है उसको रौद्रध्यान कहते हैं। यह रौद्रध्यान नरकका कारण है। जो ध्यान धर्मके चिंतवनसे किया जाता है उसको धर्म्यध्यान कहते हैं। यह धर्मध्यान मनुष्य व देवगतिका कारण है। जो ध्यान केवल शुद्ध आत्मासे आत्मामें किया जाता है उसको शुक्लध्यान कहते

हैं। यह शुक्लध्यान मोक्षका कारण है। इस शुक्लध्यानीके ही द्वारा आत्माके घातिया कर्मोंका नाश होनेसे अनंतचतुष्टयकी प्राप्ति होती है। तथा अनेक अतिशयोंकी प्राप्ति होती है। तदनंतर उसी शुक्लध्यानके द्वारा वह अघातिया कर्मोंका भी नाश कर डालता है और फिर उसी समयमें अपने-अपने शुद्ध आत्माकी सदाकाल रहनेवाली मोक्षरूपी राजधानीमें जा विराजमान होता है। अनन्तर वह अनंतानंतकाल तक वहाँपर अनंतसुखका अनुभव करता है। मोक्षमें किसी कालमें भी किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं होता है। यही समझकर भव्यजीवोंको आर्तध्यान और रौद्रध्यान का सर्वथा त्याग कर धर्म्यध्यानका चिंतवन करते रहना चाहिये और फिर धीरे-धीरे शुक्लध्यानका अभ्यास करते रहना चाहिए। यह शुक्लध्यान ही अनंतसुखका कारण है।

संक्षेपसे अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों प्रकारके भावोंका फल दिखलाते हैं—

संक्षेपतो वर्ण्यत एव चाथ।
भावत्रयाणां च फलस्वरूपम्।।

अर्थ—अब आगे अत्यंत संक्षेपसे अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों प्रकारके भावोंका फल दिखलाते हैं।

दुःखप्रदा श्वभ्रगतिर्भवेद्वाऽ-
शुभोपयोगात्कुगतिस्तिरश्चाम्।
दरिद्रता हीननृता पशुत्वं,
मायाविता बंधुविहीनतादिः ।। २४६ ।।
शुभोपयोगेन निरोगता स्यात्,
साम्राज्यलक्ष्मीः सुखदा स्वदासी।
धर्मानुकूलः सुकुटुम्बवर्गः,
सुमान्यता श्रेष्ठजनैश्च पूजा ।। २४७ ।।

शुद्धोपयोगेन निजाश्रितेन,
स्वराज्यलक्ष्मीश्च भवेत्स्वदासी ।
गतिः स्थितिः सौख्यमये स्वधर्मे,
चिदात्मके स्वात्मरसे हि तृप्तिः ।। २४८ ।।
एवं नृणां कारणकार्यभेदाद्-
भवेद्धि भेदः खलु तत्फलेऽपि ।
नानाव्यथादः सुखदः सदैव,
शंका न कार्या विषये किलास्मिन् ।।२४९।।

अर्थ— अशुभोपयोगका फल दुःख देनेवाली नरकगति व तिर्यंच गतिका प्राप्त होना हैं, अथवा दरिद्रताका होना, नीच मनुष्य होना, पशु होना, मायाचारीपना करना और भाई बंधुओंसे रहित होना आदि सब अशुभोपयोगका फल है । शुभोपयोगके फलसे निरोग शरीर प्राप्त होता है, सुख देनेवाली साम्राज्य लक्ष्मी अपनी दासी हो जाती है । धर्मके अनुकूल चलनेवाले कुटुंबकी प्राप्ति होती है, और उत्तम मान्य मनुष्योंके द्वारा मान्यता तथा पूज्यता प्राप्त होती है । केवल अपने शुद्धात्माके आश्रित रहनेवाले शुद्धोपयोगके फलसे मोक्षरूप स्वराज्य लक्ष्मी भी अपनी दासी हो जाती है, अनंत सुखमय आत्माके शुद्धस्वरूपमें स्थिति व चर्या प्राप्त हो जाती है और शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मसुखमें अनंततृप्ति हो जाती है। इस प्रकार मनुष्योंके कारण रूपकार्यके भेदसे उनके फलोंमें भी भेद हो जाता है किसी कारण रूपकार्यका फल अनेक प्रकारके दुःख देनेवाला होता है और किसी कारण रूपकार्यका फल सुख देनेवाला होता है। इस विषयमें किसी प्रकारकी शंका नहीं करनी चाहिये ।

भावार्थ—इस संसारमें नरक निगोदादिकके जितने दुःख हैं, तिर्यंच और मनुष्ययोनिमें जितने दुःख हैं, चाहे वे शारीरिक दुःख हों,

चाहे मानसिक दुःख हों, चाहे आकस्मिक दुःख हों, और चाहे कौटम्बिक दुःख हों, वे सब दुःख अशुभोपयोगसे ही प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार इस संसारमें जितने सुख हैं, चाहे वे सुख धनसे प्राप्त होने वाले हों, चाहे इन्द्रियोंसे प्राप्त होनेवाले हों, चाहे कुटुंबसे प्राप्त होनेवाले हों और चाहे अन्य किसी प्रकारसे उत्पन्न होनेवाले हों सब इन्द्रियजन्य सुख व सांसारिक सुख शुभोपयोगसे प्राप्त होता है। शुद्धोपयोगका फल मोक्ष है। इस प्रकार कारणके भेदसे कार्यमें भेद अवश्य हो जाता है। इसमें किसी प्रकारकी शंका नहीं है।

सब ग्रंथका सारांश बतलाते हैं—

कौ केवलं क्लेशकरोस्ति निंद्योऽ-
शुभोपयोगो विषवद्व्यथादः।
शुभोपयोगो स्वसुखप्रदोऽस्ति,
शुद्धोपयोगो निजसौख्यदाता।। २५०।।
ज्ञात्वेति मुक्त्वा ह्यशुभोपयोगं,
कचित्प्रवृत्तिश्च शुभोपयोगे।
कुर्वन्सदा तिष्ठतु सर्वलोकः,
शुद्धोपयोगे हि ममापि चात्मा।। २५१।।

अर्थ—इस समस्त ग्रंथका सार यह है कि इस संसारमें अशुभोपयोग अत्यंत क्लेश उत्पन्न करनेवाला है, अत्यंत निंदनीय है और विषके समान दुःख देनेवाला है। तथा शुभोपयोग इंद्रियजन्य सुखोंको देनेवाला है और शुद्धोपयोग अपने शुद्ध आत्मासे उत्पन्न होनेवाले अनंतसुखको देनेवाला है। यही समझकर अशुभोपयोगका सर्वथा त्याग कर शुभोपयोग में लगकर समस्त जीवोंको शुद्धोपयोगमें स्थिर हो जाना चाहिए। इसीप्रकार मेरा यह आत्मा भी इसी शुद्धोपयोगमें सदाकाल स्थिर रहे ऐसी मैं भावना करता हूँ।

भावार्थ—इस ग्रंथमें अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों उपयोगोका फल दिखलाया है। इन तीनों उपयोगोंसे अशुभोपयोग तो सर्वथा त्याग करने योग्य है। इसलिए उसका तो सर्वथा त्याग ही कर देना चाहिए। शुभोपयोग भी यद्यपि त्याग करने योग्य है तथापि जब तक शुद्धोपयोगकी प्राप्ति नहीं होती तब तक शुभोपयोगमें अपनी प्रवृत्ति रखनी चाहिये। शुभोपयोगमें प्रवृत्ति रखते हुए भी शुद्धोपयोगका अभ्यास करते रहना चाहिये। और शुद्धोपयोगकी प्राप्ति होनेपर शुभोपयोगका भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। इस संसारमें शुद्धोपयोग ही मोक्षका सुख देनेवाला है शेष शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों ही संसारके कारण हैं। इस प्रकार आत्माका हित करनेवाला और मोक्षके अनंत सुख देनेवाला एक शुद्धोपयोग ही है। अतएव समस्त जीव इसी शुद्धोपयोगको प्राप्त कर इसीमें सदाकाल स्थिर बने रहें तथा मेरा आत्मा भी इसी शुद्धोपयोगको प्राप्त कर सदाकाल इसीमें स्थिर बना रहें। ग्रन्थकर्ता आचार्य कुंथुसागर स्वामी ऐसी ही भावना करते है।

ग्रंथका उपसंहार करते हैं—

एवं यथावत्कथितं स्वरूपं,
भावत्रयाणां सकलात्मशुद्ध्यै।
स्वानंदतुष्टेन तमोहरेण,
श्रीकुंथुनाम्ना वर सूरिणात्र।। २५२।।

अर्थ—इस प्रकार अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करनेवाले और अपने आत्माके शुद्धस्वरूपमें व आत्मजन्य सुखमें संतुष्ट रहनेवाले आचार्यवर्य मुझ श्री कुंथुसागर स्वामीने समस्त जीवोंकी आत्माओंको शुद्ध करनेके लिये अशुभोपयोग शुभोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों भावोंका यथार्थस्वरूप इस ग्रंथमें निरूपण किया है।

भावार्थ—अनेक प्रकारसे अशुभोपयोगका फल दिखलाया है, अनेक प्रकारसे शुभोपयोगका फल दिखलाया है, और अनेक प्रकारसे शुद्धोपयोगका स्वरूप दिखलाया है। समस्त जीव शुभोपयोग व अशुभोपयोगका त्याग कर शुद्धोपयोग धारण कर अपने आत्माको शुद्ध बनावें और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करलें इसी अभिप्रायसे इनका स्वरूप दिखलाया है। इनको जानकर समस्त भव्यजीवोंको शुद्धोपयोग धारण करनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये यही इस ग्रंथके निरूपण करनेका अभिप्राय है। इति शम्।

इति श्रीआचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरविरचिते भावत्रयफल-प्रदर्शिनाम्नि ग्रंथे शुद्धोपयोगवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः।

इस प्रकार आचार्य श्रीकुंथुसागर विरचित भावत्रयफलप्रदर्शी नामके ग्रंथकी 'धर्मरत्न' पं० लालाराम शास्त्री विरचित सरल हिन्दी भाषा टीकामें शुद्धोपयोगको वर्णन करनेवाला यह तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



अथ प्रशस्तिः

आगे प्रशस्ति लिखते हैं–

दीक्षागुरोः शान्तिसुधाकरस्य,
कृपाप्रसादात्सुखशान्तिदातुः ।
विद्यागुरोरेव सुधर्मसिन्धो-
राबालवृद्धादिविबोधनार्थम् ।। २५३ ।।
भावत्रयाणां च फलप्रदर्शी,
ग्रंथो मयायं लिखितो मनोज्ञः ।
आचार्यवर्येण विचक्षणेन,
श्रीकुन्थुनाम्नात्मरतेन नित्यम् ।। २५४ ।।

अर्थ—सदाकाल अपने आत्मामें लीन रहनेवाले और अत्यंत बुद्धिमान् ऐसे आचार्यवर्य मुझ श्री कुंथुसागर स्वामीने शुभोपयोग अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनों भावोंके फलको दिखलानेवाला यह मनोहर ग्रंथ सुख और शान्तिको देनेवाले और चन्द्रमाके समान महाशांत ऐसे आचार्यवर्य मेरे दीक्षा गुरु श्रीशान्तिसागर स्वामीकी तथा मेरे विद्यागुरु आचार्यवर्य श्रीसुधर्मसागरकी परमकृपाके प्रसादसे लिखा गया है। बालक वृद्ध व युवा सब ही जीव पढ़कर अपने आत्माका कल्याण करें इसी अभिप्रायसे यह ग्रंथ लिखा गया है।

भावार्थ—आचार्यवर्य श्रीशान्तिसागरजी महाराज मेरे दीक्षा गुरु हैं तथा आचार्यवर्य सुधर्मसागरजी महाराज मेरे विद्यागुरु हैं। इन दोनों परम वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंकी कृपासे ही मैंने इस ग्रंथको समाप्त किया है।

ग्रंथं ह्यमुं वांच्छितदं सदा ये,
स्मरन्ति गायन्ति पठन्ति मर्त्या।
स्वर्मोक्षलक्ष्मीं क्रमतो लभन्ते,
यथार्थविद्यां सुगुरोश्च भक्ताः ।। २५५ ।।

अर्थ—जो श्रेष्ठ गुरुओंके भक्त इच्छानुसार फल देनेवाले इस ग्रंथको सदाकाल पढ़ते हैं स्मरण करते हैं व इसको गाते हैं वे पुरुष यथार्थ विद्याको प्राप्त होते हैं और अनुक्रमसे स्वर्ग मोक्षकी लक्ष्मीको प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—इस ग्रंथके पठन-पाठन करनेका फल आत्माके शुद्धस्वरूपका ज्ञान होना है और अंतिम फल स्वर्गोंके सुख भोगकर मोक्ष लक्ष्मीका प्राप्त होना है। अतएव इस ग्रंथका पठन-पाठन अवश्य करते रहना चाहिये।

ग्रंथकार अपनी लघुता दिखलाते हैं—

ग्रंथे क्वचिन्मे स्खलनं भवेच्चेत्,
बुधा यतीशाः खलु शोधयित्वा।
पठन्तु नित्यं परिपाठयन्तु,
ग्रंथस्य भावोऽस्ति च कर्तुरस्य ।। २५६ ।।

अर्थ—मेरे अज्ञान व प्रमादसे यदि ग्रंथमें कोई भूल रह गई हो तो बुद्धिमान् मुनियोंको उसका संशोधन कर लेना चाहिये और फिर सदाकाल उसका पठन-पाठन करते रहना चाहिये। इस ग्रंथकी रचना करनेवालेका यही अभिप्राय है।

भावार्थ—हम लोग अल्पज्ञ हैं। अल्पज्ञोंसे भूल होना स्वाभाविक है। इसलिये यदि इसमें किसी छंद मात्रा अक्षर व किसी अभिप्रायकी भूल हो तो पंडित मुनीश्वरोंको उसका संशोधन कर लेना चाहिये और फिर उसका पठन-पाठन करना चाहिए।

ग्रंथ रचनाका समय और स्थान बतलाते हैं—

मोक्षे गते महावीरे विश्वशान्तिविधायके ।
चतुर्विंशति संख्याते सप्तषष्ठ्यधिके शते ।। २५७ ।।
पौषशुक्लचतुर्दश्यां शुभे च रविवासरे ।
भारते गुर्जर देशे सुंदरे सादरापुरे ।। २५८ ।।
भावत्रयफलानां हि प्रदर्शी सर्वदेहिनाम् ।
ग्रंथोऽयं लिखितो भव्यो भव्यानां बोधहेतवे ।। २५९ ।।
प्रणेता ग्रंथरत्नानां आचार्यः कुंथुसागरः ।
मोक्षमार्गप्रदीपाद्यनेकेषां वोधकारिणाम् ।। २६० ।।

अर्थ—अपने आत्मामें लीन रहनेवाले आचार्य श्रीकुंथुसागर स्वामीने आत्मज्ञान उत्पन्न करनेवाले भव्योंको ज्ञानप्राप्तिके लिए मोक्षमार्ग प्रदीप आदि अनेक ग्रंथरत्नोंके रचना की हैं। तथा उन्हीं श्रीकुंथुसागरस्वामीने समस्त संसारमें शांति उत्पन्न करनेवाले भगवान् महावीरस्वामीके मोक्ष जानेके अनंतर चौवीससौ सडसठवें वर्षके पौष शुक्ला चतुर्दशी रविवारके दिन भारतवर्ष के अंतर्गत गुजरात देशके सादरानगरके जिनचैत्यालय में समस्त जीवोंको अशुभोपयोग शुभोपयोग और शुद्धोपयोग इन तीनो भावोंके फलको दिखलानेवाला भावत्रयफलप्रदर्शी नामके सुंदर ग्रंथकी रचना समाप्त की है।

भावार्थ—आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरने चतुर्विंशतिस्तोत्र, मोक्षमार्गप्रदीप, सुधर्मोपदेशामृतसार, शांतिसुधासिंधु, प्रतिक्रमणसार, ज्ञानामृतसार, बोधामृतसार, श्रीशांतिसागरचरित्र आदि अनेक ग्रंथोंकी रचना की है। उन्ही आचार्य श्रीकुंथुसागरस्वामीने इस भावत्रयफलप्रदर्शी ग्रंथकी रचना की है। यह रचना पौष शुक्ला चर्तुदशी रविवारके दिन वीर निर्वाण संवत् चौवीसौ सडसठवें वर्षमें हुई है तथा सादरा नगरमें समाप्त हुई है।

अंतिम मंगलाचरण करते हैं—

शान्तिनाथः सदा जीयाज्जगच्छान्तिविधायकः ।
सर्वे भव्या परां शांति लभेरन् तत्प्रसादतः ।। २६१ ।।

अर्थ—समस्त संसारमें परमशांति उत्पन्न करनेवाले सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शांतिनाथ परमदेव सदाकाल जयशील बने रहें। तथा उन्हीं भगवान् शांतिनाथके प्रसादसे समस्त भव्यजीव मोक्षरूप परमशांतिको प्राप्त हों।

**** समाप्तोऽयं ग्रंथः । ****

